[k.M 6

fgUnh fucU/k vkSj vU; x| fo/kk,¡

bdkbZ 33
fgUnh dFkk&lkfgR; x| % Lo:i vkSj fodkl 133

bdkbZ 34
LoxhZ; e% fopkj lHkk dk vf/kos'ku ¼Hkkjrsanq gfj'pUnz½ % okpu vkSj fo'ys"k.k 143

bdkbZ 35
uk[kwu D;ksa c<+rs gSa\ ¼gtkjh izlkn f}osnh½ % okpu 159

bdkbZ 36
uk[kwu D;ksa c<+rs gSa\ % fo'ys"k.k vkSj ewY;kadu 170

bdkbZ 37
?khlk ¼egknsoh oekZ½ % okpu vkSj fo'ys"k.k 183

bdkbZ 38
ixMafM;ksa dk tekuk ¼gfj'kadj ijlkbZ½% okpu vkSj fo'ys"k.k 205

bdkbZ 39
f=ykspu ¼Q.kh'ojukFk js.kq½ % okpu vkSj fo'ys"k.k 218

bdkbZ 40
^fla/kq esa lw=g eghus* ¼ukxktqZu½ % okpu vkSj fo'ys"k.k 231

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

[kM ifjp;

यह हिंदी के ऐच्छिक पाठ्यक्रम-1 'हिंदी गद्य' का छठा और अंतिम खंड है। इसमें आप हिंदी की छह प्रतिनिधि कथेतर गद्य विधाओं का अध्ययन करेंगे। खंड की पहली bdkb 33 में, हिंदी कथेतर की विभिन्न विधाओं जैसे निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण और यात्रावृत्तांत के स्वरूप और विकास के बारे में अध्ययन करेंगे। आपके पाठ्यक्रम में निबंध के दो प्रमुख प्रकारों ललित निबंध और व्यंग्य निबंध को भी शामिल किया है। इस इकाई से आपको हिंदी में कथेतर गद्य की विभिन्न विधाओं के विकास का तो परिचय मिलेगा ही साथ ही, आपको वह आधार प्राप्त होगा जिससे आप हिंदी विधाओं का विश्लेषण और मूल्यांकन कर सकेंगे।

bdkb 34 में, आप भारतेंदु हरिश्चंद्र के व्यंग्य निबंध 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन' का अध्ययन करेंगे। भारतेंदु की इस रचना को पाठ्यक्रम में शामिल करने का उद्देश्य आपको आधुनिक हिंदी गद्य के आरंभिक रूप से परिचित कराना है। यह निबंध नवजागरण काल में लिखा गया था और उस समय जो वैचारिक उथल-पुथल देश में चल रही थी उसका प्रभाव इस निबंध पर देखा जा सकता है। bdkb 35 में, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का ललित निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' का वाचन करेंगे। साथ ही निबंध का सार और महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या का अध्ययन भी इसी इकाई में करेंगे। इस निबंध के अंतर्वस्तु और संरचना-शिल्प के बारे में विस्तार से अध्ययन आप bdkb 36 में करेंगे। bdkb 37 में, महादेवी वर्मा द्वारा लिखा गया रेखाचित्र 'घीसा' को शामिल किया गया है। घीसा पर तैयार की गई एक पटकथा का अध्ययन आप खंड 4 की इकाई 25 में कर चुके हैं। इस पटकथा को मन्नू भंडारी ने लिखा था। अगर आप इकाई 37 को पहले पढ़कर उसके बाद इकाई 25 पढ़ेंगे तो आपको इन दोनों इकाइयों को समझने में अधिक मदद मिलेगी। bdkb 38 में, हरिशंकर परसाईं की व्यंग्य रचना 'पगडंडियों का ज़माना' को शमिल किया गया है। इस इकाई में आप इस व्यंग्य निबंध का वाचन और विश्लेषण का अध्ययन करेंगे। bdkb 39 में, फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा लिखित संस्मरण 'त्रिलोचन' और bdkb 40 में, नागार्जुन द्वारा लिखित यात्रावृत्तांत 'सिंध में सत्रह महीने' को शामिल किया गया है। इन दोनों इकाइयों में आप इन रचनाओं का वाचन भी करेंगे और इनकी विशेषताओं का अध्ययन भी करेंगे।

आप इस खंड में शामिल सभी गद्य रचनाओं का ध्यानपूर्वक वाचन कीजिए और समझने की कोशिश कीजिए कि गद्य कथेतर विधाओं के माध्यम से लेखक क्या कहना चाहता है। रचनाओं में आए कठिन शब्दों का अर्थ दिया गया है ताकि आपको उक्त रचनाओं को समझने में कोई कठिनाई न हो। रचनाओं के साथ दिये गये बोध प्रश्नों के उत्तर देने से आपको इन विधाओं को समझने में मदद मिलेगी। प्रत्येक रचना के वाचन के बाद रचना का सार दिया गया है जिससे कि आप रचना के केन्द्रीय भाव को पहचान सकेंगे। इकाइयों में इन गद्य रचनाओं के कुछ महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या दी गई है ताकि आप स्वयं अन्य महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकें।

कथेतर गद्य रचनाओं में निहित भावों और विचारों का विश्लेषण 'अंतर्वस्तु' के अंतर्गत किया गया है। कथेतर गद्य की इन रचनाओं में लेखकीय व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। विश्लेषण के अंतर्गत इस पर भी विचार किया गया है। रचना के संरचनात्मक वैशिष्ट्य को समझने के लिए 'संरचना-शिल्प' के अंतर्गत भाषा और शैली पर विचार किया गया है और अंत में, रचना के केंद्रीय भाव का विश्लेषण 'प्रतिपाद्य' के अंतर्गत किया गया है'। विश्लेषण पक्ष को पढ़ने से न केवल आपको उक्त गद्य रचनाओं को समझने में मदद मिलेगी बल्कि आपकी आलोचनात्मक क्षमता का भी विकास होगा। इसके लिए बोध प्रश्नों के साथ-साथ अभ्यास भी दिये गये हैं। प्रत्येक इकाई के अंत में बोध प्रश्नों और अभ्यासों के उत्तर दिये गये हैं। वे उत्तर आवश्यक नहीं की आपके उत्तर से हू-ब-हू मिलें। आप ये अवश्य देख लीजिए कि आपके उत्तर में कमोबेश वही बातें हो जो नमूने के उत्तर में हैं। यदि आप अपने उत्तर से संतुष्ट है तो अपने अध्ययन को जारी रखिए।

इस खंड में उपयोगी पुस्तकों की सूची bdkb 40 के अंत में दी गई है। संभव हो तो आप इन पुस्तकों का अध्ययन भी कीजिए इससे आपको अध्ययन में और अधिक सहायता मिलेगी।

इकाई 33 हिंदी कथेतर गद्य : स्वरूप और विकास

इकाई की रूपरेखा

33.0 उद्देश्य
33.1 प्रस्तावना
33.2 निबंध का रचनागत वैशिष्ट्य
33.3 रेखाचित्र का रचनागत वैशिष्ट्य
33.4 संस्मरण का रचनागत वैशिष्ट्य
33.5 यात्रावृत्तांत का रचनागत वैशिष्ट्य
33.6 सारांश
33.7 शब्दावली
33.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

33.0 उद्देश्य

यह ऐच्छिक पाठ्यक्रम 'हिंदी गद्य' का अंतिम खंड है। इस खंड में आप गद्य की विभिन्न कथेतर विधाओं का अध्ययन करेंगे। इस इकाई में हम आपको निबंध और उसके विभिन्न प्रकार, रेखाचित्र, संस्मरण और यात्रावृत्तांत के स्वरूप और उनके विकास से परिचित कराएँगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- हिंदी कथेतर गद्य विधाओं का रचनागत वैशिष्ट्य बता सकेंगे;
- निबंध के विभिन्न तत्त्वों की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- रेखाचित्र, संस्मरण और यात्रावृत्तांत की रचनागत विशिष्टताओं का परिचय दे सकेंगे; और
- हिंदी निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण और यात्रावृत्तांत के विकास का वर्णन कर सकेंगे।

33.1 प्रस्तावना

ऐच्छिक पाठ्यक्रम-1 से संबंधित यह छठे और अंतिम खंड की पहली इकाई है अर्थात् इस पाठ्यक्रम की यह तैंतीसवीं इकाई है। इस खंड की अगली इकाइयों में आप भारतेंदु हरिश्चंद्र, हजारीप्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा, हरिशंकर परसाई, फणीश्वरनाथ रेणु और नागार्जुन की गद्य रचनाओं का अध्ययन करेंगे। इनको पढ़ने से पहले आपके लिए यह जानना जरूरी है कि निबंध, ललित निबंध, व्यंग्य निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण और यात्रावृत्तांत क्या है, उनके विभिन्न तत्त्व कौन-कौन से हैं, उनकी विशेषताएँ क्या हैं? इसके साथ ही हिंदी गद्य विधाओं की परंपरा से परिचित होना भी आपके लिए जरूरी है। हमने इसी पाठ्यक्रम के पहले खंड की दूसरी इकाई में कथात्मक और कथेतर गद्य विधाओं का परिचय दिया था। कथेतर विधाओं के अंतर्गत निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, यात्रावृत्तांत, आलोचना आदि विभिन्न गद्य विधाओं का परिचय दिया था। यहां इन सब गद्य विधाओं का अध्ययन शामिल नहीं किया गया है। सिर्फ़ व्यंग्य निबंध, ललित निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण और यात्रावृत्तांत की संक्षिप्त चर्चा की गयी है।

उपर्युक्त गद्य विधाओं का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। साहित्य की ये नयी विधाएं हैं और पत्र-पत्रिकाओं के बढ़ते प्रसार ने इन विधाओं को भी लोकप्रिय बनाने में मदद पहुंचायी है। हिंदी निबंध की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से मानी जाती है। भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनके समय के कई अन्य महत्त्वपूर्ण लेखकों ने अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए इस विधा का सहारा लिया। भारतेंदु के समय में खड़ी बोली गद्य का निर्माण शुरू हुआ ही था। लेकिन पत्र-पत्रिकाओं की जरूरतों के कारण निबंध विधा ने गद्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया। भारतेंदु युग के बाद आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'सरस्वती' ने भी निबंध लेखन में उल्लेखनीय योग दिया। इसी युग में लेखन आरंभ करने वाले निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी निबंधों को पराकाष्ठा पर पहुंचाया। उनका व्यक्तित्व हिंदी निबंधों के विकास में केंद्रीय महत्त्व रखता है। बाद में तो हिंदी निबंधों का चहुँमुखी विकास हुआ।

इस इकाई में निबंध के स्वरूप का परिचय दिया गया है। लेकिन श्रेष्ठ रचनाएं कभी भी नियमों से पूरी तरह बंधी नहीं होती। शैली और भाषा के स्तर पर निबंधों में लगातार परिवर्तन हुए हैं और उनमें प्रौढ़ता का समावेश हुआ है। भारतेंदु के निबंधों में ज़िंदादिली और व्यंग्यात्मकता

के तत्त्व थे, तो रामचंद्र शुक्ल के निबंधों में गहन वैचारिकता और विश्लेषणात्मकता। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने निबंधों की एक नयी शैली का विकास किया जिसे ललित निबंध कहा गया। हरिशंकर परसाई ने भारतेंदु युग के निबंधों में व्यंग्य के प्रयोग को एक नवीन शैली के रूप में विकसित किया। कहने का तात्पर्य यही है कि निबंध के स्वरूप के अध्ययन से हमें निबंधों को समझने में सहायता मिलेगी। निबंधों के अध्ययन में हमें रचनाकारों के व्यक्तिगत वैशिष्ट्य का भी ध्यान रखना होगा। यह अवश्य है कि अगर हम यह समझ जाते हैं कि निबंध क्या है, तो फिर उसके विकासक्रम और उसमें होने वाले नवीन प्रयोगों को समझना भी आसान हो जाता है।

निबंध के अतिरिक्त इस खंड में रेखाचित्र, संस्मरण और यात्रावृत्तांत को भी शामिल किया गया है। रेखाचित्र और संस्मरण हिंदी-साहित्य की नवीन विधाएँ हैं। जब किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, घटना, दृश्य आदि का इस प्रकार वर्णन किया जाता है कि पाठक के मन पर उसका हू-ब-हू चित्र बन जाता है तो उसे रेखाचित्र कहते हैं। इसके विपरीत जब लेखक अपने या किसी अन्य व्यक्ति के जीवन में बीती किसी घटना अथवा दृश्य का स्मरण कर उसका वर्णन करता है तो उसे संस्मरण कहते हैं। हिंदी में रेखाचित्र को एक विधा के तौर पर पराकाष्ठा पर पहुंचाने का श्रेय छायावाद की कवयित्री महादेवी वर्मा को है जिन्होंने रेखाचित्र और संस्मरण दोनों में नवीन प्रयोग भी किये हैं। महादेवी जी का प्रसिद्ध रेखाचित्र 'घीसा' को इस खंड में शामिल किया गया है। इस रेखाचित्र पर मन्नू भंडारी द्वारा टेलीविजन के लिए लिखी पटकथा का अध्ययन खंड 5 में कर चुके हैं। संस्मरण विधा में महादेवी वर्मा के अलावा भी कई लेखकों ने महत्त्वपूर्ण लेखन किया है। इनमें फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा लिखे संस्मरण का उल्लेख भी किया जा सकता है। रेणु ने हिंदी के प्रगतिशील कवि त्रिलोचन शास्त्री पर संस्मरण लिखा है जिसे इस खंड में आप पढ़ेंगे।

जब लेखक अपनी यात्रा के दौरान देखे गये स्थानों का वर्णन करता है तो उसे यात्रावृत्तांत या यात्रा-साहित्य कहते हैं। हिंदी में यात्रावृत्तांत लिखने की समृद्ध परंपरा है। राहुल सांकृत्यायन, अज्ञेय, नागार्जुन, महादेवी वर्मा, यशपाल, मोहन राकेश, असगर वज़ाहत आदि कई लेखकों ने यात्रावृत्तांत लिखे हैं। इस खंड में आप नागार्जुन द्वारा 'सिंध में सत्रह महीने' नामक यात्रावृत्तांत का अध्ययन करेंगे।

33-2 fuca/k dk jpukxr oSf'k"V;

आपने हिंदी के आधार पाठ्यक्रम के खंड 3 में महादेवी वर्मा का निबंध 'जीने की कला' पढ़ा होगा। उस निबंध को पढ़ने से आपको कुछ अनुमान तो हो गया होगा कि 'निबंध' से क्या तात्पर्य है। 'निबंध' पर विचार करने से पहले आइए, एक बार हम साहित्य की सभी प्रमुख विधाओं से इनकी तुलना करें।

आप इसी पाठ्यक्रम की इकाई 2 से यह तो पहचान ही गये होंगे कि गद्य की प्रमुख विधाएं कौन-सी हैं और उनकी प्रमुख विशेषताएं क्या हैं। गद्य के भीतर कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, यात्रावृत्त, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण आदि कई विधाएं आती हैं। कहानी, उपन्यास और नाटक को हम कथात्मक विधा कह सकते हैं क्योंकि इनमें कोई-न-कोई कहानी होती है। यह कहानी काल्पनिक होती है, यद्यपि यह जीवन यथार्थ से प्रेरित होती है। कथात्मक विधाओं में रचनाकार अपनी बात सीधे न कहकर कथा के माध्यम से कहता है। इसके विपरीत निबंध, यात्रावृत्त, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण आदि गद्य विधाओं को हम कथात्मक विधाओं के अंतर्गत नहीं रख सकते क्योंकि इन विधाओं में लेखक का उद्देश्य कथा कहना नहीं होता। जीवनी में किसी अन्य व्यक्ति का जीवन चरित्र केंद्र में होता है। गद्य आत्मकथा में लेखक अपने जीवन के बारे में लिखता है। संस्मरण में लेखक अपनी स्मृतियों को प्रस्तुत करता है। ये स्मृतियाँ किसी व्यक्ति, स्थान या घटना के बारे में हो सकती हैं। रेखाचित्र में लेखक अपने संपर्क में आए किसी व्यक्ति के जीवन चरित्र का खाका प्रस्तुत करता है। यहां घटनाएं नहीं व्यक्ति की चारित्रिक विशिष्टता प्रमुख होती है। यात्रावृत्त में लेखक किसी स्थान विशेष की यात्रा का लेखा-जोखा पेश करता है। इन सभी विधाओं की तुलना में निबंध को रखकर देखें।

निबंध कथात्मक विधा नहीं है क्योंकि उसकी रचना का आधार कथा नहीं है। निबंध में लेखक अपना या दूसरे का जीवन-चरित्र प्रस्तुत नहीं करता, इसलिए वह जीवनी और आत्मकथा से भिन्न है। इसी दृष्टि से वह रेखाचित्र और यात्रावृत्त से भी अलग है। तब, प्रश्न यह है कि निबंध क्या है?

निबंध का सैद्धांतिक विवेचन करने से पहले आइए, हम उसे सीधे-सादे ढंग से समझने की कोशिश करें। इस खंड में जो निबंध आप पढ़ने जा रहे हैं उन्हें ध्यान में रखिए। संभव हो तो

उन्हें पढ़ जाइए। आप पाएंगे कि इनमें कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जिनके कारण उन्हें ’निबंध’ की संज्ञा दी गयी है। ये सभी निबंध ’गद्य’ में है। इसलिए *x|kRedrk* को हम निबंध की पहली विशेषता कह सकते हैं। लेकिन ’गद्य’ में लिखे जाने मात्र से कोई रचना निबंध नहीं हो जाती। आइए, हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखित ‘नाखून क्यों बढ़ते हैं’ निबंध के निम्नलिखित अंश को ध्यान से पढ़ेंः

मानव शरीर का अध्ययन करने वाले प्राणि-विज्ञानियों का निश्चित मत है कि मानव-चित्त की भांति मानव-शरीर में भी बहुत-सी अभ्यास जन्य सहज वृत्तियाँ रह गयी हैं। दीर्घकाल तक उनकी आवश्यकता रही है। अतएव शरीर ने अपने भीतर एक ऐसा गुण पैदा कर लिया है कि वे वृत्तियाँ अनायास ही, और शरीर के अनजान में भी, अपने-आप काम करती है। नाखून का बढ़ना उसमें से एक है, केश का बढ़ना दूसरा है, दांत का दुबारा उठना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है।

‘नाखून क्यों बढ़ते हैं’ निबंध के इस अंश में मानव शरीर की सहज वृत्तियों के बारे में द्विवेदी जी ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। इस अंश में विचार की प्रधानता है और प्रत्येक निबंध में विचार किसी न किसी रूप में अवश्य मौजूद रहता है। लेकिन अब इसी निबंध के दूसरे अंश को देखेंः

मनुष्य को सुख कैसे मिलेगा? बड़े-बड़े नेता कहते हैं, वस्तुओं की कमी है, और मशीन बैठाओ, और उत्पादन बढ़ाओ, और धन की वृद्धि करो और बाह्य उपकरणों की ताकत बढ़ाओ। एक बूढ़ा था। उसने कहा था-बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ। क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो, आत्म-तोषण की बात सोचो, काम करने की बात सोचो। उसने कहा- प्रेम ही बड़ी चीज है, क्योंकि वह हमारे भीतर है।

उपर्युक्त अंश में भी विचार है, लेकिन यहां विचार से ज्यादा भावों की प्रधानता है। बिना भावों के निबंध शुष्क हो जाते हैं। इसलिए प्रत्येक निबंध में विचारों और भावों की अभिव्यक्ति जरूर होती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि निबंध की दूसरी विशेषता fopkjk vkj Hkkok dh vfHkO;fDr है।

आप जानते हैं कि लेख में भी लेखक अपने विचारों को प्रस्तुत करता है। तब क्या इतिहास, समाजशास्त्र या विज्ञान के किसी पक्ष पर लिखा गया लेख भी निबंध की श्रेणी में गिना जा सकता है? लेख में मुख्य उद्देश्य विषय का सुविचारित प्रतिपादन करना होता है। इसमें विषय का वस्तुपरक विवेचन होना आवश्यक है। लेकिन निबंध में वस्तुपरकता अनिवार्य गुण नहीं है। लेखक अपने विचारों और भावों को इस तरह पेश करता है कि उस प्रस्तुति में उसके लेखकीय व्यक्तित्व का स्पष्ट प्रभाव दिखायी देता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि निबंध में विषय की प्रस्तुति आत्मपरक होती है लेकिन विषय का विश्लेषण वस्तुपरक हो सकता है। शुक्लजी के ‘क्रोध’, ‘लज्जा और ग्लानि’, आदि निबंध इसी श्रेणी में आते हैं। इस प्रकार निबंध की तीसरी विशेषता है, y[kdh; O;fDrRo dk iHkko।

लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव निबंध को एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित करने का मुख्य आधार कहा जा सकता है। लेकिन एक और विशेषता है जो निबंध को साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित करती है। वह है उसका अभिव्यंजना पक्ष। निबंध में भावों और विचारों का प्रस्तुतीकरण जिस शैली में रचनाकार करता है, उसके लिए जैसी उत्कृष्ट भाषा प्रयुक्त करता है, वे ही उस निबंध की महत्ता का आधार बनते हैं। गद्य का प्रयोग तो सामान्य लेखन में प्रायः होता ही है, लेकिन निबंध में भाषा और शैली की नवीनता, उत्कृष्टता, प्रौढ़ता और लालित्य (सुंदरता) विचारों और भावों को नया आलोक प्रदान करते हैं। हम केवल भाव और विचार से ही प्रभावित नहीं होते। बल्कि अभिव्यक्ति का ढंग भी हमें आकृष्ट करता है। इस प्रकार निबंध का vfHkO;tuk i{k उसे सामान्य लेखों से अलग करता है। इसे निबंध की चौथी विशेषता कह सकते हैं।

fuca/k ds Hksn

ऊपर के विश्लेषण से स्पष्ट है कि निबंध में कुछ तत्त्व ऐसे होते हैं जो प्रायः सभी निबंधों में मिलेंगे। किंतु ये सभी निबंधों में समान रूप से नहीं होते। कोई निबंध विचार प्रधान हो सकता है, तो, कोई भाव प्रधान। किसी में विषय का वर्णन मात्र हो सकता है, तो किसी में गहन विश्लेषण। किसी में भाषा सहज और सरल हो सकती है तो किसी में जटिल। कहने का तात्पर्य

यह है कि निबंध के उपर्युक्त चारों तत्त्व कई रूपों में मिल सकते हैं। तत्त्वों के इन्हीं विभिन्न रूपों के आधार पर निबंधों के कई वर्गीकरण किये जा सकते हैं। आगे हम निबंधों के इन वर्गीकरणों का अध्ययन करेंगे।

विषयवस्तु के आधार पर निबंध के दो भेद किये जा सकते हैं। जिस निबंध में विचारों या चिंतन की प्रधानता होती है, उन्हें विचारात्मक या चिंतनप्रधान निबंध कह सकते हैं। लेकिन जिसमें भावों की प्रधानता होती है, उन्हें भावप्रधान निबंध कहते हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र का निबंध 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन' और हजारी प्रसाद द्विवेदी का निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' में विचारों की प्रधानता है लेकिन इन निबंधों में शुक्लजी की तुलना में विचारों के वस्तुपरक विश्लेषण की बजाए भावपरक विश्लेषण अधिक दिखायी देता है।

लेखकीय व्यक्तित्व के आधार पर भी निबंध के भेद किये जा सकते हैं। वैसे तो सभी निबंधों में लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है, लेकिन विचारप्रधान और वस्तुपरक निबंध में यह प्रभाव सबसे कम होता है और भावात्मक निबंध में लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति की संभावनाएं अपेक्षाकृत अधिक होती है। जिन निबंधों में लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष और अधिक होती है उन्हें आत्मपरक निबंध कह सकते हैं और जिन निबंधों में व्यक्तित्व का प्रभाव कम और परोक्ष होता है, उन्हें वस्तुपरक निबंध कहते हैं।

शैली के आधार पर भी निबंध के भेद किये जा सकते हैं। शैली का तात्पर्य है निबंध किस रूप में लिखा गया है। अपने व्यापक अर्थ में ऊपर बताये गये भेद भी शैली के अंतर्गत ही आयेंगे। यहां हम निबंध की रचना पद्धति के आधार पर कुछ अन्य भेदों की चर्चा कर रहे हैं। निबंध की विषयवस्तु की प्रस्तुति के आधार पर दो भेद किये जा सकते हैं, वर्णनात्मक निबंध और विश्लेषणात्मक निबंध। जब निबंध में विषयवस्तु का सीधे-सीधे वर्णन प्रस्तुत किया जाता है और उसकी व्याख्या नहीं की जाती तब उसे वर्णनात्मक निबंध कहते हैं। जब निबंधकार विषयवस्तु की गहन व्याख्या और विश्लेषण प्रस्तुत करता है तो ऐसे निबंध की शैली को विश्लेषणात्मक शैली कहा जाता है। इस तरह के निबंधों में लेखक विषयवस्तु के चिंतन पक्ष पर अपना ध्यान केंद्रित करता है। उसके विभिन्न पक्षों की व्याख्या करता है, उनको ठोस तर्कों और उदाहरणों से स्थापित करता है। ऐसे निबंधों से लेखक की वैचारिक क्षमता का पता चलता है। निबंधों में वर्णन और विश्लेषण के लिए दो शैलियां अपनायी जाती हैं : समास शैली और व्यास शैली।

समास शैली में लेखक के विचार एक के बाद एक प्रस्तुत होते रहते हैं, उनमें व्याख्या नहीं होती। इस शैली में लेखक अपने विचारों को विस्तार नहीं देता बल्कि उन्हें संक्षेप में और सूत्र रूप में प्रस्तुत करता है। इसके विपरीत व्यास शैली में लेखक अपने विचारों को खोलकर रखता चलता है। अपना मत व्यक्त करते हुए उसकी व्याख्या भी करता चलता है।

शैली की दृष्टि से निबंधों का एक वर्गीकरण और किया जा सकता है। जब लेखक कथ्य में अंतर्निहित सौंदर्य को उभारना चाहता है तो उसे ललित निबंध कहते हैं और जब कथ्य में अंतर्निहित व्यंग्य को उभारना चाहता है तो उसे व्यंग्य निबंध कहते हैं। निबंध में लालित्य लाने के लिए लेखक कई तरीके अपनाता है। पहली बात तो यह कि लेखक में व्यापक मानवीय रुचि उत्पन्न करने की क्षमता होनी चाहिए। वह विषय को इस रूप में प्रस्तुत करें कि सभी के हृदय को छुए। दूसरे, उसमें अपने विचारों को मौलिक और प्रभावशाली रूप में रखने की सामर्थ्य होनी चाहिए। तीसरे, वह विषय को इस रूप में प्रस्तुत करे कि उससे उसकी आत्मीयता और खुलेपन का एहसास हो। चौथे, उसमें विनोद की प्रवृत्ति भी होनी चाहिए ताकि उसका निबंध बोझिल न हो और अंत में, उसमें अपनी विचार और भावयात्रा में पाठक को भी सक्रिय रूप से शामिल करने की क्षमता होनी चाहिए।

भावप्रधान निबंधों में ललित शैली अपनायी जाती हैं। व्यंग्य निबंध में लेखक का उद्देश्य व्यंग्य को उभारना होता है। इसलिए विषय से लेकर भाषा तक निबंध के प्रत्येक पक्ष को वह इस रूप में प्रस्तुत करता है कि उससे कथ्य में निहित अंतर्विरोधी (परस्पर विरोधी) सत्य उभरते हैं। कथ्य में निहित इसी अंतर्विरोध में व्यंग्य समाहित होता है जो पाठक को आकृष्ट करता है। हिंदी में भारतेंदु युग के लेखकों और बाद में नयी कहानी दौर में हरिशंकर परसाईं, शरद जोशी, रवींद्रनाथ त्यागी आदि के निबंधों में व्यंग्य की इस क्षमता को देख सकते हैं। शैली की दृष्टि से इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि लेखक एक ही निबंध में एक से अधिक शैलियों का प्रयोग कर सकता है।

निबंधों का विभाजन उसमें प्रयुक्त होने वाली भाषा के आधार पर भी किया जा सकता है। निबंध में भाषा के कई रूप हो सकते हैं। निबंध की भाषा तीन बातों पर निर्भर करती हैः विषय, लेखक और शैली। निबंध की भाषा विषय से भी तय होती है, लेखक के निजी वैशिष्ट्य से भी और उस शैली से भी जो विषयवस्तु को प्रस्तुत करने के लिए लेखक ने अपनायी है। निबंध की भाषा संस्कृतनिष्ठ, तत्सम शब्दों वाली हो सकती है, बोलचाल की भाषा में भी हो सकती है और उर्दूनिष्ठ भी हो सकती है। भाषा में लंबे और जटिल वाक्य हो सकते हैं तथा छोटे और सरल वाक्य भी हो सकते हैं। उसमें लोकभाषा का लालित्य भी हो सकता है और पांडित्य का प्रदर्शन भी। कहने का तात्पर्य यही है कि भाषा के कई रूप हो सकते हैं। लेकिन जो भी रूप हो वह निबंध के प्रभाव, सौंदर्य और संप्रेषणीयता को बढ़ाने वाला हो।

निबंध के उपर्युक्त वर्गीकरण के बारे में यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि यह वर्गीकरण अंतिम नहीं है और सभी निबंधों पर ये पूरी तरह से लागू नहीं किये जा सकते। लेकिन ऊपर जो भेद गिनाये गये हैं, उनके आधार पर निबंधों की भिन्न-भिन्न विशेषताओं को पहचानने और समझने में आपको मदद मिलेगी।

ck/k iz'u

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से मिलाइए।

1. निम्नलिखित में से कौन-सी विशेषता निबंध पर लागू नहीं होती।
   क) निबंध गद्य में लिखा जाता है।
   ख) निबंध के केंद्र में कहानी होती है।
   ग) निबंध में लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव देखा जा सकता है।
   घ) निबंध में विचारों और भावों की अभिव्यक्ति होती है। ( )

2. नीचे निबंध की विभिन्न विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। उनके आधार पर बताइए कि ये विशेषताएं किस प्रकार के निबंधों में पायी जाती हैं।
   mnkgj.k % जिस निबंध में विचार की प्रधानता होती है।
   mÙkj % विचारात्मक निबंध
   क) ऐसे निबंध जिनमें रचनाकार का व्यक्तित्व प्रत्यक्ष और अधिक अभिव्यक्त होता है।
   ....
   ख) जिनमें विषयवस्तु की गहन व्याख्या होती है।
   ....
   ग) जिनमें लेखक अपने विचारों को विस्तार नहीं देता बल्कि उन्हें संक्षेप में और सूत्र रूप में प्रस्तुत करता है।
   ....
   घ) जिनमें कथ्य में निहित सौंदर्य को उभारने को प्राथमिकता दी जाती है।
   ....
   ङ) जहां पाठक की भावनाओं को आंदोलित किया जाता है।
   ....

3. निम्नलिखित आधारों पर निबंध के दो-दो भेद बताइए।
   क) विषयवस्तु के आधार पर
   ....
   ....
   ख) लेखकीय व्यक्तित्व के आधार पर
   ....
   ....
   ग) शैली के आधार पर
   ....
   ....

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

4. ललित निबंध की कोई दो विशेषताएं लिखिए।

5. समास शैली और व्यास शैली का अंतर चार पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

6. निबंध में भाषा किन आधारों पर तय होती है? किन्हीं दो आधारों को बताइए।

vH;kl

1. लेख और निबंध का अंतर स्पष्ट कीजिए।

33-3 js[kkfp= dk jpukxr oSf'k"V;

रेखाचित्र गद्य साहित्य की नवीन विधा है और जैसाकि नाम से स्पष्ट है यह नाम चित्रकला से लिया गया है। चित्रकला में चित्र बनाने के कई ढंग होते हैं। केवल रेखाओं से चित्र बनाना और रेखाओं और रंगों दोनों से चित्र बनाना और केवल रंगों से चित्र बनाना। जब रेखाओं और रंगों दोनों का इस्तेमाल किया जाता है तो चित्र अपनी पूर्णता में उभरकर आता है लेकिन जब रेखाओं से चित्र बनाया जाता है और उनमें रंग नहीं भरा जाता, तो सिर्फ बाहरी आकृति उभरती है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि रेखाचित्र से बना चित्र अधूरा होता है। इसके विपरीत रेखाचित्र से भी आकृति को न सिर्फ पहचाना जा सकता है बल्कि उसमें विशेष भावों की भी अभिव्यक्ति की जा सकती है। जब किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, घटना, दृश्य आदि का न्यूनतम शब्दों से इस प्रकार वर्णन किया जाता है कि पाठक के मन पर उसका हू-ब-हू चित्र बन जाता है तो उसे रेखाचित्र कहते हैं। इस प्रकार के वर्णन का तटस्थ होना आवश्यक है। रेखाचित्र में विस्तार से और हर पक्ष का वर्णन करने की आवश्यकता नहीं होती। लेकिन जिस पक्ष का भी वर्णन किया जाए उससे पाठक के सामने एक स्पष्ट तस्वीर उभरनी चाहिए। रेखाचित्र में लेखक का वर्णित घटना, व्यक्ति आदि के साथ निजी संबंध होना आवश्यक नहीं है। रेखाचित्र अतीत का भी हो सकता है, वर्तमान का भी और यदि लेखक के मन में भविष्य का कोई चित्र है तो उसका भी हो सकता है। रेखाचित्र में लेखक यथार्थ का सहारा लेता है लेकिन वह उन्हें परिपूर्ण बनाने के लिए कल्पना का सहारा भी लेता है। रेखाचित्र में लेखक के निजी व्यक्तित्व का कोई महत्त्व नहीं होता। वह अपेक्षाकृत तटस्थ और वस्तुपरक होकर रेखाचित्र की रचना करता है।

कम से कम शब्दों का उपयोग कर बात रखने की कला का रेखाचित्र में विशेष महत्त्व है। अनावश्यक विस्तार रेखाचित्र को भोंडा बना देता है। रेखाचित्र में वर्णन इतना सुगठित और प्रभावपूर्ण होना चाहिए कि उसका चित्र पाठक के सामने उपस्थित हो जाए। ऐसा लगे कि किसी चित्रकार का बनाया हुआ चित्र आँखों के सामने है। शब्दों के द्वारा चित्र अंकित करने के इस गुण को चित्रात्मकता कहते हैं। यह रेखाचित्र की बहुत बड़ी विशेषता है। वास्तव में रेखाचित्रकार का काम शब्दों के द्वारा चित्रों की श्रृंखला प्रस्तुत करना है।

रेखाचित्र की रचना कहानी की तरह होती है। लेकिन कहानी से भिन्न इस रूप में कि रेखाचित्र में लेखक स्वयं उपस्थित रहता है। कहानी की तरह रेखाचित्र काल्पनिक नहीं होता। उसके पात्र भी कभी-न-कभी लेखक के संपर्क में जरूर आये होते हैं। लेखक संस्मरण की तरह अपने पात्रों, स्थितियों और प्रसंगों का वर्णन करता है। वह स्वयं भले ही उसका पात्र न हो, लेकिन

उसकी मौजूदगी रचना को प्रामाणिक और विश्वसनीय बनाती है। वह ऐसे जीवन चरित्रों को हमारे सामने लाता है जो अपनी साधारणता में भी असाधारण होते हैं। उनके जीवन के मार्मिक प्रसंग, उनका दृढ़ चरित्र, कठिन और विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए भी आत्मबल बनाये रखना, उनकी करुणा और उनके हृदय का आंतरिक आलोक ही रेखाचित्र की शक्ति होते हैं।

हिंदी में महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों के संग्रह 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', 'पथ के साथी' आदि का विशेष महत्त्व है। इनके अतिरिक्त बनारसीदास चतुर्वेदी का 'सेतुबंध', श्रीराम शर्मा का 'प्राणों का सौदा', रामवृक्ष बेनीपुरी का 'माटी की मूरतें' तथा 'मील का पत्थर' उल्लेखनीय रेखाचित्र हैं। महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों को लेकर विद्वानों के बीच कुछ मतभेद हैं। कुछ विद्वान् इन्हें संस्मरण कहने के पक्ष में हैं। उनका तर्क है कि महादेवी वर्मा ने जिन पात्रों और घटनाओं को लिया है, वे उनके जीवन में आये हुए वास्तविक पात्र और घटनाएँ हैं। लेकिन महादेवी वर्मा ने जिस तटस्थता के साथ, संक्षिप्त रूप में, पात्रों और घटनाओं का चित्रात्मक अंकन किया है, वह उनकी रचनाओं को रेखाचित्र के समीप लाता है। वस्तुतः महादेवी के रेखाचित्रों में 'स्मृतिचित्र' तथा संस्मरण दोनों समाहित हो जाते हैं। महादेवी ने संस्मरणात्मक शैली में ही रेखाचित्र अधिक लिखे हैं जिनको बहुत से आलोचक संस्मरण मानना अधिक उपयुक्त समझते हैं।

महादेवी वर्मा का रेखाचित्र 'घीसा' को आपके पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है। इस रेखाचित्र के आधार पर टेलीविजन के लिए लिखी पटकथा को भी इस पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है। इस पटकथा को मन्नू भंडारी ने लिखा था। 'घीसा' पर लिखी पटकथा का अध्ययन आप खंड 4 में कर चुके हैं।

33-4 lLej.k dk jpukxr of'k"V;

रेखाचित्र की तरह संस्मरण भी हिंदी-साहित्य की नवीन विधा है। संस्मरण अपनी प्रकृति में रेखाचित्र के सर्वाधिक नजदीक है। लेकिन इसमें आत्मकथा और जीवनी के तत्व भी समाहित होते हैं। जब लेखक अपने या किसी अन्य व्यक्ति के जीवन में बीती किसी घटना अथवा दृश्य का स्मरण कर उसका वर्णन करता है तो उसे संस्मरण कहते हैं। संस्मरण में उसका स्मृति के आधार पर लिखा जाना आवश्यक है। संस्मरण लिखने के लिए यह जरूरी है कि लेखक का वर्णित व्यक्ति, घटना आदि के साथ व्यक्तिगत संबंध रहा हो। संस्मरण अतीत का ही हो सकता है, वर्तमान या भविष्य का नहीं। संस्मरण में लेखक उन्हीं तथ्यों का वर्णन करता है जो वास्तव में घटित हो चुके हैं। उसे अपनी कल्पना से कुछ भी जोड़ने की छूट नहीं है।

संस्मरण का संबंध अतीत से होते हुए भी वर्तमान उसमें अनुपस्थित नहीं होता। लेखक संस्मरण लिखने के लिए तभी प्रेरित होता है जब वह वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता और उपादेयता देखता है। क्योंकि संस्मरण के लिए उसे अतीत के अपने विशाल भंडार में से व्यक्तियों और प्रसंगों का चुनाव करना होता है। अतीत में जो कुछ घटित हुआ होता है, वह सब संस्मरण का हिस्सा नहीं बनता। अतीत के वे ही चरित्र और प्रसंग जिनकी वर्तमान के लिए प्रासंगिकता होती हैं उसे ही लेखक संस्मरण का हिस्सा बनाता है।

संस्मरण में लेखक के निजी विचार किसी-न-किसी प्रकार आ ही जाते हैं, क्योंकि उसका संबंध उसके अपने जीवन से भी होता है। विस्तार संस्मरण की विशेषता है। प्रसंगों को याद करते समय लेखक उन्हें रुचिकर बनाकर प्रस्तुत करता है और कहानी कहने के लहजे का उपयोग करता है। इससे वर्णन में फैलाव आता है। संस्मरण कभी जीवनी के निकट चला आता है, कभी आत्मकथा के। यदि लेखक अपने व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं को याद करता है तो वह 'आत्मकथा' के निकट आ जाता है और यदि अन्य व्यक्ति के साथ घटी घटनाओं को याद करता है तो वह 'जीवनी' के निकट पहुँच जाता है। मुख्य बात यह है कि इसमें लेखक या किसी अन्य व्यक्ति के जीवन का कोई पक्ष सामने अवश्य आता है। इसके साथ, सबसे बड़ी बात यह है कि वह वर्णन इस प्रकार करता है, मानो बीती घटनाओं को याद कर रहा हो।

हिंदी में राहुल सांकृत्यायन की 'बचपन की स्मृतियाँ', प्रकाशचन्द्र गुप्त की 'पुरानी स्मृतियाँ', विनयमोहन शर्मा की 'रेखा और रंग', कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर की 'जिन्दगी मुस्कराई', शान्तिप्रिय द्विवेदी की 'स्मृतियाँ और कृतियाँ', विष्णु प्रभाकर की 'कुछ शब्दः कुछ रेखाएँ' और महादेवी वर्मा के लिखे 'पथ के साथी' और 'मेरा परिवार' उल्लेखनीय संस्मरण हैं।

ckS/k iz'u

7. निम्नलिखित में से कौन सी विशेषता रेखाचित्र पर लागू नहीं होती।
   क) कम से कम शब्दों का उपयोग करना।
   ख) रेखाचित्र अतीत, वर्तमान और भविष्य का भी हो सकता है।
   ग) रेखाचित्र कल्पना के आधार पर लिखा जाता है।
   घ) रेखाचित्र में अनावश्यक विस्तार से बचा जाता है। ( )
8. निम्नलिखित में से कौन सी विशेषता संस्मरण पर लागू नहीं होती।
   क) संस्मरण स्मृतियों के आधार पर लिखा जाता है।
   ख) संस्मरण का संबंध अतीत से होता है।
   ग) संस्मरण में आत्मकथात्मक तत्व भी होते हैं।
   घ) संस्मरण का कथात्मक होना जरूरी है। ( )

vH;kl

2. रेखाचित्र और संस्मरण के दो अंतर बताइए।

   ....

   ....

3. निबंध को गद्य की कसौटी क्यों कहा जाता है?

   ....

   ....

   ....

33-5 ;k=kòÙkkar dk jpukxr oSf'k"V;

जब लेखक अपनी यात्रा के दौरान देखे गये स्थानों का वर्णन करता है तो उसे यात्रावृत्तांत या यात्रा-साहित्य कहते हैं। लेखक वर्ण्य-विषय का वर्णन आत्मीयता तथा निजता के साथ करता है, जिस विषय का वह वर्णन करता है उसके साथ उसका जुड़ाव होता है तथा उसके अपने जीवन-संदर्भ भी उसमें आते हैं। आत्मीयता तथा निजता का यह गुण निबंध-शैली की भी विशेषता है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि यात्रावृत्त की वर्णन-प्रक्रिया निबंध की सी होती है। फिर भी यात्रावृत्त निबंध नहीं है, क्योंकि इसमें किसी भी विषय का समावेश नहीं हो सकता। इसमें तो यात्रा के दौरान लेखक जो कुछ भी देखता और अनुभव करता है, उसे ही यात्रावृत्तांत में लिखता है।

यात्रावृत्त के लेखक अपनी यात्रा के दौरान जो कुछ देखता और महसूस करता है, उसे प्रायः स्मृति के आधार पर लिखता है, इसलिए किसी अच्छे यात्रावृत्त में संस्मरण की प्रवृत्ति भी रहती है। फिर भी, यात्रावृत्त और संस्मरण एक-दूसरे से भिन्न है। यात्रावृत्त में समय तथा स्थान का उल्लेख अनिवार्य रूप से होता है, लेकिन संस्मरण में स्थान तथा समय का उल्लेख अनिवार्य नहीं है। इसके अतिरिक्त यात्रावृत्त में यात्रा के दौरान देखे गये स्थानों, दृश्यों अथवा घटनाओं से जुड़ी सामयिक स्मृतियों का वर्णन होता है, जबकि संस्मरण में स्थायी और अमिट स्मृतियों का वर्णन किया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्णन की दृष्टि से यात्रावृत्त निबंध और संस्मरण दोनों के कुछ गुणों को लेकर चलता है, फिर भी वह उन दोनों से अलग है। यात्रावृत्त का लेखक यात्रा के विवरणों में स्थान, दृश्य, घटना तथा व्यक्ति आदि से संबंधित कटु और मधुर स्मृतियों का चित्रण कर सकता है।

हिंदी में यात्रावृत्त विधा को समृद्ध करने वालों में महादेवी वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, अज्ञेय (अरे यायावर रहेगा याद), मोहन राकेश (आखिरी चट्टान तक), भगवतशरण उपाध्याय (वो दुनिया), यशपाल (स्वर्गोद्यान बिना साँप) आदि प्रमुख हैं।

ckS/k iz'u

9. यात्रावृत्तांत किस विधा के सबसे नजदीक है?
   क) कहानी
   ख) रेखाचित्र
   ग) संस्मरण
   घ) जीवनी ( )
10. इनमें से कौन सी विशेषता यात्रावृत्तांत पर लागू नहीं होती।
   क) इसमें यात्रा का वर्णन होता है।

ख) स्मृति के आधार पर लिखा जाता है।
ग) यात्रा लेखक के अपने अनुभव के आधार पर लिखा जाता है
घ) यात्रावृत्तांत के लिए यात्रा करना आवश्यक नहीं है। ( )

अभ्यास

4. कथात्मक साहित्य और कथेतर साहित्य में अंतर बताइए।

....

....

....

5. यात्रा वृत्तांत की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

33.6 सारांश

- इस इकाई में आपने कथेतर गद्य विधाओं का परिचय प्राप्त किया है। इस खंड में आप कथेतर विधाओं का अध्ययन करेंगे। कथेतर विधाएं वे विधाएं कहलाती हैं जिनमें कोई कथा नहीं होती। मसलन, कहानी, उपन्यास और नाटक किसी-न-किसी काल्पनिक कहानी पर आधारित होती हैं जबकि निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, यात्रावृत्तांत, रिपोतार्ज, जीवनी, आत्मकथा आदि विधाएं कथेतर गद्य विधाएं हैं क्योंकि इनमें काल्पनिक कहानी नहीं होती। अगर किसी घटना या प्रसंग का उल्लेख भी होता है, तो वह वास्तविक होती है, लेखक की कल्पना नहीं होती। इस तरह इस इकाई से आप कथेतर गद्य विधा को स्पष्ट कर सकेंगे।
- इस इकाई में आपने निबंध विधा के बारे में अध्ययन किया है। निबंध कथेतर गद्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है। निबंध को गद्य की कसौटी कहा गया है। निबंध में लेखक अपने विचारों और भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। निबंध में लेखक के व्यक्तित्व का प्रभाव भी अभिव्यक्त होता है। निबंध को अंतर्वस्तु, शैली, भाषा आदि के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। इस खंड में आप ललित निबंध और व्यंग्य निबंध का भी अध्ययन करेंगे। इकाई पढ़ने के बाद आप निबंध की विशेषताएं बता सकेंगे।
- इस इकाई में आपने रेखाचित्र, संस्मरण और यात्रावृत्तांत के बारे में भी अध्ययन किया है। रेखाचित्र शब्द चित्रकला से लिया गया है। यह ऐसी गद्य विधा है जिसमें लेखक शब्दों के माध्यम से किसी व्यक्ति, स्थिति और प्रसंग का रेखाचित्र निर्मित करता है। रेखाचित्र में लेखक विस्तार से और विश्लेषण से प्रायः बचता है। रेखाचित्र अतीत, वर्तमान और भविष्य से संबंधित हो सकता है। आप इस इकाई के आधार पर रेखाचित्र की विशेषताओं का उल्लेख कर सकते हैं।
- संस्मरण भी कथेतर गद्य विधा है। यह अतीत की स्मृतियों के आधार पर लिखा जाता है। संस्मरण में लेखक के अनुभव अभिव्यक्त होते हैं। संस्मरण किसी के भी बारे में हो सकते हैं। इस इकाई के आधार पर आप संस्मरण की विशेषताएं भी बता सकते हैं।
- यात्रावृत्तांत भी एक लोकप्रिय गद्य विधा है। इसमें लेखक अपनी यात्राओं का वर्णन प्रस्तुत करता है। लेखक जिस किसी स्थान की यात्रा करता है, उसका वर्णन प्रस्तुत करता है। वह सिर्फ जगह का विवरण प्रस्तुत नहीं करता बल्कि उस स्थान के ऐतिहासिक महत्त्व, उसके सौंदर्य और उससे जुड़े विभिन्न तथ्यों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। आप यात्रावृत्तांत की विधागत विशिष्टताओं का भी उल्लेख कर सकते हैं।

33.7 शब्दावली

पराकाष्ठा : काष्ठा का अर्थ है, सीमा और पराकाष्ठा का अर्थ है, चरम सीमा या हद।
व्यक्तित्व : व्यक्ति में निहित वे विशेषताएं जिनसे उसकी पहचान बनती है।
चहुँमुखी : चारों ओर या चारों दिशाओं में।
जिंदादिली : जिंदा दिल होना या खुश मिज़ाज प्रकृति का व्यक्ति।
अभिव्यंजना : अभिव्यक्ति, प्रकट करना।
अंतर्निहित : में स्थित या किसी वस्तु, विचार या भाव में निहित।

Hkkoo;k=k % भावनाओं का सिलसिला।
U;wure % कम से कम।
mi;ksfxrk % उपयोगिता।
o.;Z-fo"k; % वह विषय जिसका वर्णन किया जाना हो।

33-8 cks/k iz'uksa@vH;klksa ds mÙkj

cks/k iz'u

1. ख)
2. क) आत्मपरक निबंध ख) विश्लेषणात्मक निबंध
   ग) समास शैली घ) ललित निबंध
   ड़) भावनात्मक निबंध
3. क) चिंतन प्रधान निबंध ख) आत्मपरक निबंध
   भाव प्रधान निबंध वस्तुपरक निबंध
   ग) व्यास शैली
   समास शैली
4. i) कथ्य में अंतर्निहित सौंदर्य को उभारना।
   ii) मर्मस्पर्शी कथ्य।
5. समास शैली में लेखक के विचार एक के बाद एक प्रस्तुत होते रहते हैं, उनमें व्याख्या नहीं होती। इस शैली में लेखक अपने विचारों को विस्तार नहीं देता बल्कि उन्हें संक्षेप में और सूत्र रूप में प्रस्तुत करता है। इसके विपरीत व्यास शैली में लेखक अपने विचारों को खोलकर रखता चलता है। अपना मत व्यक्त करते हुए उसकी व्याख्या भी करता चलता है।
6. कथ्य के आधार पर
   लेखकीय विशिष्टता के आधार पर
7. ग 8) घ 9) ग 10) घ

vH;kl

1. इस इकाई का भाग 33.2 पढ़िए और उत्तर स्वयं लिखिए।
2. रेखाचित्र अतीत, वर्तमान और भविष्य पर भी लिखा जा सकता है जबकि संस्मरण सदैव अतीत पर आधारित होता है।
   रेखाचित्र में लेखक कम से कम शब्दों का प्रयोग करते हुए सुगठित रूप में शब्द चित्र निर्मित करता है जबकि संस्मरण में ऐसी कोई बंदिश नहीं होती।
3. निबंध को गद्य की कसौटी इसलिए कहा जाता है क्योंकि किसी लेखक का भाषा पर कितना और कैसा अधिकार है, इसका पता निबंध से ही लगता है। निबंध में लेखक को अपने भावों ओर विचारों को बहुत ही संयमित और सुगठित रूप में प्रस्तुत करना होता है। उसे विचार स्पष्ट, सुबोधगम्य और विवेकपूर्ण ढंग से रखने चाहिए। भावों की अभिव्यक्ति में उसे संयम की जरूरत होती है। जो कुछ वह कहना चाहता है उसे प्रभावशाली ढंग से कहना चाहिए। जहां लालित्य लाने की जरूरत हो, या व्यंग्य लाने की, उसमें भाषा के वैसे इस्तेमाल की क्षमता होनी चाहिए।
4. कथात्मक साहित्य और कथेतर साहित्य में मुख्य अंतर कथा का ही होता है। कथात्मक साहित्य में कोई काल्पनिक कहानी अवश्य होती है। वह काल्पनिक कहानी यथार्थ पर आधारित हो सकती है। लेकिन कथेतर साहित्य के केंद्र में कथा का होना आवश्यक नहीं है। यदि वह कोई प्रसंग या घटना का इस्तेमाल करता है, तो वह काल्पनिक न हो। जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रावृत्तांत, रिपोतार्ज आदि कथेतर गद्य विधाओं में घटनाओं और प्रसंगों का उल्लेख हो सकता है। यहां तक कि निबंध में भी ऐसा संभव है। लेकिन कथात्मक विधाओं यानी कहानी, उपन्यास और नाटक विधाओं में कथा का होना अनिवार्य है।
5. इस इकाई के भाग 33.5 को पढ़कर उत्तर स्वयं अपने शब्दों में लिखिए।

bdkbZ 34 LoxZ esa fopkj lHkk dk vf/kos'ku ¼Hkkjrsanq gfj'panz½ % okpu vkSj fo'ys"k.k

bdkbZ dh :ijs[kk

34.0 उद्देश्य
34.1 प्रस्तावना
34.2 निबंध का वाचन : स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन
34.3 निबंध का सार
34.4 संदर्भ सहित व्याख्या
34.5 निबंध की अंतर्वस्तु
34.6 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति
34.7 संरचना-शिल्प
34.8 प्रतिपाद्य
34.9 सारांश
34.10 शब्दावली
34.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

34-0 mís';

स्नातक उपाधि कार्यक्रम के ऐच्छिक पाठ्यक्रम 'हिंदी गद्य' के छठे खंड 'हिंदी निबंध और अन्य गद्य विधाएँ' की यह दूसरी और पाठ्यक्रम की चौंतीसवीं इकाई है। इस इकाई में आप आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक भारतेंदु हरिश्चंद्र का निबंध 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बादः

- आप इस निबंध का सार अपने शब्दों में प्रस्तुत कर सकेंगे;
- निबंध के प्रमुख अंशों की व्याख्या प्रस्तुत कर सकेंगे;
- निबंध की अंतर्वस्तु की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- निबंध पर लेखकीय व्यक्तित्व के प्रभाव की विवेचना कर सकेंगे; और
- निबंध के संरचना-शिल्प यानी भाषा और शैली की विशेषताएँ बता सकेंगे।

34-1 izLrkouk

स्नातक उपाधि कार्यक्रम के ऐच्छिक पाठ्यक्रम 'हिंदी गद्य' (बी.एच.डी.ई.-101) के छठे खंड की यह दूसरी इकाई और पाठ्यक्रम की 34वीं इकाई है। इसी खंड की पहली इकाई (इकाई संख्या 33) में आपने हिंदी के कथेतर गद्य विधाओं के बारे में जानकारी प्राप्त की थी। उक्त इकाई में आपने निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, यात्रावृत्तांत आदि विधाओं का अध्ययन किया था। इस इकाई में आप भारतेंदु हरिश्चंद्र का प्रसिद्ध निबंध 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन' का अध्ययन करेंगे।

यह निबंध भारतेंदु हरिश्चंद्र की पत्रिका 'कविवचन सुधा' के अंक 8 में पहली बार छपा था जो 1 जून, 1885 को प्रकाशित हुआ था और 'मित्रविलास' के खंड 8 संख्या 40 में 19 जून, 1885 को प्रकाशित हुआ था। यह व्यंग्य निबंध उन्होंने स्वामी दयानंद सरस्वती (1824-1883) और केशवचंद्र सेन (1838-1884) की मृत्यु के बाद लिखा था। इस निबंध में यह कल्पना की गयी है कि आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती और प्रख्यात ब्राह्म समाजी केशवचंद्र सेन जब स्वर्ग पहुंचे तो वहां किस तरह की स्थितियां पैदा हुईं। यह एक व्यंग्य निबंध है और इसका अंग्रेजी में अनुवाद 'क्रानिकल' में प्रकाशित हुआ था।

भारतेंदु हरिश्चंद्र को आधुनिक हिंदी साहित्य का जनक माना जाता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म बनारस के एक संपन्न परिवार में 9 सितंबर, 1850 को हुआ था। उनके पिता का नाम गोपाल चंद्र था जो स्वयं भी कवि थे और गिरधरदास के नाम से कविता लिखते थे। भारतेंदु का नाम हरिश्चंद्र था और देश, समाज और साहित्य में योगदान के कारण ही उन्हें भारतेंदु

कहा जाने लगा था। भारतेंदु का प्रारंभिक जीवन सामंती वैभव और विलास से परिपूर्ण था। लेकिन पाँच वर्ष की उम्र में उनकी माता का देहावसान हो गया और दस वर्ष की उम्र में पिता भी चल बसे।

भारतेंदु ने क्वींस कॉलेज में प्रवेश लिया था लेकिन कॉलेज की शिक्षा में उनका मन नहीं लगा। वे स्वाध्याय में ज्यादा यकीन करते थे। उन्होंने मराठी, गुजराती, बांग्ला, पंजाबी, उर्दू आदि भाषाएँ भी सीखीं। उर्दू में वे रसा उपनाम से शायरी भी करते थे। उन्होंने शिवप्रसाद सितारेहिंद से अंग्रेजी भी सीखी थी। 13 वर्ष की उम्र में उनका विवाह हो गया था। उन्होंने बंगाल से लेकर पंजाब तक की यात्राएं कीं जिससे उन्हें अपने देश को जानने-समझने का मौका मिला। महज पैंतीस वर्ष की अवस्था में उनका 6 जनवरी, 1885 को देहावसान हो गया था।

भारतेंदु की प्रतिभा चौमुखी थी। वे व्यक्ति नहीं संस्था थे। पत्रकारिता का क्षेत्र हो, साहित्य का हो या समाज सेवा का, उनकी भूमिका अग्रणी होती थी। वे अत्यंत जीवंत और मित्रपरायण व्यक्ति थे।

भारतेंदु हरिश्चंद्र को आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रवर्त्तक के रूप में जाना जाता है। उनके योगदान को देखकर ही हिंदी साहित्य के इतिहास में उस दौर को 'भारतेंदु युग' नाम दिया गया है। भारतेंदु के साहित्य में परंपरा और आधुनिकता का संयोग दिखायी देता है। उन्होंने यदि कविता में भक्ति और रीतिकालीन परंपराओं का अनुकरण करते हुए वैसी ही कविताएं लिखीं तो उन्होंने आधुनिक भावबोध से प्रेरित कविताएं भी लिखीं। इसी तरह गद्य लेखन में उन्होंने अपने समय के ज्वलंत प्रश्नों को उठाया और उन पर नाटक और निबंध लिखे। उन्होंने 1868 में 'कविवचन सुधा' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। उन्होंने 1873 में 'हरिश्चंद्र मैगजीन' नामक मासिक पत्रिका निकाली। बाद में उन्होंने इस पत्रिका का नाम 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' कर दिया। 1874 में उन्होंने स्त्रियों के लिए 'बालाबोधिनी' नामक पत्रिका निकाली। कविता और निबंध के अतिरिक्त उन्होंने बहुत से नाटक भी लिखे। उनके प्रसिद्ध नाटकों में वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (1873), चंद्रावली (1876), विषस्य विषमौशधम, भारत दुर्दशा (1876), नीलदेवी (1881), अंधेर नगरी (1881) आदि हैं। उन्होंने बांग्ला और संस्कृत के कई नाटकों का अनुवाद भी किया।

निबंध भारतेंदु युग की एक प्रमुख विधा है और उसमें भी व्यंग्य भारतेंदु युग की प्रमुख विशेषता रही है। भारतेंदु ने व्यंग्य का सहारा नाटकों, निबंधों और कविता में भी लिया है। पाठ्यक्रम में शामिल निबंध 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन' एक व्यंग्य निबंध है। इसमें उस दौर के दो सुधारवादी संगठनों ब्राह्म समाज और आर्य समाज के मतभेदों को व्यंग्य का आधार बनाया है। इस निबंध पर और विस्तार से विचार करने से पहले आइए, निबंध को पढ़ें।

34-2 fuca/k dk okpu % LoxZ esa fopkjlHkk dk vf/kos'ku

स्वामी दयानंद सरस्वती और बाबू केशवचंद्रसेन के स्वर्ग में जाने से वहाँ एक बार बड़ा आंदोलन हो गया। स्वर्गवासी लोगों में बहुतेरे तो इनसे घृणा करके धिक्कार करने लगे और बहुतेरे इनको अच्छा कहने लगे। स्वर्ग में भी 'कंसरवेटिव' और 'लिबरल' दो दल हैं। जो पुराने जमाने के ऋषिमुनि यज्ञ करके या तपस्या करके अपने-अपने शरीर को सुखा-सुखा कर और पच-पच कर मरके स्वर्ग गए हैं उनके आत्मा का दल 'कंसरवेटिव' है, और जो अपनी आत्मा ही की उन्नति सेवा और किसी अन्य सार्वजनिक उच्च भाव संपादन करने से या परमेश्वर की भक्ति से स्वर्ग में गए हैं वे 'लिबरल' दलभक्त हैं। वैष्णव दोनों दल के क्या दोनों से खारिज थे, क्योंकि इनके स्थापकगण तो लिबरल दल के थे किंतु अब ये लोग 'रेडिकल्स' क्या महा-महा रेडिकल्स को गए हैं। बेचारे बूढ़े व्यासदेव को दोनों दल के लोग पकड़-पकड़ कर ले जाते और अपनी-अपनी सभा का 'चेयरमैन' बनाते थे, और बेचारे व्यासजी भी अपने प्राचीन अव्यवस्थित स्वभाव और शील के कारण जिस की सभा में जाते थे वैसी ही वक्तृता कर देते थे। कंसरवेटिवों का दल प्रबल था; इसका मुख्य कारण यह था कि स्वर्ग के जमींदार इन्द्र, गणेश प्रभृति भी उनके साथ योग देते थे, क्योंकि बंगाल के ज़मींदारों की भाँति उदार लोगों की बढ़ती से उन बेचारों को विविध सर्वोपरि बलि और मान न मिलने का डर था।

कई स्थानों पर प्रकाश सभा हुई। दोनों दल के लोगों ने बड़े आतंक से वक्तृता दी। 'कंसरवेटिव' लोगों का पक्ष समर्थन करने को देवता भी आ बैठे और अपने-अपने लोकों में भी

उस सभा की शाखा स्थापना करने लगे। इधर 'लिबरल' लोगों की सूचना प्रचलित होने पर मुसलमानी-स्वर्ग और जैन-स्वर्ग तथा क्रिस्तानी-स्वर्ग से पैगंबर, सिद्ध, मसीह प्रभृति हिन्दू-स्वर्ग में उपस्थित हुए और 'लिबरल' सभा में योग देने लगे। बैकुंठ में चारों ओर इस की धूम फैल गई। 'कंसरवेटिव' लोग कहते, ''छिः दयानंद कभी स्वर्ग में आने के योग्य नहीं; इसने 1) पुराणों का खंडन किया, 2) मूर्ति पूजा की निंदा किया, 3) वेदों का अर्थ उलटा-पुलटा कर डाला, 4) दश नियोग करने की विधि निकाली, 5) देवताओं का अस्तित्व मिटाना चाहा, 6) और अंत में संन्यासी होकर अपने को जलवा दिया। नारायण! नारायण! ऐसे मनुष्य की आत्मा को कभी स्वर्ग में स्थान मिल सकता है, जिसने ऐसा धर्म विप्लव कर दिया और आर्यावर्त को धर्म बहिर्मुख किया।''

एक सभा में काशी के विश्वनाथ जी ने उदयपुर के एकलिंग जी से पूछा ''भाई! तुम्हारी क्या मत मारी गई जो तुमने ऐसे पतित को अपने मुंह लगाया और अब उसके दल के सभापति बने हो, ऐसा ही करना है तो जाओ लिबरल लोगों से योग दो।'' एकलिंग जी ने कहा ''भाई, हमारा मतलब तुम लोग नहीं समझे। हम उसकी बुरी बातों को न मानते न उसका प्रचार करते, केवल अपने यहाँ के जंगल की सफाई का कुछ दिन उसके ठेका दिया, बीच में वह मर गया अब उसका माल मता ठिकाने रखवा दिया तो उसका बुरा किया।''

कोई कहता 'केशवचंद्रसेन! छि छि! इसने सारे भारतवर्ष का सत्यानाश कर डाला। 1) वेद-पुराण सब को मिटाया, 2) क्रिस्तान मुसलमान सब को हिन्दू बनाया, 3) खाने-पीने का विचार कुछ न बाकी रक्खा, 4) मद्य की तो नदी बहा दी। हाय-हाय ऐसी आत्मा क्या कभी बैकुंठ में आ सकती है।''

ऐसे ही दोनों की जीवन की समालोचना चारों ओर होने लगी।

लिबरल लोगों की सभा भी बड़ी धूमधाम से जमती थी। किंतु इस सभा में दो दल हो गए थे, एक जो केशव की विशेष स्तुति करते, दूसरे वे जो दयानंद को विशेष आदर देते थे। कोई कहता, अहा धन्य दयानंद जिसने आर्यावर्त के निंदित आलसी मूर्खों की मोह निद्रा भंग कर दी। हजारों मूर्खों को ब्राह्मणों के (जो कंसरवेटिवों के पादरी और व्यर्थ प्रजा का द्रव्य खाने वाले हैं) फंदे से छुड़ाया। बहुतों को उद्योगी और उत्साही कर दिया। वेद में रेल, तार, कमेटी, कचहरी दिखाकर आर्यों की कटती हुई नाक बचा ली। कोई कहता धन्य केशव! तुम साक्षात् दूसरे केशव हो। तुमने बंग देश की मनुष्य नदी के उस वेग को, जो कृश्चन समुद्र में मिल जाने को उच्छलित हो रहा था, रोक दिया। ज्ञानकर्म का निरादर करके परमेश्वर का निर्मल भक्ति मार्ग तुमने प्रचलित किया।

कंसरवेटिव पार्टी में देवताओं के अतिरिक्त बहुत लोग थे जिनमें, याज्ञवल्क्य प्रभृति कुछ तो पुराने ऋषि थे और कुछ नारायणभट्ट, रघुनंदनभट्टाचार्य, मंडनमिश्र प्रभृति स्मृति ग्रंथकार थे। सुना है कि विदेशी स्वर्ग के कुछ 'शीआ' लोगों ने भी इनके साथ योग दिया है।

लिबरल दल में चैतन्य प्रभृति आचार्य, दादू, नानक, कबीर प्रभृति भक्त और ज्ञानी लोग थे। अद्वैतवादी भाष्यकार आचार्य पंचदशीकार प्रभृति पहले दलमुक्त नहीं होने पाए। मिस्टर ब्रैडला की भाँति इन लोगों पर कंसरवेटिवों ने बड़ा आक्षेप किया किंतु अंत में लिबरलों की उदारता से उनके समाज में इनको स्थान मिला था।

दोनों दलों के मेमोरियल तैयार कर स्वाक्षरित होकर परमेश्वर के पास भेजे गए। एक में इस बात पर युक्ति और आग्रह प्रगट किया था कि केशव और दयानंद कभी स्वर्ग में स्थान न पावैं और दूसरे में इसका वर्णन था कि स्वर्ग में इनको सर्वोत्तम स्थान दिया जाय।

ईश्वर ने दोनों दलों के डेप्यूटेशन को बुलाकर कहा ''बाबा अब तो तुम लोगों की 'सैल्फगवर्नमेंट' है। अब कौन हमको पूछता है, जो जिसके जी में आता है करता है। अब चाहे वेद क्या संस्कृत का अक्षर भी स्वप्न में भी न देखा हो पर धर्म विषय पर वाद करने लगते हैं। हम तो केवल अदालत या व्यवहार या स्त्रियों के शपथ खाने को ही मिलाए जाते हैं। किसी को हमारा डर है? कोई भी हमारा सच्चा 'लायक' है? भूतप्रेत ताजिया के इतना भी तो हमारा दरजा नहीं बचा। हम को क्या काम चाहे 'बैकुंठ में' कोई आवे। हम जानते हैं चारों लड़कों (सनक आदि) ने पहले ही से चाल बिगाड़ दी है। क्या हम अपने बिचारे जय-विजय को फिर राक्षस बनवावें कि किसी का रोकटोक करें। चाहें सगुन मानो चाहे निर्गुन, चाहे द्वैत मानो चाहे अद्वैत, हम अब न बोलेंगे। तुम जानो स्वर्ग जाने।''

डेप्यूटेशन वाले परमेश्वर की ऐसी कुछ खिजलाई हुई बात सुनकर कुछ डर गए। बड़ा निवेदन सिवेदन किया। कोई प्रकार से परमेश्वर का रोष शांत हुआ। अंत में, परमेश्वर ने इस विषय के विचार के हेतु एक 'सिलेक्ट कमेटी' स्थापन की। इसमें राजा राममोहन राय, व्यासदेव, टोडरमल, कबीर प्रभृति भिन्न-भिन्न मत के लोग चुने गए। मुसलमानी-स्वर्ग से एक 'इमाम', क्रिस्तानी से 'लूथर', जैनी से पारसनाथ, बौद्धों से नागार्जुन और अफ्रीका से सिटोवायो के बाप को इस कमेटी का 'एक्स अफीशियो मेंबर' किया। रोम के पुराने 'हरकुलिस' प्रभृति देवता तो अब गृह संन्यास लेकर स्वर्ग ही में रहते हैं और पृथ्वी से अपना संबंध मात्र छोड़ बैठे हैं, तथा पारसियों के 'जरदुश्तजी' को 'कारेस्पांडिग आनरेरी मेंबर' नियत किया और आज्ञा दिया कि तुम लोग इस सब कागज पत्र देखकर हम को रिपोर्ट करो। उनकी ऐसी भी गुप्त आज्ञा थी कि एडिटरों की आत्मागण को तुम्हारी किसी 'काररवाई' का समाचार तब तक न मिलै जब तक कि रिपोर्ट हम न पढ़ लें नहीं ये व्यर्थ चाहे कोई सुनै चाहे न सुनै अपनी टॉय टॉय मचा ही देंगे।

सिलेक्ट कमेटी का कोई अधिवेशन हुआ। सब कागज पत्र देखे गए। दयानन्दी और कैशवी ग्रंथ तथा उनके अनेक प्रत्युत्तर और बहुत से समाचार पत्रों का मुलाहिजा हुआ। बालशास्त्री प्रभृति कई कंसरवेटिव और द्वारकानाथ प्रभृति लिबरल नव्य आत्मागणों की इस में साक्षी ली गई। अंत में कमेटी या कमीशन ने जो रिपोर्ट किया उसकी मर्म बात यह थी कि:

''हम लोगों की इच्छा न रहने पर भी प्रभु की आज्ञानुसार हम लोगों ने इस मुकदमे के सब कागज पत्र देखे। हम लोगों ने इन दोनों मनुष्यों के विषय में जहाँ तक समझा और सोचा है निवेदन करते हैं। हम लोगों की सम्मति में इन दोनों पुरुषों ने प्रभु की मंगलमयी सृष्टि का कुछ विघ्न नहीं किया वरंच उस में सुख और संतति अधिक हो इसी में परिश्रम किया। जिस चंडाल रूपी आग्रह और कुरीति के कारण मनमाना पुरुष धर्मपूर्वक न पाकर लाखों स्त्री कुमार्ग गामिनी हो जाती हैं, लाखों विवाह होने पर भी जन्म भर सुख नहीं भोगने पातीं, लाखों गर्भ नाश होते और लाखों ही बाल हत्या होती है, उसी पापमयी परम नृशंस रीति को इन लोगों ने उठा देने में अपने शक्यभर परिश्रम किया। जन्मपत्री की विधि के अनुग्रह से जब तक स्त्री पुरुष जीऐं एक तीर घाट एक मीर घाट रहैं, बीच में इस वैमनस्य और असंतोष के कारण स्त्री व्यभिचारिणी पुरुष विषयी हो जायं, परस्पर नित्य कलह हो, शांति स्वप्न में भी न मिलै, वंश न चलै, यह उपद्रव इन लोगों से नहीं सहे गये। विधवा गर्भ गिरावै, पंडित जी या बाबू साहब यह सह लेंगे, वरंच चुपचाप उपाय भी करा देंगे, पाप को नित्य छिपावेंगे, अंततोगत्वा निकल ही जायँ तो संतोष करेंगे, इस दोष को इन दोनों ने निःसंदेह दूर करना चाहा। सवर्ण पात्र न मिलने से कन्या को वर मूर्ख अंधा वरंच नपुंसक मिले तथा वर को काली कर्कशा कन्या मिले जिसके आगे बहुत बुरे परिणाम हों, इस दुराग्रह को इन लोगों ने दूर किया। चाहे पढ़े हों चाहे मूर्ख, सुपात्र हो कि कुपात्र, चाहे प्रत्यक्ष व्यभिचार करें या कोई भी बुरा कर्म करें, पर गुरु जी हैं, पंडित जी हैं, इनका दोष मत कहो, कहोगे तो पतित होगे, इनको दो, इनको राजी रक्खो; इन सत्यानाश संस्कार को इन्होंने दूर किया। आर्य जाति दिन-दिन ह्रास हो, लोग स्त्री के कारण, धन के वा नौकरी व्यापार आदि के लोभ से, मद्यपान के चसके से, बाद में हार कर राजकीय विद्या का अभ्यास करके मुसलमान या क्रिस्तान हो जायँ, आमदनी एक मनुष्य की भी बाहर से न हो केवल नित्य व्यय हो, अंत में आर्यों का धर्म और जाति कथाशेष रह जाय, किंतु जो बिगड़ा सो बिगड़ा फिर जाति में कैसे आवेगा, कोई भी दुष्कर्म किया तो छिपके क्यों नहीं किया, इसी अपराध पर हजारों मनुष्य आर्य पंक्ति से हर साल छूटते थे, उसको इन्होंने रोका। सब से बढ़ कर इन्होंने यह कार्य किया, सारा आर्यावर्त जो प्रभु से विमुख हो रहा था, देवता बिचारे तो दूर रहे, भूत प्रेत पिशाच मुरदे, साँप के काटे, बाघ के मारे, आत्महत्या करके मरे, जल, दब या डूब कर मरे लोग, यही नहीं मुसलमानी पीर पैगंबर औलिया शहीद वीर ताजिया, ...उनको मानने और पूजने लग गए थे। देखते सुनते लज्जा आती थी कि हाय ये कैसे आर्य हैं, किससे उत्पन्न हैं, इस दुराचार की ओर से लोगों का अपनी वक्तृताओं के थपेड़े के बल से मुँह फेर कर सारे आर्यावर्त को शुद्ध 'लायल' कर दिया।

'भीतरी चरित्र में इन दोनों के जो अंतर हैं' वह भी निवेदन कर देना उचित है। दयानंद की दृष्टि हम लोगों की बुद्धि में अपनी प्रसिद्धि पर विशेष रही। रंग रूप भी इन्होंने कई बदले। पहले केवल भागवत का खंडन किया। फिर सब पुराणों का। फिर कई ग्रंथ माने कई छोड़े। अपने काम के प्रकरण माने, अपने विरुद्ध को क्षेपक कहा। पहले दिगंबर मिट्टी पोते महात्यागी थे। फिर संग्रह करते-करते सभी वस्त्र धारण किये। भाष्य में भी रेल तार आदि कई अर्थ जबरदस्ती

किए। इसी से संस्कृत विद्या को भली भाँति न जानने वाले ही प्रायः इनके अनुयायी हुए। जाल को छुरी से न काट कर दूसरे जाल ही से जिस को काटना चाहा इसी से दोनों आपस में उलझ गए और इसका परिणाम गृह-विच्छेद उत्पन्न हुआ।

''केशव ने इनके विरुद्ध जाल काटकर परिष्कृत पथ प्रकट किया। परमेश्वर से मिलने-मिलाने की आड़ या बहाना नहीं रखा। अपनी भक्ति की उच्छलित लहरों में लोगों का चित्त आर्द्र कर दिया। यद्यपि ब्राह्म लोगों में सुरा मांसादि का प्रचार विशेष है किंतु इसमें केशव का दोष नहीं। केशव अपने अटल विश्वास पर खड़ा रहा। यद्यपि कूच बिहार के संबंध करने से और यह कहने से कि ईशामसीह आदि उससे मिलते हैं, अंतावस्था के कुछ पूर्व उनके चित्त की दुर्बलता प्रकट हुई थी, किंतु वह एक प्रकार का उन्माद होगा वा जैसे बहुतेरे धर्म प्रचारकों ने बहुत बड़ी बातें ईश्वर की आज्ञा बतला दी वैसे ही यदि इन बेचारे ने एक दो बात कही तो क्या पाप किया। पूर्वोक्त कारणों से ही केशव का मरने पर जैसा सारे संसार में आदर हुआ वैसा दयानंद का नहीं हुआ। इस के अतिरिक्त इन लोगों के हृदय के भीतर छिपा कोई पुण्य पाप रहा हो तो उस को हम लोग नहीं जानते इस का जानने वाला केवल तू ही है।

इस रिपोर्ट पर विदेशी मेंबरों ने कुछ क्रुद्ध होकर हस्ताक्षर नहीं किया ।

रिपोर्ट परमेश्वर के पास भेजी गयी। इस को देखकर इस पर क्या आज्ञा हुई और वे लोग कहाँ भेजे गए यह जब हम भी वहाँ जाएँगे और फिर लौट कर आ सकेंगे तो पाठक लोगों को बतलावेंगे। या आप लोग कुछ दिन पीछे आप ही जानोगे।

34-3 fuc/k dk lkj

भारतेंदु हरिश्चंद्र का निबंध 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन' एक वैचारिक निबंध है जो व्यंग्य शैली में लिखा गया है। भारतेंदु उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में लेखन में सक्रिय थे। यह वह दौर था जब देश पर अंग्रेजों का शासन था। देश में अंग्रेजों ने शिक्षा, न्याय, प्रशासन आदि के क्षेत्र में एक नयी तरह की व्यवस्था स्थापित की थी जो इससे पूर्व की व्यवस्थाओं से बिल्कुल भिन्न प्रकार की थी। अंग्रेजों के संपर्क में आने से शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान के नये आलोक से भारतीयों को भी यह लगने लगा कि हमारी गुलामी का कारण हमारी सामाजिक और सांस्कृतिक रूढ़िवादिता में निहित है। धर्म के नाम पर तरह-तरह के अंधविश्वास और कुरीतियां फैली हुई थीं। हिंदू समाज जातिवाद के दलदल में फंसा हुआ था और अपने ही समाज के निम्न कहे जाने वाले वर्ग के साथ पशु से भी बदतर व्यवहार किया जाता था। स्त्रियों की दशा भी बहुत दयनीय थी। उनका बहुत छोटी उम्र में विवाह कर दिया जाता था और पति की मृत्यु के बाद या तो उन्हें विधवा के रूप में नारकीय जीवन जीना पड़ता था या सती प्रथा के नाम पर पति के साथ जिंदा जला दिया जाता था। स्त्रियों में शिक्षा का पूरी तरह से अभाव था। इनमें से कई कुरीतियां दूसरे धार्मिक समुदायों में भी प्रचलित थीं। इन्हीं परिस्थितियों ने उन्नीसवीं सदी के आरंभ से ही समाज सुधार के लिए प्रयत्न होने लगे। राजा राममोहन राय, ज्योतिबा फुले, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, केशवचंद्र सेन, स्वामी दयानंद सरस्वती, सर सैयद अहमद खां आदि ने देश को इन कुरीतियों से मुक्त कराने का प्रयास किया। उनकी इन्हीं कोशिशों के कारण इस पूरे दौर को रिनांसा या नवजागरण का दौर कहा जाता है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र भी इसी दौर की उपज थे। उन्होंने अपने लेखन, पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा समाज सुधार के इस आंदोलन को आगे बढ़ाया था। अपने कई समकालीन लेखकों जैसे प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी आदि को उन्होंने इस कार्य के लिए प्रेरित किया। लेकिन इस दौर में समाज सुधार के जो आंदोलन चल रहे थे, उनमें सभी मुद्दों पर एकता नहीं थी। खासतौर पर ब्राह्म समाज और आर्यसमाज कई मुद्दों पर एक दूसरे से भिन्न राय रखते थे। ब्रह्म समाज के प्रमुख नेता केशवचंद्र सेन और आर्य समाज के संस्थापक दयानंद सरस्वती की मृत्यु बहुत थोड़े से अंतराल में हुई थी। दयानंद की मृत्यु 1983 में और केशवचंद्र की मृत्यु 1984 में हुई थी। इन दोनों की मृत्यु के बाद की स्थितियों से ही यह निबंध प्रेरित है। भारतेंदु एक ऐसी स्थिति की कल्पना करते हैं जब दयानंद सरस्वती और केशवचंद्र सेन दोनों स्वर्ग पहुंच जाते हैं। पृथ्वी की तरह वहां भी कंजरवेटिवों यानी अनुदारवादियों और लिबरलों यानी उदारवादियों के दो समूह बन जाते हैं। दयानंद और केशवचंद्र दोनों के समर्थकों को भारतेंदु लिबरल समूह में रखते हैं। लेकिन इस लिबरल समूह में वे दो अलग-

अलग दलों की कल्पना करते हैं, एक दयानंद सरस्वती का समर्थक दल और एक केशवचंद्र सेन का समर्थक दल। इसके बाद वे कल्पना करते हैं कि स्वर्ग में कंजरवेटिवों और लिबरलों के आपसी झगड़े को सुलझाने के लिए वे परमेश्वर के पास जाते हैं और उनसे हस्तक्षेप की मांग करते हैं। वे अपना-अपना मांगपत्र पेश करते हैं जिनमें एक दल मांग करता है कि केशवचंद्र सेन और दयानंद सरस्वती को स्वर्ग में जगह न दी जाए जबकि दूसरे दल का आग्रह था कि इन्हें स्वर्ग में सर्वोत्तम स्थान दिया जाए। पहले तो भगवान इस मामले में पड़ने से इन्कार करते हैं और कहते हैं कि वे अपने मसले खुद हल करें लेकिन जब दोनों दल उनसे अनुनय-विनय करते हैं तो वे मान जाते हैं। इस समस्या पर विचार करने के लिए वे एक 'सिलेक्ट कमिटी' बनाते हैं। जिनमें लिबरल और कंजरवेटिव दोनों गुटों में से प्रतिनिधि रखते हैं। उनमें अन्य धर्मों के प्रतिनिधियों को भी स्थान देते हैं। उन्हें इस बात से सावधान भी करते हैं कि वे संपादकों की आत्माओं से सावधान रहें और उन्हें किसी बात की जानकारी तब तक न मिले जब तक यह सिलेक्ट कमिटी परमेश्वर को अपनी रिपोर्ट न सौंप दे क्योंकि वे व्यर्थ की चिल्लपों मचायेंगे। यह सिलेक्ट कमिटी एक अधिवेशन करती है। दोनों के विभिन्न ग्रंथों का अध्ययन करती है, संबंधित समाचारपत्रों का अध्ययन भी करती है और इस तरह दोनों पक्षों के बारे में पूरी जानकारी हासिल करती है। इसके बाद कमिटी या कमीशन एक रिपोर्ट तैयार करती है और उसे परमेश्वर को सौंप देती है। इस रिपोर्ट में स्वामी दयानंद सरस्वती और केशवचंद्र सेन के योगदान को सराहा जाता है। उन्हें इस बात का श्रेय दिया जाता है कि आर्यों (यहां तात्पर्य हिंदुओं से है) में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने में इनका बहुत बड़ा योगदान है। स्त्रियों के साथ होने वाले अनाचार को रोकने में, विधवा की स्थिति सुधारने में, बाल विवाह को रोकने में और तरह-तरह के अंधविश्वासों से हिंदू समाज को मुक्त कराने में इनका बड़ा योगदान रहा है। वे दोनों को इस बात का श्रेय भी देते हैं कि इनके प्रयत्न से ही अपने धर्म से विमुख हो रहे हिंदुओं को अपने धर्म में बनाये रखने में भी इनका बड़ा योगदान है। इसके साथ ही वे दोनों की कमजोरियों को भी सामने रखते हैं। विशेष रूप से स्वामी दयानंद के प्रयत्नों में निहित अतिवादिता की इस रिपोर्ट में आलोचना की जाती है। यह भी लिखा गया कि उन्होंने प्रायः सभी की आलोचना की और अपने समर्थन में जो बातें नहीं थीं उन्हें क्षेपक कहकर नकार दिया। यही नहीं धर्मग्रंथों की व्याख्या करते हुए जबरन नये अर्थ किये गये। उनके अनुसार, दयानंद सरस्वती ने जाल को जाल से काटने की कोशिश की इससे समाज में फूट ही पैदा हुई। इसके विपरीत केशवचंद्र सेन ने जाल को काटने का प्रयास किया यही वजह है कि केशवचंद्र सेन का ज्यादा सम्मान हुआ। रिपोर्ट ईश्वर को पेश कर दी गयी लेकिन इस पर विदेशी सदस्य ने हस्ताक्षर नहीं किये क्योंकि वे इससे सहमत नहीं थे। ईश्वर ने इस रिपोर्ट का क्या किया लेखक के अनुसार इसका पता तो तभी लगेगा जब हम स्वयं स्वर्ग में जायेंगे।

निबंध पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक व्यंग्य निबंध है और भारतेन्दु के समय में नवजागरण के नेताओं के बीच जो विवाद चल रहे थे, उसी को उन्होंने व्यंग्य का विषय बनाया है। इस व्यंग्य में स्वयं भारतेन्दु का झुकाव किस तरफ है, इसे भी आसानी से देखा जा सकता है।

34-4 lnHk lfgr O;k[;k

भारतेन्दु हरिश्चंद्र का यह निबंध 1984 में लिखा गया था। उस समय तक हिंदी गद्य की भाषा का वह परिनिष्ठित रूप विकसित नहीं हुआ था जो आज देखने को मिलता है। इसके बावजूद निबंध में प्रयुक्त विचारों और भावों को समझने में अधिक कठिनाई नहीं होती। इस भाग में हम निबंध के कुछ अंशों की व्याख्या करने का प्रयास करेंगे।

1) *''बाबा अब तो तुम लोगों की 'सैल्फगवर्नमेंट' है। अब कौन हम को पूछता है, जो जिसके जी में आता है करता है। अब चाहे वेद क्या संस्कृत का अक्षर भी स्वप्न में भी न देखा हो पर धर्म विषय पर वाद करने लगते हैं। हम तो केवल अदालत या व्यवहार या स्त्रियों के शपथ खाने को ही मिलाए जाते हैं। किसी को हमारी डर है? कोई भी हमारा सच्चा 'लायक' है?*

(निबंध के उपर्युक्त अंश की व्याख्या करने से पहले हमें यह जानना होगा कि यह अंश निबंध में किस संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है। क्योंकि जैसाकि हम पिछली इकाइयों में भी देख चुके हैं कि किसी भी गद्यांश की व्याख्या से पहले यह जानना जरूरी है कि उक्त अंश किस संदर्भ में कहा गया है।)

lanHkZ: यह अंश भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा लिखित निबंध 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन' से लिया गया है। यह निबंध केशवचंद्र सेन और दयानंद सरस्वती के स्वर्ग में पहुंचने की स्थितियों का काल्पनिक विवरण है। वहां पृथ्वी की तरह कंजरवेटिव और लिबरल दो समूह बन जाते हैं और उनमें बढ़ते विवाद को समाप्त कराने के लिए लोग ईश्वर के पास पहुंचते हैं। उनकी बातें सुनने के बाद ईश्वर जो कहते हैं, उसी का उल्लेख इस अंश में किया गया है।

(व्याख्या का तात्पर्य है कथन में कही गयी बातों को समझाकर लिखना। इस दृष्टि से उपर्युक्त अंश को पढ़ने पर कुछ बातों की ओर ध्यान जाता है। ईश्वर को अपनी सत्ता के कमजोर होने का एहसास होता है। लोगों के मन से ईश्वर का डर खत्म हो गया है। उनका मानना है कि लोग धर्म को समझने के लिए जिन बातों की जानकारी जरूरी है, उसे जाने बिना ही उस पर वाद-विवाद करते हैं। ईश्वर का उपयोग केवल अदालतों में शपथ लेने के लिए रह गया है। लोग ईश्वर में विश्वास करने की बजाए भूतप्रेत में ज्यादा यकीन करते हैं। देखा जाए तो भारतेंदु ने ईश्वर के मुख से बहुत सी अंतर्विरोधी बातें कहलायी हैं। इन बातों की रोशनी में ही उक्त अंश की व्याख्या की जा सकती है।)

O;k[;k% ईश्वर दोनों दलों की शिकायतें सुनने के बाद उनसे अपनी असमर्थता व्यक्त करते हैं कि वे कुछ नहीं कर सकते। वे दोनों दल वालों से कहते हैं कि अब तो तुम्हारी अपनी सरकार है। तुम्हें अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं करना चाहिए। वैसे भी आजकल ईश्वर को कौन पूछता है। किसी के मन में ईश्वर का डर नहीं रह गया है। जिसके जो मन में आता है, वह करता है। लेकिन ईश्वर इस बात पर भी अफसोस जताते हैं कि लोग उन विषयों पर बहस करते हैं जिनके बारे में वे जानते नहीं। वेद का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि जो लोग संस्कृत नहीं जानते वे भी धर्म पर वाद-विवाद करते हैं। उन्हें इस बात का भी अफसोस है कि ईश्वर का नाम तो केवल अदालतों में या आम बोलचाल में शपथ लेने के लिए रह गया है। जब ईश्वर की शक्ति को कोई मानता ही नहीं तब उनके हस्तक्षेप का क्या अर्थ?

(व्याख्या के बाद गद्यांश के कुछ ऐसे पक्ष जिन्हें खासतौर पर रेखांकित करने की जरूरत है, उन्हें 'विशेष' के अंतर्गत लिखना होता है। मसलन गद्यांश के कथ्य में आया कोई विशेष संदर्भ, भाषा और शैली की विशिष्टता आदि को रेखांकित किया जा सकता है।)

fo'ks"k %

1) सेल्फगवर्नमेंट का तात्पर्य है, अपनी सरकार। यहां दरअसल शासन व्यवस्थाओं के सामंतशाही के समाप्त होने और लोकतांत्रिक व्यवस्था के आने की ओर संकेत किया गया है। जिस समय यह लेख लिखा गया तब भारत में अंग्रेजों का शासन था और सही अर्थों में लोकतंत्र नहीं आया था। लेकिन सामंतशाही समाप्त हो रही थी और स्थानीय स्तरों पर जो सेल्फगवर्नमेंट बनायी जा रही थी, उसी की ओर यहां संकेत है।
2) वेद का तात्पर्य वेदों से है, जो चार हैं। इनकी भाषा संस्कृत है। हालांकि इस संस्कृत का रूप वही नहीं है जो आज प्रयुक्त होती है।
3) ताजिया दरअसल मोहर्रम के अवसर पर निकाला जाता है। अपनी मनोकामनाएं पूरी होने की आशा में या किसी दैवीय प्रकोप से बचने के लिए हिंदू भी ताजिए की परिक्रमा करते हैं या उसके नीचे से निकलकर अपनी निष्ठा व्यक्त करते हैं। यहां इसी की ओर संकेत है।
4) भारतेंदु द्वारा लिखित इस निबंध की भाषा पर तत्कालीन खड़ी बोली का असर है। निबंध की भाषा काफी अनगढ़ है और व्याकरण संबंधी कई त्रुटियां भी देखी जा सकती हैं। दरअसल उस समय हिंदी गद्य का स्वरूप निर्मित हो रहा था।

   इस निबंध में और भी ऐसे अंश हैं जिनकी संदर्भ सहित व्याख्या की जा सकती है। ऐसा एक अंश यहां दिया जा रहा है जिनकी आप स्वयं व्याख्या कर सकते हैं।

vH;kl

1) निम्नलिखित गद्यांश की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

   हम लोगों की सम्मति में इन दोनों पुरुषों ने प्रभु की मंगलमयी सृष्टि का कुछ विघ्न नहीं किया वरंच उस में सुख और संतति अधिक हो इसी में परिश्रम किया। जिस चंडाल रूपी आग्रह और कुरीति के कारण मनमाना पुरुष धर्मपूर्वक पाकर लाखों स्त्री कुमार्ग गामिनी हो जाती हैं, लाखों विवाह होने पर भी जन्म भर सुख नहीं भोगने पातीं, लाखों गर्भ नाश होते और लाखों ही बाल हत्या होती हैं, उस पापमयी नृशंस रीति इन लोगों ने उठा देने में अपनी शक्यभर परिश्रम किया।

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

34.5 निबंध की अंतर्वस्तु

यह निबंध स्वामी दयानंद सरस्वती और केशवचंद्र सेन के निधन के उपरांत लिखा गया है। स्वामी दयानंद सरस्वती का निधन 30 अक्टूबर 1883 को और केशवचंद्र सेन का निधन 8 जनवरी, 1884 को हुआ था। स्वयं भारतेंदु का निधन 6 जनवरी, 1885 को हुआ। इससे स्पष्ट है कि भारतेंदु ने यह निबंध 1984 में ही किसी समय लिखा होगा जब दयानंद सरस्वती और केशवचंद्र सेन दोनों का देहावसान हो चुका था। इन दोनों की मृत्यु में सिर्फ़ दो महीने का अंतर है। इसलिए इस निबंध में जो कल्पना की गयी है, वह तर्कपूर्ण है। लेखक इस निबंध में यह मानकर चल रहा है कि स्वर्ग में भी वही सब विवाद होते हैं जो पृथ्वी पर होते हैं। लोग वहां भी उसी तरह गुटबाजियों में बंटे होते हैं जिस तरह पृथ्वी पर। स्पष्ट ही स्वर्ग में ऐसा होता है या नहीं या स्वर्ग और नरक होते भी हैं या नहीं, ये सब विवाद के विषय हैं। यहां तक कि ईश्वर के अस्तित्व को लेकर भी सभ्यता के आरंभ से ही संदेह किया जाता रहा है। इसलिए इस निबंध में कही हुई बातों को लेखकीय कल्पना के रूप में ही ग्रहण किया जाना चाहिए। इस लेखकीय कल्पना का आधार भारतेन्दु के समय चल रहे विवाद हैं। उस समय बहुत से धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मसलों पर उस दौर के समाज सुधारकों और विभिन्न सामाजिक संगठनों के बीच विवाद चल रहा था। स्वामी दयानंद सरस्वती जिन्होंने आर्य समाज की स्थापना की थी और 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रंथ की रचना की थी उनके विचार उसी दौर के कई अन्य महापुरुषों से मेल नहीं खाते थे। ब्राह्मण समाज के महान नेता और समाज सुधारक केशवचंद्र सेन उनके समकालीन थे लेकिन कई मामलों में उनका दयानंद सरस्वती से मतभेद था। इन विवादों को ही भारतेन्दु ने अपनी इस रचना का विषय बनाया है।

भारतेंदु ने बैकुंठ के लोगों को दो गुटों में बांटा है। एक, कंसरवेटिव और दो, लिबरल। दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं और उनकी आलोचना करते हैं। मसलन, कंसरवेटिव इस बात का विरोध करते हैं कि स्वामी दयानंद सरस्वती को स्वर्ग में स्थान दिया जाए। इसके लिए वे विभिन्न तर्क प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार दयानंद ने

1) पुराणों का खंडन किया।
2) मूर्ति पूजा की निंदा की।
3) वेदों का अर्थ उलटा-पुलटा कर डाला।
4) दश नियोग करने की विधि निकाली।
5) देवताओं का अस्तित्व मिटाना चाहा।
6) संन्यासी होकर अपने को जलवा दिया।

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि भारतेंदु के अनुसार उपर्युक्त बातों का विरोध करने वाले कंसरवेटिव अर्थात रूढ़िवादी हैं। उन्होंने रूढ़िवादियों को परिभाषित भी किया है। उनके अनुसार रूढ़िवादी वे हैं 'जो पुराने जमाने के ऋषिमुनि यज्ञ कर करके या तपस्या करके अपने-अपने शरीर को सुखा-सुखा कर और पच-पच कर मरके स्वर्ग गए हैं उनके आत्मा का दल कंसरवेटिव है'। इसके विपरीत लिबरल यानी उदारपंथी वे हैं 'जो अपनी आत्मा ही की उन्नति सेवा और किसी अन्य सार्वजनिक उच्च भाव संपादन करने से या परमेश्वर की भक्ति से स्वर्ग में गए हैं वे लिबरल दलभक्त हैं'। इसके बाद उन्होंने दोनों दलों में शामिल और उनका समर्थन करने वालों की सूची भी पेश की है। उनके अनुसार, स्वर्ग के जमींदार इंद्र, गणेश आदि देवताओं का समर्थन प्राप्त था। इनके अलावा याज्ञवलक्य, नारायण भट्ट, रघुनंदनभट्टाचार्य, मंडन मिश्र आदि ऋषि और स्मृतिकार थे। इसके विपरीत लिबरलों में चैतन्य महाप्रभु, दादु दयाल, नानक, कबीर आदि भक्त और ज्ञानी लोग थे। लिबरलों को हिंदुओं के अलावा अन्य धर्मों के लोगों का समर्थन भी हासिल था। लेकिन भारतेंदु के अनुसार कंसरवेटिव लोगों का दल ज्यादा प्रबल था। उनका यह कहना इस अर्थ में सही है कि भारतेंदु के समय भी लिबरल विचारों के पक्षधर बहुत कम थे। लिबरल धर्म के मामले में उदार होते थे, इसलिए उनको दूसरे दलों का भी समर्थन हासिल होता था। केशवचंद्र सेन पर तो रूढ़िवादियों ने ईसाई समर्थक होने का आरोप भी लगाया था। उनके अनुसार केशवचंद्र सेन ने भारतवर्ष का सत्यानाश कर डाला। क्योंकि उन्होंने

1) वेद-पुराणों को मिटा डाला।
2) ईसाइयों और मुसलमानों को हिंदू बना डाला।

3) खान-पान का विचार नहीं किया।
4) शराब पीने को बढ़ावा दिया।

इन बातों से साफ है कि रूढ़िवादियों की नज़र में दयानंद सरस्वती और केशवचंद्र सेन दोनों ही गलत थे और उन्होंने अपने कर्मों और विचारों से हिंदू धर्म को नुकसान पहुंचाया।

इसका अर्थ यह नहीं था कि उदारपंथियों में पूरी एकता व्याप्त थी। भारतेंदु के अनुसार लिबरलों के भी दो दल बन गये थे। इनमें से एक दल दयानंद सरस्वती का समर्थन करता था और दूसरा दल केशवचंद्र सेन का। दयानंद सरस्वती के समर्थकों का मानना था कि उन्होंने आर्यावर्त यानी भारत के निंदित आलसी मूर्खों की मोह निद्रा भंग की। उन्हें मूर्ख ब्राह्मणों के फंदे से छुड़ाया। बहुत से लोगों को उद्योगी और उत्साही बनाया। दयानंद को इस बात का भी श्रेय दिया गया कि उन्होंने वेदों में रेल, तार, कमेटी, कचहरी दिखाकर आर्यों की कटती हुई नाक बचा ली। लेकिन जो केशवचंद्र सेन के समर्थक थे उन्होंने केशव को इस बात का श्रेय दिया कि उन्होंने बंगाल के लोगों को ईसाई होने से रोका। उन्होंने ज्ञानमार्ग की बजाए भक्तिमार्ग के महत्त्व को स्थापित किया। इस तरह इस निबंध के अनुसार कंसरवेटिवों और लिबरलों में तो मतभेद था ही, साथ ही लिबरलों में आपस में भी मतभेद था और वहां भी गुट बने हुए थे।

इन मतभेदों के चलते हुए ही कंसरवेटिवों और लिबरलों ने ईश्वर से फरियाद की। कंसरवेटिवों का कहना था कि केशव और दयानंद को स्वर्ग में जगह न दी जाए जबकि दूसरों का कहना था कि दोनों को स्वर्ग में सर्वोत्तम जगह प्रदान की जाए।

पहले तो दोनों दलों के प्रतिनिधि मंडल को भगवान ने इस संबंध में किसी तरह के हस्तक्षेप से इन्कार कर दिया। उनका कहना था कि अब मनुष्य को ईश्वर की कोई जरूरत नहीं रह गयी है। लोगों ने अपनी सरकार स्वयं बना ली है और हर मामले में वे खुद फैसला लेते हैं। फिर, धर्म और ईश्वर के मामले में किसी को भगवान की जरूरत ही नहीं रह गयी है। लोग उनके बारे में हर तरह की राय खुद दे देते हैं। ईश्वर की जगह लोग भूत-प्रेत आदि को पूजते हैं। लेकिन उनके बहुत आग्रह पर भगवान एक सिलेक्ट कमेटी बनाते हैं। इस कमेटी में राजा राममोहन राय, व्यासदेव, टोडरमल, कबीर आदि को मनोनीत किया गया। इनके अलावा मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, पारसी और अफ्रीका के प्रतिनिधि भी रखे गये और इस सिलेक्ट कमेटी को आदेश दिया कि सभी कागज और दस्तावेजों की जांच कर एक रिपोर्ट तैयार कर उन्हें सौंपे। लेख से यह स्पष्ट नहीं होता कि कमेटी को कंसरवेटिव और लिबरल के बीच विवाद को हल करना है या लिबरल के दो गुटों के बीच के विवाद को। लेकिन सिलेक्ट कमेटी केशव और दयानंद के बीच के विवाद तक ही अपने को सीमित रखती है और उन्हीं से संबंधित कागज देखती हैं और अपनी रिपोर्ट तैयार करती है।

रिपोर्ट में दोनों महापुरुषों के योगदान का प्रशंसात्मक विवरण दिया गया है। लेकिन उनका झुकाव केशवचंद्र सेन की ओर ज्यादा दिखायी देता है। जहां केशवचंद्र के बारे में फैले प्रवाद की रिपोर्ट में सफाई दी गयी है, वहीं दयानंद की कमजोरियों को रेखांकित किया गया है। निबंध के अनुसार, रिपोर्ट पर किसी अन्य धर्मावलंबियों ने हस्ताक्षर नहीं किये। संभवतः इसका कारण रिपोर्ट का हिंदू दृष्टि से लिखा जाना था।

पूरे निबंध को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध का वह दौर जब यह निबंध लिखा गया था, वैचारिक रूप से उथल-पुथल से भरा था। कई तरह के विरोधी विचारों के बीच संघर्ष देखा जा सकता था। भारतेंदु ने इन विचारों को दो समूहों में विभाजित किया है। एक, कंसरवेटिव और दूसरे लिबरल। उन्होंने ये शब्द पश्चिम से ग्रहण किये हैं जहां विचारों को इन दोनों समूहों में बांट कर देखा जाता है। कंसरवेटिव का अर्थ है रूढ़िवादी। यानी जो परंपरागत विचारों को मानते हों और नये विचारों का विरोध करते हों, उन्हें कंसरवेटिव या रूढ़िवादी कहा जाता है। भारतेंदु की यह समझ बहुत स्पष्ट थी कि जो लोग पुराने विचारों के समर्थक थे और नये विचारों का विरोध करते थे, उन्हें कंसरवेटिव कहा जाना चाहिए। इस श्रेणी के अंतर्गत उन्होंने उनको रखा जो भारतीय परंपरा के अनुसार भी रूढ़िवादी ही हैं या जिनके लिए रूढ़िवादी होना लाभप्रद है। इसलिए विभिन्न देवताओं और ब्राह्मणवादी ऋषि-मुनियों को वे कंसरवेटिव की श्रेणी में रखती हैं। इसके विपरीत वे विचारक जो ब्राह्मणवादी और रूढ़िवादी नहीं हैं, उन्हें लिबरल के अंतर्गत रखते हैं। यह महज संयोग नहीं है कि कबीर, नानक, दादू,

चैतन्य महाप्रभु को भारतेंदु ने लिबरलों की श्रेणी में रखा। हम जानते हैं कि ये सभी धर्म के रूढ़िवादी स्वरूप के समर्थक नहीं थे।

लिबरल का अर्थ है, उदार विचारों का। यानी जो नये विचारों को उदारतापूर्वक स्वीकार करता है और पुराने के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण रखता है। लेखक के अनुसार भी केशवचंद्र सेन और स्वामी दयानंद सरस्वती कई मामलों में रूढ़िवादी नहीं थे और नये को स्वीकार करते थे। इसीलिए वह केशवचंद्र सेन और दयानंद सरस्वती को लिबरल विचारक मानते हैं। लेकिन उनका यह भी मानना है कि लिबरलों में भी कई समूह हैं जिनमें आपस में मतभेद हैं। केशवचंद्र सेन और दयानंद सरस्वती दोनों लिबरल हैं लेकिन उनके विचारों में पूर्ण मतैक्य नहीं हैं। कई मामलों में वे एक दूसरे के विरोधी हैं। उनके अनुयायी भी इसी वजह से एक दूसरे का विरोध करते हैं। भारतेंदु ने दोनों में किन बातों पर एकता और किन बातों पर विरोध है, इसका अपने इस निबंध में उल्लेख किया है। अपनी रिपोर्ट में उन्होंने लिखा कि इन दोनों महापुरुषों ने बाल विवाह, वैधव्य, अनमेल विवाह आदि कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाकर देश का भला ही किया। दोनों ने समाज को कुरीतियों और अंधविश्वासों से मुक्त कराने की कोशिश की। उनका यह प्रयत्न हिंदू समाज की रक्षा के लिए था। दोनों महापुरुषों के बीच अंतर को बताते हुए रिपोर्ट में कहा गया कि स्वामी दयानंद अपनी प्रशंसा के प्रति सचेत रहते थे और समय-समय पर अपने रूप बदलते रहे। उन्होंने वेदों से कई ऐसी बातें निकाली जो सही नहीं थी। रेल, तार आदि की बातें उन्हें ही प्रभावित कर सकती थीं जो संस्कृत नहीं जानते थे। एक जाल को काटने के लिए उन्होंने दूसरा जाल फैला दिया। इसके विपरीत केशवचंद्र सेन में ऐसी कोई बुराई नहीं थी। जो मांसादि का प्रचार करने की बात उनके बारे में कही जाती है उसके बारे में रिपोर्ट में सफाई देते हुए कहा गया कि इसके लिए उन्हें दोषी नहीं ठहराया जा सकता। जहां तक ईसाई बनाने का सवाल है उसे वह सही नहीं मानते। इस प्रकार जहां दयानंद की कमजोरियां रेखांकित की गयी है, वहीं केशवचंद्र के बारे में फैले अपवादों की सफाई देने का प्रयत्न किया गया है।

इस निबंध को पढ़ने से साफ है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र के दृष्टिकोण में कई तरह के अंतर्विरोध भरे थे। स्वामी दयानंद सरस्वती और केशवचंद्र सेन के कार्यों की प्रशंसा करते हुए जहां वे एक तरफ हिंदू समाज को कुरीतियों से मुक्त कराने की बात करते हैं, वहीं उनकी मुख्य चिंता इस बात की है कि लोग हिंदू धर्म छोड़कर मुसलमान और ईसाई बन रहे हैं। भारतेंदु के लेखन की यह सीमा है कि जहां वे कई बातों में पोंगापंथ और रूढ़िवाद का विरोध करते हैं, तो कई मामलों में वे पुनरुत्थानवादी और सांप्रदायिक नज़रिया अपना लेते हैं। यह सीमा उनके समकालीन कई अन्य लेखकों में भी दिखायी देती है।

ck/k i'u

1. एकलिंग का मंदिर कहां स्थित है?
   क) काशी
   ख) उदयपुर
   ग) प्रयाग
   घ) हरिद्वार ( )
2. स्वामी दयानंद सरस्वती ने किस संस्था की स्थापना की?
   क) ब्राह्म समाज
   ख) प्रार्थना समाज
   ग) आर्य समाज
   घ) सत्यशोधक समाज ( )
3. भारतेंदु हरिश्चंद्र के निबंध के आधार पर बताइए कि निम्नलिखित में से कौन कंसरवेटिव हैं और कौन लिबरल?
   क) कबीर ....
   ख) मंडनमिश्र ....
   ग) राजा राममोहन राय ....
   घ) याज्ञवल्क्य ....

34-6 ys[kdh; O;fDrRo dh vfHkO;fDr

भारतेन्दु एक जिंदादिल और जागरूक लेखक थे। उनके लेखन की मुख्य चिंता देशोन्नति थी। वे इसी भावना से लेखन करते थे। लेकिन देशोन्नति का अर्थ सिर्फ आर्थिक उन्नति नहीं था। भारतेंदु के समय देश पर अंग्रेजों का राज था और अभी कांग्रेस की स्थापना नहीं हुई थी। लेकिन भारतेंदु सहित बहुत से लेखकों में इस बात का एहसास था कि देश की उन्नति गुलामी में रहकर मुमकिन नहीं है। लेकिन इसके लिए यह जरूरी है कि इस बात को समझा जाए कि देश की गुलामी का कारण क्या है। भारतेंदु और उनके समकालीन लेखकों ने महसूस किया कि भारत की गुलामी का कारण धार्मिक और सामाजिक रूढ़िवादिता में निहित है। बहुत-सी ऐसी कुरीतियां हैं जिनसे मुक्त हुए बिना देश उन्नति नहीं कर सकता। दूसरी बात जो इन लेखकों ने महसूस की वह यह थी कि देश के लोगों के बीच एकता भी जरूरी है। देश विभिन्न जातियों और धर्मों में बंटा हुआ था। इन स्थितियों ने ही देश में ऐसे महापुरुष पैदा किये जिन्होंने सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों और अंधविश्वासों के विरुद्ध आवाज उठाई। इसका सबसे ज्यादा शिकार औरतों को होना पड़ता था। इसलिए उन्होंने औरतों को इन कुरीतियों से मुक्त कराने के लिए प्रयत्न किया। लेकिन इन महापुरुषों जिन्होंने कई संगठन भी बनाए, उनमें कई मामलों में मतभेद भी था। स्वयं भारतेंदु का दृष्टिकोण भी अपने समय के सभी महापुरुषों से मेल नहीं खाता था। यदि वे कुछ मामलों में ब्राह्म समाज के समर्थक थे, तो कुछ मामलों में आर्य समाज के। कुछ मामलों में वैष्णव थे, तो कुछ मामलों में सनातनी। इसलिए स्वाभाविक था कि उनके लेखन में तरह-तरह के अंतर्विरोध दिखायी देते हैं। इन अंतर्विरोधों को उनके इस निबंध में भी देखा जा सकता है। वैचारिक एकता के अभाव के बावजूद इन लेखकों में अपने विरोधियों की बात को भी सहज ढंग से लेने की क्षमता थी। इसके लिए वे व्यंग्य और परिहास का सहारा लेते थे।

व्यंग्य और परिहास भारतेंदु के लेखन के अनिवार्य गुण थे। यह विशेषता उनके नाटकों, कविताओं और निबंधों में भी दिखायी देती है। भारतेंदु को आधुनिक हिंदी साहित्य का जनक माना जाता है क्योंकि आधुनिक लेखन की शुरुआत उन्हीं के साथ होती है। उन्होंने 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन' और 'बालाबोधिनी' नामक पत्रिकाओं का प्रकाशन कर अपने समकालीन लेखकों को लेखन के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होंने स्वयं नाटक, कविताएं और निबंध लिखकर साहित्य के भंडार को समृद्ध करने का काम किया। भारतेंदु से पूर्व हिंदी साहित्य केवल पद्य में लिखा जाता था। छिटपुट अपवादों को छोड़कर हिंदी गद्य में लेखन की शुरुआत का श्रेय भारतेंदु और उनके समकालीन लेखकों को ही है। भारतेंदु के समय तक हिंदी में कविताएं ब्रजभाषा में लिखी जा रही थी, लेकिन गद्य की भाषा खड़ी बोली थी। खड़ी बोली हिंदी का कोई परिनिष्ठित रूप अभी नहीं बना था। जिस आधुनिक भावबोध और विचारबोध को इस भाषा में भारतेंदु युग के लेखक व्यक्त करना चाहते थे, उसे व्यक्त करने के लिए आवश्यक शब्दावली का निर्माण होना शेष था। यह जरूरी काम भारतेंदु और उनके समकालीन लेखकों ने किया था। इसलिए यह बहुत स्वाभाविक था कि भारतेंदु युग के लेखकों की भाषा में खड़ी बोली का वह परिनिष्ठित रूप नहीं दिखायी देता है जो बाद के लेखकों में हम पाते हैं। हिंदी का मानक व्याकरण अभी निर्मित होना था। इन मुश्किलों के बीच ही भारतेंदु युग के लेखकों ने हिंदी गद्य में अपनी बात प्रभावशाली ढंग से कहने की कोशिश की।

भारतेंदु के इस लेख का विषय ही व्यंग्य और परिहासपूर्ण है। स्वर्ग में पृथ्वी जैसी स्थितियों की कल्पना कर लिबरल और कंसरवेटिव लोगों के बीच टकराव को उन्होंने अपने इस लेख का विषय बनाया है। अगर इसे स्वर्ग की बजाए पृथ्वी पर टकराव के रूप में व्यक्त किया जाता तो वैसा व्यंग्य नहीं पैदा होता जैसा अभी दिखायी देता है। जैसे कंसरवेटिव लोगों का वर्णन करते हुए वे कहते हैं, *"जो पुराने जमाने के ऋषिमुनि यज्ञ करके या तपस्या करके अपने-अपने शरीर को सुखा-सुखा कर और पच-पच कर मरके स्वर्ग गए हैं उनके आत्मा का दल 'कंसरवेटिव' है"*। स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन की संकल्पना ने ही यह संभव किया कि हजारों सालों में फैले लोगों को एक साथ स्वर्ग में दिखाया जा सका। जो महापुरुष एक दूसरे के समकालीन नहीं थे और जिनके बीच सैकड़ों सालों का अंतराल था, स्वर्ग की कल्पना के कारण ही उन्हें एक साथ दिखाया जा सका। भारतेंदु इस बात की भी कल्पना करते हैं कि जो कुछ पृथ्वी पर संभव है वह स्वर्ग में भी संभव है। इसलिए वह जैसी व्यवस्था यहां है, वैसी ही व्यवस्था स्वर्ग में भी होगी, इसकी कल्पना करते हैं। कंसरवेटिव और लिबरल के अलग-अलग दल बनना, एक ही दल में अलग-अलग गुटों का होना और उनका आपस में झगड़ना,

मामले सुलझाने के लिए अपने से ऊपर के अधिकारी के पास जाना और उनसे फैसला करवाना। अधिकारी द्वारा कमिटी बनाना और उस कमिटी की रिपोर्ट तैयार करना और उस रिपोर्ट से सबका सहमत न होना। यह पूरी व्यवस्था अंग्रेजों के समय कायम व्यवस्था का ही प्रतिरूप है और भारतेंदु ने कल्पना की है कि जो यहां हो रहा है, वह वहां यानी स्वर्ग में भी हो रहा है। इस निबंध को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि भारतेंदु के समय तक अंग्रेजों ने अपनी शासन व्यवस्था अच्छी तरह से कायम कर ली थी और भारतवासी भी उसे पूरी तरह जान-समझ चुके थे। यह व्यवस्था सामंतकालीन व्यवस्था से बिल्कुल अलग तरह की थी। भारतेंदु ने इस व्यवस्था को भी अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है। लेकिन इस व्यंग्य को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतेंदु इस व्यवस्था की आलोचना पोंगापंथी दृष्टिकोण से नहीं करते। इस छोटे से निबंध को पढ़ने से यह भी ज्ञात होता है कि भारतेंदु अपने समय के प्रति जागरूक थे और देश-विदेश के बारे में भी उनकी जानकारी काफी थी। इस व्यापक जानकारी के कारण ही इस निबंध में वे कई ऐसे संदर्भ शामिल कर सके हैं जिससे व्यंग्य और परिहास का ठोस आधार निर्मित हो सका है।

Ckks/k iz'u

4. केशवचंद्र सेन और दयानंद सरस्वती में किस ओर भारतेंदु का झुकाव अधिक दिखायी देता है?
   क) केशवचंद्र सेन की ओर
   ख) दयानंद सरस्वती की ओर
   ग) दोनों की ओर
   घ) किसी की तरफ नहीं ( )
5. इस निबंध में स्वामी दयानंद सरस्वती की किन कमजोरियों का उल्लेख किया गया है? किसी एक का उल्लेख कीजिए।

   ....

   ....

   ....

34-7 lajpuk-f'kYi

जैसाकि इकाई के आरंभ में ही बताया जा चुका है, इस निबंध का प्रकाशन 1885 में हुआ था लेकिन इसकी रचना संभवतः 1884 में हो चुकी थी। 6 जनवरी 1885 को भारतेंदु का 35 वर्ष की अवस्था में देहांत हो गया था। खड़ी बोली में हिंदी गद्य लेखन की शुरुआत हुए अभी बहुत अधिक समय नहीं हुआ था। इसलिए हिंदी गद्य का परिनिष्ठित रूप अभी निर्मित होना शेष था। यही कारण है कि भारतेंदु के इस निबंध की भाषा में हमें अनगढ़पन दिखायी देता है। शब्दों का प्रयोग और वाक्य रचना का स्वरूप वह नहीं है जो आज हम इस्तेमाल करते हैं। बहुत से शब्द प्रयोग जो भारतेंदु के इस निबंध में मिलते हैं, अब प्रयुक्त नहीं होते। उदाहरण के लिए, निबंध की शुरुआती पंक्तियां देखें:

स्वामी दयानंद सरस्वती और बाबू केशवचंद्रसेन के स्वर्ग में जाने से वहाँ एक बेर बड़ा आंदोलन हो गया। स्वर्गवासी लोगों में बहुतेरे तो इनसे घृणा करके धिक्कार करने लगे और बहुतेरे इनको अच्छा कहने लगे।

भारतेंदु के लेख की ये आरंभिक पंक्तियां व्याकरण की दृष्टि से दोषपूर्ण नहीं है, लेकिन आज की वाक्य रचना से ये वाक्य काफी भिन्न हैं। आज का लेखक इसी बात को संभवतः इस तरह से लिखेगा :

स्वामी दयानंद सरस्वती और बाबू केशवचंद्र सेन के स्वर्ग में पहुँचने पर वहां बड़ा आंदोलन खड़ा हो गया। स्वर्गवासी लोगों में से बहुत से इनसे घृणा करने के कारण इन्हें धिक्कारने लगे और बहुत से इनको अच्छा कहने लगे।

बेर और बहुतेरे शब्द भी हिंदी के ही शब्द है जो भोजपुरी और ब्रजभाषा में प्रयुक्त होते रहे हैं, लेकिन अब इनका प्रयोग परिनिष्ठित हिंदी में कम हो गया है।

इस निबंध की भाषा तत्सम शब्दावली से युक्त है। लेकिन जरूरत के अनुसार इसमें दूसरी भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। मसलन, मुलाहिजा, अदालत, कचहरी, आमदनी, शहीद, कागज, जमींदार, खारिज, जबरदस्ती आदि उर्दू शब्दों का प्रयोग भी हुआ है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी के समर्थक और उर्दू के विरोधी थे। उन्होंने उर्दू का स्यापा नाम से रचना भी की थी। लेकिन यह भी सही है कि स्वयं भारतेंदु उर्दू में 'रसा' उपनाम से शायरी करते थे

और उन्हें उर्दू का अच्छा ज्ञान था। उन्होंने अंग्रेजी भी सीखी थी। यही कारण है कि विषय के अनुसार इस निबंध में हम देखते हैं कि उन्होंने अंग्रेजी और उर्दू में ज्यादा प्रचलित शब्दों का भी इस्तेमाल किया। अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग अंग्रेजी नौकरशाही और शासन व्यवस्था का असर पैदा करने के लिए किया। मसलन, 'कसंरवेटिव', 'लिबरल', 'रेडिकल्स', सेल्फ़गवर्नमेंट', 'मेमोरियल', 'डेप्यूटेशन', 'सिलेक्ट कमेटी', 'कारस्पेंडिंग आनरेरी मेंबर', 'रिपोर्ट', 'एक्स अफीशियो मेंबर', 'एडिटर' आदि शब्दों और पदों का प्रयोग उनके अंग्रेजी ज्ञान को दर्शाता है, तो साथ ही भारतीय शासन व्यवस्था में हो रहे बदलावों को भी दिखाता है। 'कसंरवेटिव', 'रेडिकल', 'लिबरल' आदि शब्दों का संबंध तत्कालीन राजनीति से है। यह राजनीति अभी भारत में नहीं उदित हुई थी वरन यूरोप में प्रचलित थी। विभिन्न राजनीतिक दलों को इनके आधार पर ही पहचाना जाता था।

भारतेंदु की भाषा का झुकाव संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली की तरफ ज्यादा था। उन्होंने यज्ञ, तपस्या, प्रभृति, प्रचलित, बहिर्मुख, अद्वैतवादी, भाष्यकार, प्रत्युत्तर, वैमनस्य, अव्यवस्थित, बहिर्मुख, अंततोगत्वा, दुष्कर्म, क्षेपक आदि तत्सम शब्द उनके इस निबंध में प्रयुक्त हुए हैं। लेकिन तद्भव शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम है। जैसे, आलसी, सगुन, निर्गुन कुछ शब्द इस निबंध में प्रयुक्त हुए हैं।

भारतेंदु की लेखन शैली प्रभावशाली है। व्यंग्य और परिहास को पैदा करने के लिए उन्होंने कथ्य के साथ-साथ भाषा में भी व्यंजना पैदा करने की कोशिश की है। निबंध की पूरी रचना व्यंग्य से प्रेरित है। निबंध का विषय जिसमें स्वर्ग में विचार सभा के अधिवेशन की कल्पना की गयी है, वह व्यंग्य के लिए आधार तैयार करता है। इसके बाद उन्होंने यह भी कल्पना की है कि स्वर्ग में भी वैसी ही व्यवस्था कायम है जैसी पृथ्वी पर है। इसलिए वहां लोग वैसा ही व्यवहार करेंगे जैसा व्यवहार पृथ्वी पर लोग करते हैं। लेकिन जो व्यवहार पृथ्वी पर सामान्य माना जाता, वही स्वर्ग में परिहास और व्यंग्य पैदा करता है। मसलन, स्वर्ग में ईश्वर द्वारा अपनी असमर्थता व्यक्त करना दरअसल ईश्वर को ईश्वर कम अधिकारी या मंत्री अधिक दिखाता है। इसी तरह देवताओं को जमींदारों की तरह बताया गया है और उनकी कमजोर होती स्थिति से व्यंग्य पैदा किया गया है। स्वर्ग में भी उस तरह की राजनीतिक गुटबंदियों की कल्पना की गयी है जो पृथ्वी पर दिखायी देती हैं। इसके बाद वे उसी राजनीतिक शब्दावली का प्रयोग करते हैं जो यहां प्रयुक्त होते हैं, लेकिन उसमें स्वर्ग-नरक, बैकुंठ आदि से जुड़ी धार्मिक शब्दावली का भी प्रयोग किया गया है। राजनीतिक व्यवस्था के चित्रण के लिए अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया गया है और धार्मिक शब्दावली के लिए संस्कृत शब्दों का। स्वर्ग की कल्पना करते हुए भारतेंदु ने धर्मों के आधार पर अलग-अलग स्वर्गों की कल्पना की है, मुसलमानी-स्वर्ग, जैन-स्वर्ग, क्रिस्तानी स्वर्ग आदि।

इस तरह यह निबधं कथ्य, भाषा और शैली तीनों स्तर पर व्यंग्य के माध्यम से अपनी बात कहने में सक्षम है। भारतेंदु का यह निबधं उनकी व्यंग्य शक्ति और भाषा और शैली की नवीनता का परिचायक है।

ck/k i z'u

6. इस निबंध को शैली की दृष्टि से किस वर्ग में रखा जा सकता है?
   क) ललित निबंध
   ख) विचार निबंध
   ग) भावात्मक निबंध
   घ) व्यंग्य निबंध ( )
7. इस निबंध में अंग्रेजी शब्दों का अत्यधिक प्रयोग क्यों किया गया है? दो कारण बताइए।
   ....
   ....
8. इस निबंध में भारतेंदु की भाषा का झुकाव किस तरफ दिखायी देता है?
   ....
   ....

34-8 i fr ik|

भारतेंदु हरिश्चंद्र का यह निबंध उनके दौर में चल रहे राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक संघर्ष को दर्शाता है। वह नवजागरण का दौर था जिसकी शुरुआत राजा राममोहन राय (1772-1833) से हुई थी। इनके अलावा केशवचंद्र सेन, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले, स्वामी दयानंद सरस्वती सर सैयद अहमद खां आदि ने भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक और

धार्मिक रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष चलाया और देश को पोंगापंथ और पिछड़ेपन से मुक्त कराने का प्रयास किया। जिस समय राजा राममोहन राय ने धार्मिक और सामाजिक सुधारों के लिए आवाज उठायी उस समय भारत में जातिवाद, अंधविश्वास, छुआछूत, सती प्रथा, बाल विवाह, अनमेल विवाह, पर्दा प्रथा, वैधव्य, अशिक्षा आदि कई कुरीतियां व्याप्त थीं। इन सामाजिक और धार्मिक बुराइयों से मुक्त हुए बिना देश न तो आधुनिक बन सकता था और न आजाद हो सकता था। समाज सुधार लाने के लिए इन महापुरुषों ने कई तरह के संगठन बनाये इनमें ब्रह्म समाज और आर्यसमाज का असर हिंदी क्षेत्र पर काफी था। भारतेंदु इसी नवजागरण के दौर की उपज थे और उन पर उस समय के सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों का गहरा असर था।

यह समझना भूल होगी कि उस दौर के सभी समाज सुधारक और महापुरुषों के बीच सभी बातों पर मतैक्य था। उनमें परस्पर बहुत सी बातों पर मतभेद था। मसलन, ब्रह्म समाज और आर्यसमाज का सोच एक सा नहीं था। आर्य समाज कई मामलों में पुनरुत्थानवादी था। उनका मानना था कि वेदों का समय ही स्वर्ण युग था यहां तक कि विमान, रेल आदि उस युग में भी थे। जबकि ब्रह्म समाज इस तरह की बातों में यकीन नहीं करता था।

उस समय देश अंग्रेजों के अधीन था और भारतीयों को अपनी सरकार चुनने का अधिकार नहीं था। भारतवासियों पर कई तरह के प्रतिबंध लगे हुए थे। लेकिन शिक्षित भारतीय ब्रिटेन और यूरोप में चल रही राजनीति से परिचित थे और उसका असर उन पर भी दिखायी देता था। इस निबंध में भारतेंदु ने एक ओर नवजागरण के दौर की स्थितियों और दूसरी ओर इंगलैंड की राजनीति का इस्तेमाल किया है। लिबरल और कंसरवेटिव की चर्चा दरअसल उस समय की ब्रिटिश राजनीति का असर है। लेकिन इसका प्रयोग सामाजिक और धार्मिक मामलों में भी किया जाता रहा है। कंसरवेटिव का अर्थ होता है रूढ़िवादी और लिबरल का अर्थ होता है उदारवादी। यानी कि जो धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक मामलों में केवल अपने मत को सही मानता हो और दूसरे के मतों के प्रति असहिष्णु हो उसे कंसरवेटिव कहा जाता था। आज भी यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होता हे। इसके विपरीत लिबरल अपने मत के प्रति दुराग्रही नहीं होता। वह दूसरे मतों को भी सम्मान देता है और सही प्रतीत होने पर उसे स्वीकार भी कर लेता है। इस तरह कंसरवेटिव रूढ़िवादी और पोंगापंथी होता है जबकि लिबरल आधुनिक और नवीन विचारों का समर्थक होता है। निबंध को पढ़ने से स्पष्ट है कि भारतेंदु का झुकाव लिबरल मत की तरफ ज्यादा है। लेकिन लिबरल मत में भी कई तरह की धाराएं हैं और इसे भारतेंदु अपने इस निबंध का विषय भी बनाते हैं। भारत के संदर्भ में वे ब्रह्म समाज और आर्य समाज दोनों को उदारवादी मानते हैं और सामाजिक बदलाव में उनके योगदान की प्रशंसा भी करते हैं। लेकिन आर्य समाज की तुलना में वे ब्राह्म समाज को ज्यादा उपयुक्त मानते हैं। आर्य समाज में पुनरुत्थान का जो प्रभाव है, उसे वह उचित नहीं मानते और उसकी आलोचना करते हैं। इसके बावजूद निबंध में धर्म के बारे में कई जगह जो टिप्पणियां की गयी हैं, वह स्वयं भारतेंदु के दृष्टिकोण में निहित अंतर्विरोधों को ही दर्शाता है।

बोध प्रश्न

9. इस निबंध का संबंध आधुनिक भारत के किस दौर से है?
   - क) भक्तिकाल से
   - ख) रीतिकाल से
   - ग) नवजागरण काल से
   - घ) किसी दौर से नहीं ( )
10. नवजागरण दौर में समाज सुधारकों ने निम्नलिखित में से किस प्रथा का समर्थन किया?
    - क) बाल विवाह
    - ख) अनमेल विवाह
    - ग) विधवा विवाह
    - घ) बहु विवाह ( )

अभ्यास

2. कंसरवेटिव और लिबरल को परिभाषित करते हुए बताइए कि भारतेंदु को पठित निबंध के आधार पर किस श्रेणी में रखेंगे और क्यों ?
3. रूढ़िवाद के समर्थकों ने केशवचंद्र सेन और दयानंद सरस्वती के स्वर्ग भेजे जाने का विरोध क्यों किया?
4. पठित निबंध में प्रयुक्त भाषा और शैली पर टिप्पणी लिखिए।

34-9 lkjka'k

हिंदी गद्य के इस पाठ्यक्रम का यह छठा खंड है। इस छठे खंड की दूसरी इकाई और पाठ्यक्रम की 34वीं इकाई में भारतेंदु हरिश्चंद्र के व्यंग्य निबंध 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन' का अध्ययन किया है। भारतेंदु के इस निबंध में स्वर्ग की कल्पना करते हुए कंसरवेटिव और लिबरल के बीच के मतभेदों और लिबरल के ही अलग-अलग गुटों के बीच के भेदों को रचना का विषय बनाया है। इस इकाई को पढ़ने से आप कंसरवेटिव और लिबरल यानी रूढ़िवादी और उदारवादी के अर्थ को भारतीय संदर्भ में समझ सकते हैं।

- भारतेंदु ने इस निबंध में अपने समय में हो रहे धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों का परिचय दिया है और साथ ही उनके आपसी अंतर्विरोधों का भी उल्लेख किया है। इससे आप तत्कालीन समाज की वास्तविक स्थिति का भी ज्ञान हासिल कर सकते हैं।
- भारतेंदु के समय खड़ी बोली गद्य अपनी आरंभिक अवस्था में था। उसका वह परिनिष्ठित रूप नहीं था जो द्विवेदी युग में निखर कर सामने आया। लेकिन भारतेंदु युग के लेखकों ने भी हिंदी को रचनात्मक और संप्रेषणीय बनाने का जो प्रयास किया, वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भारतेंदु का यह निबंध भी इस बात का प्रमाण है। आप निबंध की भाषा की विशेषताएँ बता सकते हैं।
- भारतेंदु ने निबंध के लिए व्यंग्य की जो शैली अपनायी है, उसने विषय को रोचक, प्रासंगिक और प्रभावशाली बनाने में अहम भूमिका निभायी है। अपनी बात कहने के लिए व्यंग्य का रचनात्मक इस्तेमाल भारतेंदु युग के लेखन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

इकाई पढ़कर आप भारतेंदु के गद्य साहित्य विशेष रूप से उक्त निबंध को समझने में आपको पर्याप्त सहायता मिलेगी।

34-10 'kCnkoyh

dalljofVo % अंग्रेजी शब्द। हिंदी में इसे रूढ़िवादी, परंपरावादी कहा जाता है। कंसरवेटिव ऐसे लोगों को कहा जाता है जो परिवर्तन और नवीनता के विरोधी होते हैं और परंपरागत मूल्यों में ही यकीन रखते हैं और अपने विचारों को लेकर असहिष्णु होते हैं।

fycjy % अंग्रेजी शब्द। हिंदी में उदारपंथी या उदारवादी कहा जाता है। उदारवाद पश्चिम की एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक विचारधारा है। उदारपंथी ऐसे लोगों को कहा जाता है जो बदलाव और नवीनता में यकीन रखते हैं और खुले विचारों के होते हैं। दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णु होते हैं।

o".ko % हिंदू धर्म में विष्णु को ईश्वर का सर्वोच्च रूप मानने वाले और उनकी भक्ति करने वाले वैष्णव माने जाते हैं। विष्णु के दसों अवतारों में भी इनका विश्वास होता है।

iHkfr % इत्यादि, वगैरह।

jfMdy % अंग्रेजी शब्द जिसका हिंदी में अर्थ है, मूलगामी। यानी ऐसा व्यक्ति जो किसी भी तरह की व्यवस्था को जड़ से बदलने का समर्थक होता है।

0;klno % हिंदू धर्म से जुड़ा एक प्रख्यात पौराणिक चरित्र जिन्हें व्यास और वेदव्यास के नाम से जाना जाता है। यह माना जाता है कि वेदव्यास ने ही महाभारत की रचना की। यह भी माना जाता है कि वेदव्यास ने ही पुराणों की भी रचना की है।

cfy % ईश्वर या देवताओं को चढ़ाया जाने वाला चढ़ावा।

eku % प्रतिष्ठा, सम्मान।

cdqB % मूल शब्द वैकुंठ जिसका अर्थ है विष्णुलोक या स्वर्ग। इस निबंध में स्वर्ग और वैकुंठ को अलग-अलग अर्थों में प्रयुक्त किया है। यहां वैकुंठ का अर्थ है, ईश्वर का निवास स्थान।

on % वेद का अर्थ ज्ञान भी होता है और हिंदू धर्म के सबसे प्राचीन धार्मिक ग्रंथ के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। वेद चार माने जाते हैं: ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इनमें ऋग्वेद सबसे प्राचीन है और अथर्ववेद सबसे नया है।

iqjk.k % पुराण का शाब्दिक अर्थ है, पुराना या प्राचीन। लेकिन हिंदू धर्म से संबंधित उन ग्रंथों को भी पुराण कहा जाता है जिनमें सृष्टि के आरंभ से लेकर अंत तक की कथा कही गयी हैं। इनमें वर्णित चरित्र मिथकीय हैं और उनकी कथाएं भी। आमतौर पर पुराणों की संख्या अठारह मानी जाती हैं।

,dfyax th % राजस्थान के उदयपुर जिले में स्थित एक मंदिर जो उदयपुर के राजपरिवार से संबंधित माना जाता है। एकलिंग जी शिव का ही एक रूप है और इस निबंध में उसी की ओर संकेत है।

vk;kZoÙkZ % संस्कृत ग्रंथों में प्रयुक्त उत्तर भारत का एक नाम।

;kKoYD; % एक वैदिक ऋषि जिनका उल्लेख बृहदारण्यक उपनिषद और शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। याज्ञवल्क्य की दो पत्नियां थीं, गार्गी और मैत्रेयी। याज्ञवल्क्य ने राजा जनक के दरबार में शास्त्रार्थ में भाग लिया था।

eMu feJ % आठवीं सदी के संस्कृत के विद्वान और आदि शंकराचार्य के समकालीन।

pSrU; % चैतन्य को चैतन्य महाप्रभु (1486-1534) के रूप में भी जाना जाता है। पूर्वी भारत में कृष्ण भक्ति का प्रचार किया।

v}Srokn % अद्वैतवाद भारतीय दर्शन की एक महत्त्वपूर्ण शाखा जिसके प्रणेता आदि शंकराचार्य थे। अद्वैतवाद के अनुसार केवल ब्रह्म (ईश्वर) ही सत्य है और संसार मिथ्या है। संसार की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है।

j?kqunu

HkV‌Vkpk;Z % पंद्रहवी-सोलहवीं सदी के संस्कृत के प्रख्यात विद्वान।

lsYQ xouZesaV % अंग्रेजी शब्द जिसका अर्थ है, स्व सरकार या स्वशासन। सेल्फ गवर्नमेंट ऐसी सरकार की संकल्पना है जहां किसी क्षेत्र विशेष के लोग (वह क्षेत्र पंचायत से लेकर राष्ट्र तक हो सकता है) स्वयं अपनी सरकार चुनते हैं और जनता के बनाये नियमों के अनुसार सरकार कार्य करती है।

ludkfn % हिंदू पुराणों के अनुसार चार बालक ऋषि (सनक, सनातन, सनादन और सनत कुमार) जिनका जन्म ब्रह्मा के मस्तिष्क से हुआ था। पुराणों के अनुसार चारों जीवन पर्यंत ब्राह्मचर्य का पालन करते रहे, वेदों का अध्ययन किया और उसकी शिक्षा का प्रचार किया।

t; fot; % दो हिंदू पौराणिक चरित्र जो विष्णु के निवास वैकुंठ के द्वारपाल थे। लेकिन जिन्हें सनकादि ऋषियों के श्राप के कारण तीन जन्मों तक विष्णु के शत्रु के रूप में जन्म लेना पड़ा।

}Sr % दो होने का भाव। अद्वैतवाद की तरह द्वैतवाद भी भारतीय दर्शन का एक सिद्धांत जिसके अनुसार ईश्वर और जगत या आत्मा और परमात्मा दोनों अलग-अलग की सत्ता और सत्य है।

ik'oZukFk % इन्हें पार्श्वनाथ भी कहा जाता है और जैन मत के अनुसार यह 23वें तीर्थंकर थे। महावीर स्वामी को 24वां और अंतिम तीर्थंकर माना जाता है। महावीर गौतम बुद्ध के लगभग समकालीन थे जबकि पार्श्वनाथ ईसा से आठवीं-नवीं शताब्दी पूर्व हुए थे।

ukxktZqu % ईसापूर्व दूसरी शताब्दी के महान बौद्ध दार्शनिक जिन्होंने महायान संप्रदाय की स्थापना की।

34-11 cks/k iz'uksa@vH;klksa ds mÙkj

Ckks/k iz'uksa ds mÙkj

1. (ख) 2 (ग)
3. (क) लिबरल (ख) कंसरवेटिव
   (ग) लिबरल (घ) कंसरवेटिव
4. (क)
5. स्वामी दयानंद सरस्वती ने वेदों में रेल, तार, कचहरी आदि खोज ली जो भारतेंदु के अनुसार गलत व्याख्या पर आधारित है।
6. (घ)
7. अंग्रेजों के शासन व्यवस्था की कल्पना वे बैंकुठ में भी करते हैं और उसे बताने के लिए भारतेंदु ने अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है।
   इस तरह वे अंग्रेजों के शासन को अपने व्यंग्य का निशाना भी बनाते हैं।
8. संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली की तरफ।
9. (ग) 10 (ग)

vH;klksa ds mÙkj

अभ्यासों का उत्तर इकाई को ध्यानपूर्वक पढ़कर स्वयं लिखिए।

bdkbZ 35 uk[kwu D;ksa c<+rs gSa\ ¼gtkjh izlkn f}osnh½ okpu

bdkbZ dh :ijs[kk

35.0 उद्देश्य
35.1 प्रस्तावना
35.2 निबंध का वाचन : नाखून क्यों बढ़ते हैं?
35.3 निबंध का सार
35.4 संदर्भ सहित व्याख्या
35.5 सारांश
35.6 शब्दावली
35.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

35-0 mís';

इस इकाई में आप आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' का अध्ययन करेंगे। आरंभ में आप निबंध का वाचन करेंगे और इसके बाद निबंध का सार और उसके महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या पढ़ेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- निबंध की विषयवस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- निबंध में आये कठिन शब्दों के अर्थ बता सकेंगे; और
- निबंध के महत्त्वपूर्ण अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या कर सकेंगे।

35-1 izLrkouk

अब तक आप इस खंड में दो इकाइयों का अध्ययन कर चुके हैं। इकाई 33 में आपने हिंदी की कथेतर गद्य विधाओं के बारे में अध्ययन किया था और इकाई 34 में आपने भारतेंदु हरिश्चंद्र के निबंध 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन' का अध्ययन किया था। हिंदी निबंध की परंपरा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेद्वी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। द्विवेदी जी ने हिंदी निबंध की परंपरा को समृद्ध ही नहीं किया अपितु उसे नयी दिशा भी दी है। उनके इसी महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए हमने हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' को दो-दो इकाइयों में विवेचित किया है। 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' का अध्ययन आप दो इकाइयों में करेंगे। इस इकाई में निबंध का वाचन और उसका सार तथा उसके महत्त्वपूर्ण अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या का अध्ययन करेंगे। इससे अगली इकाई में आप अंतर्वस्तु, लेखकीय व्यक्तित्व के प्रभाव, भाषा और शैली तथा प्रतिपाद्य आदि की दृष्टि से निबंध का विवेचनात्मक अध्ययन करेंगे।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का जन्म 1907 ई. में उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में हुआ था और उच्च शिक्षा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राप्त की। आपने शांति निकेतन में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सान्निध्य में हिंदी का अध्यापन कार्य किया था। बाद में आपने कुछ समय तक बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय और पंजाब विश्वविद्यालय में भी अध्यापन कार्य किया। आपने संस्कृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के साहित्य का गहन अध्ययन किया था और बंगला आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य से भी भली-भांति परिचित थे। आपकी दृष्टि आधुनिक थी इसलिए पांडित्य के साथ-साथ आधुनिक चिंतन दृष्टि आपके लेखन की खास विशेषता है। आपने अपना लेखन मुख्य रूप से साहित्य के इतिहास और आलोचना के क्षेत्र से आरंभ किया। विशेष रूप से प्राचीन और मध्ययुगीन हिंदी साहित्य का आपका अध्ययन अत्यंत गंभीर और मौलिक है। बाद में आप उपन्यास और निबंध लेखन की ओर भी प्रवृत्त हुए। आपके सभी उपन्यास ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखे गए हैं। आपकी रुचि अतीत के सांस्कृतिक चित्रण की ओर अधिक रही है। व्यापक ekuorkoknh n`f"V आपके लेखन में प्रतिबिंबित हुई है। आपने ललित निबंध नामक एक नई निबंध शैली का विकास किया जो आचार्य शुक्ल की शैली से अलग लेकिन उतनी ही महत्त्वपूर्ण कही जा सकती है। आपका निधन 1979 में हुआ।

द्विवेदीजी द्वारा रचित प्रमुख पुस्तकें हैं :

bfrgkl vkSj vkykspuk lEcf/kr % 'हिंदी साहित्य का आदिकाल', 'हिंदी साहित्य की भूमिका', 'हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास', 'कबीर', 'सूर साहित्य', 'नाथ साहित्य', 'मध्ययुगीन धर्म साधना', 'प्राचीन भारत में कलात्मक विनोद' तथा 'कालीदास की लालित्य योजना'।

miU;kl % 'बाण भट्ट की आत्मकथा', 'चारू चंद्रलेख', 'पुनर्नवा' और 'अनामदास का पोथा'।

fuca/k laxzg% 'अशोक के फूल', 'विचार और वितर्क', 'कल्पलता', 'कुटज', 'आलोक पर्व', आदि। ''नाखून क्यों बढ़ते हैं?'' निबंध 'कल्पलता' पुस्तक में संकलित हैं।

35-2 fuca/k dk okpu % uk[kwu D;ksa c<+rs gSa\

बच्चे कभी-कभी चक्कर में डाल देने वाले प्रश्न कर बैठते हैं। vYiK पिता बड़ा दयनीय जीव होता है। मेरी छोटी लड़की ने जब उस दिन पूछ दिया कि आदमी के नाखून क्यों बढ़ते हैं, तो मैं कुछ सोच ही नहीं सका। हर तीसरे दिन नाखून बढ़ जाते हैं, बच्चे कुछ दिन अगर उन्हें बढ़ने दें, तो मां-बाप अक्सर उन्हें डांटा करते हैं। पर कोई नहीं जानता कि ये अभागे नाखून क्यों इस प्रकार बढ़ा करते हैं। काट दीजिए, वे चुपचाप दंड स्वीकार कर लेंगे; पर निर्लज्ज अपराधी की भांति फिर छूटते ही lh/ks पर हाजिर। आखिर ये इतने बेहया क्यों हैं?

कुछ लाख ही वर्षों की बात है, जब मनुष्य जंगली था; cuekuq"k जैसा। उसे नाखून की जरूरत थी। उसकी जीवन-रक्षा के लिए नाखून बहुत जरूरी थे। असल में वही उसके अस्त्र थे। दांत भी थे, पर नाखून के बाद ही उनका स्थान था। उन दिनों उसे जूझना पड़ता था, प्रतिद्वंद्वियों को पछाड़ना पड़ता था, नाखून उसके लिए आवश्यक अंग था। फिर धीरे-धीरे वह अपने अंग से बाहर की वस्तुओं का सहारा लेने लगा। पत्थर के ढेले और पेड़ की डालें काम में लाने लगा (रामचंद्रजी की वानरी सेना के पास ऐसे ही अस्त्र थे)। उसने हड्डियों के भी हथियार बनाये। इन हड्डी के हथियारों में सबसे मजबूत और सबसे ऐतिहासिक था देवताओं के राजा का वज्र, जो n/khfp मुनि की हड्डियों से बना था। मनुष्य और आगे बढ़ा। उसने धातु के हथियार बनाये। जिनके पास लोहे के शस्त्र और अस्त्र थे, वे विजयी हुए। देवताओं के राजा तक को मनुष्यों के राजा से इसलिए सहायता लेनी पड़ती थी कि मनुष्यों के राजा के पास लोहे के अस्त्र थे। vlqjksa के पास अनेक विद्याएं थीं, पर लोहे के अस्त्र नहीं थे, शायद घोड़े भी नहीं थे। vk;ksZa के पास ये दोनों चीजें थीं। आर्य विजयी हुए। फिर इतिहास अपनी गति से बढ़ता गया। ukx हारे, lqo.kZ हारे, xa/koZ हारे, असुर हारे, राक्षस हारे। लोहे के अस्त्रों ने बाजी मार ली। इतिहास आगे बढ़ा। iyhrs okyh cUnwdksa ने, कारतूसों ने, तोपों ने, बमों ने, बमवर्षक वायुयानों ने इतिहास को जिस कीचड़ भरे घाट पर घसीटा है, यह सबको मालूम है। नख-धर मनुष्य अब एटम-बम पर भरोसा करके आगे की ओर चल पड़ा है। पर उसके नाखून अब भी बढ़ रहे हैं। अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतर वाले अस्त्र से वंचित नहीं कर रही हैं, अब भी वह याद दिला देती है कि तुम्हारे नाखून को भुलाया नहीं जा सकता। तुम वही लाख वर्ष पहले के u[k-nUrkoyEch जीव हो – पशु के साथ एक ही सतह पर विचरने वाले और चरने वाले।

rr% fdeA मैं हैरान होकर सोचता हूं कि मनुष्य आज अपने बच्चों को नाखून काटने के लिए डांटता है। किसी दिन- कुछ थोड़े लाख वर्ष पूर्व - वह अपने बच्चों को नाखून नष्ट करने पर डांटता रहा होगा। लेकिन प्रकृति है कि वह अब भी नाखून को ज़िलाये जा रही है और मनुष्य है कि वह अब भी उसे काटे जा रहा है। वे कंबख्त रोज बढ़ते हैं, क्योंकि वे अंधे हैं, नहीं जानते कि मनुष्य को इससे कोटि-कोटि गुना शक्तिशाली अस्त्र मिल चुका है। मुझे ऐसा लगता है कि मनुष्य अब नाखून को नहीं चाहता। उसके भीतर बर्बर-युग का कोई vo'ks"k रह जाय, यह उसे असह्य है। लेकिन यह भी कैसे कहूँ, नाखून काटने से क्या होता है? मनुष्य की cCkZjrk घटी कहां है, वह तो बढ़ती जा रही है। मनुष्य के इतिहास में fgjksf'kek का हत्याकांड बार-बार थोड़े ही हुआ है। यह तो उसका नवीनतम रूप है। मैं मनुष्य के नाखून की ओर देखता हूँ कि कभी-कभी निराश हो जाता हूँ। ये उसकी भयंकर ik'koh ofÙk के जीवंत प्रतीक हैं। मनुष्य की पशुता को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।

कुछ हजार साल पहले मनुष्य ने नाखून को सुकुमार विनोदों के लिए उपयोग में लाना शुरू किया। okRL;k;u ds dkelw= से पता चलता है कि आज से दो हजार वर्ष पहले का भारतवासी नाखूनों को जम के संवारता था। उनके काटने की कला काफी मनोरंजक बतायी गयी है। त्रिकोण, orqZykdkj] pUnzkdkj] nUrqy आदि विविध आकृतियों के नाखून उन दिनों

uk[kwu D;ksa c<+rs gSa\
¼gtkjh izlkn f}osnh½
okpu

विलासी नागरिकों के न जाने किस काम आया करते थे। उनको सिक्थक (मोम) और अलक्तक (आलता) से यत्नपूर्वक रगड़कर लाल और चिकना बनाया जाता था। xkSM+ ns'k के लोग उन दिनों बड़े-बड़े नखों को पसंद करते थे और nf{k.kkR; लोग छोटे नखों को। अपनी-अपनी रुचि है, देश की भी और काल की भी। लेकिन समस्त v/kksxkfeuh वृत्तियों को और नीचे खींचने वाली वस्तुओं को भारतवर्ष ने मनुष्योचित बनाया है, यह बात चाहूँ भी तो भूल नहीं सकता।

मानव-शरीर का अध्ययन करने वाले प्राणी विज्ञानियों का निश्चित मत है कि मानव-चित्त की भांति मानव-शरीर में भी बहुत-सी अभ्यास जन्य lgt o`fÙk;k रह गयी हैं। दीर्घकाल तक उनकी आवश्यकता रही है। अतएव शरीर ने अपने भीतर एक ऐसा गुण पैदा कर लिया है कि वे वृत्तियां अनायास ही, और शरीर के अनजान में भी, अपने आप काम करती हैं। नाखून का बढ़ना उसमें से एक है, केश का बढ़ना दूसरा है, दांत का दुबारा उठना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है। और असल में सहजात वृत्तियां अनजान की स्मृतियों को ही कहते हैं। हमारी भाषा में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। अगर आदमी अपने शरीर की, मन की ओर वाक् की अनायास घटने वाली वृत्तियों के विषय में विचार करे, तो उसे अपनी वास्तविक प्रवृत्ति पहचानने में बहुत सहायता मिले। पर कौन सोचता है? सोचना तो क्या उसे इतना भी पता नहीं चलता कि उसके भीतर नख बढ़ा लेने की जो सहजात वृत्ति है, वह उसके पशुत्व का प्रमाण है। उन्हें काटने की जो प्रवृत्ति है, वह उसकी मनुष्यता की निशानी है और यद्यपि पशुत्व के चिह्न उसके भीतर रह गये हैं, पर वह पशुत्व को छोड़ चुका है। पशु बनकर वह आगे नहीं बढ़ सकता। उसे कोई और रास्ता खोजना चाहिए। अस्त्र बढाने की प्रवृत्ति मनुष्यता की विरोधिनी है। मेरा मन पूछता है - किस ओर? मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर? अस्त्र बढ़ाने की ओर या अस्त्र काटने की ओर। मेरी fuckZ/k बालिका ने मानो मनुष्य-जाति से ही प्रश्न किया है - जानते हो, नाखून क्यों बढ़ते है? यह हमारी पशुता के अवशेष हैं। मैं भी पूछता हूँ - जानते हो, ये अस्त्र-शस्त्र क्यों बढ़ रहे हैं? — ये हमारी पशुता की निशानी है। भारतीय भाषाओं में प्रायः ही अंग्रेजी के ''इंडिपेंडेंस' शब्द का समानार्थक शब्द नहीं व्यवहृत होता। 15 अगस्त को जब अंगरेजी भाषा के पत्र 'इंडिपेंडेंस' की घोषणा कर रहे थे, देशी भाषा के पत्र 'स्वाधीनता दिवस' की चर्चा कर रहे थे। 'इंडिपेंडेंस' का अर्थ है, अनधीनता या किसी भी अधीनता का अभाव, पर 'स्वाधीनता' शब्द का अर्थ है, अपने ही अधीन रहना। अंग्रेजी में कहना हो, तो 'सेल्फडिपेंडेंस' कह सकते हैं। मैं कभी-कभी सोचता हूं कि इतने दिनों तक अंग्रेजी की vuqofrZrk करने के बाद भी भारतवर्ष 'इंडिपेंडेंस' को अनधीनता क्यों नहीं कह सका? उसने अपनी आजादी के जितने भी नामकरण किये — स्वतंत्रता, स्वराज, स्वाधीनता — उन सबमें 'स्व' का बंधन अवश्य रखा। यह क्या संयोग की बात है या हमारी समूची परंपरा ही अनजान में हमारी भाषा के द्वारा प्रकट होती रही है। मुझे प्राणि-विज्ञानी की बात फिर याद आती है-सहजात वृत्ति अनजानी स्मृतियों का ही नाम है। स्वराज होने के बाद स्वभावतः ही हमारे नेता और विचारशील नागरिक सोचने लगे हैं कि इस देश को सच्चे अर्थ में सुखी कैसे बनाया जाय। हमारे देश के लोग पहली बार यह सब सोचने लगे हों, ऐसी बात नहीं है। हमारा इतिहास बहुत पुराना है, हमारे शास्त्रों में इस समस्या को नाना भावों और नाना पहलुओं से विचारा गया है। हम कोई नौसिखुए नहीं हैं, जो रातों-रात अनजान जंगल में पहुंचकर आरक्षित छोड़ दिये हों। हमारी परंपरा महिमामयी, उत्तराधिकार foiqy और संस्कार उज्ज्वल हैं। हमारे अनजान में भी ये बातें हमें एक खास दिशा में सोचने की प्रेरणा देती हैं। यह जरूर है कि परिस्थितियां बदल गयी हैं। उपकरण नये हो गये हैं और उलझनों की मात्रा भी बहुत बढ़ गयी है, पर मूल समस्याएं बहुत अधिक नहीं बदली हैं। भारतीय चित्त जो आज भी 'अनधीनता' के रूप में न सोचकर 'स्वाधीनता' के रूप में सोचता है, वह हमारे दीर्घकालीन संस्कारों का फल है। वह 'स्व' के बंधन को आसानी से नहीं छोड़ सकता। अपने-आप पर अपने-आप के द्वारा लगाया हुआ बंधन हमारी संस्कृति की बड़ी भारी विशेषता है। मैं ऐसा तो नहीं मानता कि जो कुछ हमारा पुराना है, जो कुछ हमारा विशेष है, उससे हम चिपटे ही रहें। पुराने का 'मोह' सब समय वांछनीय ही नहीं होता। मरे बच्चे को गोद में दबाये रहने वाली 'बंदरिया' मनुष्य का आदर्श नहीं बन सकती। परंतु मैं ऐसा भी नहीं सोच सकता कि हम नयी vuqlaf/kRlk के नशे में चूर होकर अपना सरबस खो दें। dkfynkl ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नये खराब ही नहीं होते। भले लोग दोनों की जांच कर लेते हैं, जो हितकर होता है उसे ग्रहण करते हैं, और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते रहते हैं सो, हमें परीक्षा करके हितकर बात सोच लेनी होगी और अगर हमारे iwoZlafpr भंडार में वह हितकर वस्तु निकल आवे, तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है?

ck/k i'u

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक शब्द में दीजिए।
   - क) नाखून किस का प्रतीक है?

     ....

   - ख) नाखून से प्रतीकात्मक रूप में किसका विकास जुड़ा हुआ है?

     ....

   - ग) नाखून को संवारने का वर्णन किस भारतीय ग्रंथ में हुआ है?

     ....

   - घ) नाखून काटने की प्रवृत्ति किस का प्रतीक है?

     ....

2. *''सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नये खराब ही नहीं होते। भले लोग दोनों की जांच कर लेते हैं, जो हितकर होता है, उसे ग्रहण करते है, और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते हैं''* यह कथन किसका है?
   - क) हजारी प्रसाद द्विवेदी
   - ख) कालिदास
   - ग) वात्स्यायन
   - घ) दधीचि मुनि ( )

3. मानव शरीर की अभ्यासजन्य सहज वृत्तियों के ऐसे तीन उदाहरण दीजिए, जिनका उल्लेख निबंध में हुआ हो।
   1) ....
   2) ....
   3) ....

Tkfr;k इस देश में अनेक आयी हैं। लड़ती-झगड़ती भी रही है, फिर प्रेमपूर्वक बस भी गयी हैं। सभ्यता की ukuk सीढ़ियों पर खड़ी और नाना ओर मुख करके चलने वाली इन जातियों के लिए एक सामान्य धर्म खोज निकालना कोई सहज बात नहीं थी। भारतवर्ष के ऋषियों ने अनेक प्रकार से इस समस्या को सुलझाने की कोशिश की थी। पर एक बात उन्होंने लक्ष्य की थी। समस्त वर्णों और समस्त जातियों का एक सामान्य आदर्श भी है। वह है अपने ही बंधनों से अपने को बांधना। मनुष्य पशु से किस बात में भिन्न है। आहार-निद्रा आदि पशु-सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही हैं, जैसे अन्य प्राणियों के। लेकिन वह फिर भी पशु से भिन्न है। उसमें संयम है, दूसरे के सुख-दुःख के प्रति संवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है। यह मनुष्य के स्वयं के mnHkkfor बंधन हैं। इसीलिए मनुष्य झगड़े-टंटे को अपना आदर्श नहीं मानता, गुस्से में आकर चढ़-दौड़ने वाले अविवेकी को बुरा समझता है और वचन, मन और शरीर से किये गये vlR;kpj.k को गलत आचरण मानता है। यह किसी भी जाति या वर्ण या समुदाय का धर्म नहीं है। यह मनुष्यमात्र का धर्म है। egkHkkjr में इसलिए fuoSj Hkko] सत्य और अक्रोध को सब वर्णों का सामान्य धर्म कहा है :

> एतद्धि त्रितयं श्रेष्ठ सर्वभूतेषू भारत।
>
> निर्वैरता महाराज सत्यंक्रोध एव च।।

अन्यत्र इसमें निरंतर दानशीलता को भी गिनाया गया है (अनुशासन 120.10)। गौतम ने ठीक ही कहा था कि मनुष्य की मनुष्यता यही है कि वह सबके दुःख-सुख को सहानुभूति के साथ देखता है। यह आत्मनिर्मित बंधन ही मनुष्य को बनाता है। अहिंसा, सत्य और अक्रोधमूलक धर्म का मूल mRl यही है। मुझे आश्चर्य होता है कि अनजान में भी हमारी भाषा में यह भाव कैसे रह गया है। लेकिन मुझे नाखून के बढ़ने पर आश्चर्य हुआ था। अज्ञान सर्वज्ञ आदमी को पछाड़ता है और आदमी है कि सदा उससे ykgk yu dk dej dl gA

मनुष्य को सुख कैसे मिलेगा? बड़े-बड़े नेता कहते हैं, वस्तुओं की कमी है, और मशीन बैठाओ, और उत्पादन बढ़ाओ, और धन की वृद्धि करो और बाह्य उपकरणों की ताकत बढ़ाओ। ,d

c<k था। उसने कहा था – बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ। क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो; आत्म-तोषण की बात सोचो, काम करने की बात सोचो। उसने कहा – प्रेम ही बड़ी चीज़ है, क्योंकि वह हमारे भीतर है। उच्छश्रृंखलता पशु की प्रवृत्ति है, 'स्व' का बंधन मनुष्य का स्वभाव है। बूढ़े की बात अच्छी लगी या नहीं, पता नहीं। उसे गोली मार दी गई। आदमी के नाखून बढ़ने की प्रवृत्ति ही हावी हुई। मैं हैरान होकर सोचता हूँ - बूढ़े ने कितनी गहराई में पैठ कर मनुष्य की वास्तविक pfjrkFkZrk का पता लगाया था।

ऐसा कोई दिन आ सकता है, जबकि मनुष्य के नाखूनों को बढ़ना बंद हो जाएगा। प्राणिशास्त्रियों का ऐसा अनुमान है कि मनुष्य का अनावश्यक अंग उसी प्रकार झड़ जाएगा, जिस प्रकार उसकी पूंछ झड़ गयी है। उस दिन मनुष्य की पशुता भी लुप्त हो जायेगी। शायद उस दिन वह ekj.kkL=k का प्रयोग भी बंद कर देगा। तब तक इस बात से छोटे बच्चों को परिचित करा देना वांछनीय जान पड़ता है कि नाखून का बढ़ना मनुष्य के भीतर की पशुता की निशानी है और उसे नहीं बढ़ने देना मनुष्य की अपनी इच्छा है, अपना आदर्श है। बृहत्तर जीवन में अस्त्र-शस्त्रों का बढ़ने देना मनुष्य की पशुता की निशानी और उनकी बाढ़ को रोकना मनुष्यत्व का तकाजा है। मनुष्य में जो घृणा है, जो अनायास बिना सिखाये आ जाती है, वह पशुत्व का द्योतक है और अपने को संयत रखना, दूसरे के मनोभावों का आदर करना मनुष्य का स्वधर्म है। बच्चे यह जानें तो अच्छा हो कि अभ्यास और तप से प्राप्त वस्तुएं मनुष्य की महिमा को सूचित करती हैं।

सफलता और चरितार्थता में अंतर है। मनुष्य मारणास्त्रों के संचयन से, बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से उस वस्तु को पा भी सकता है, जिसे उसने बड़े आडंबर के साथ सफलता नाम दे रखा है। परंतु मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है, त्याग में है, अपने को सबके मंगल के लिए fu%'ks"k भाव से दे देने में है। नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अंध सहजात वृत्ति का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना उस 'स्व' निर्धारित आत्म-बंधन का फल है, जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाती है।

कम्बख्त नाखून बढ़ते हैं तो बढ़ें। मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा।

ck/k iz'u

4. नीचे वे विशेषताएं दी गयी हैं जो पशुओं में नहीं पाई जातीं। इनमें जो गलत हो उन पर (×) और जो सही हो उन पर (√) का निशान लगाइए।
   क) संयम ( ) घ) तप ( )
   ख) आहार ( ) ङ) निद्रा ( )
   ग) श्रद्धा ( )
5. *''बाहर नहीं भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ।''* यह बात किसने कही थी?
   क) गौतम ग) गांधीजी
   ख) वेद व्यास घ) नेहरूजी ( )
6. महाभारत में निम्नलिखित में से किसे मनुष्य का सामान्य धर्म कहा है?
   क) निर्वैर भाव ग) अक्रोध
   ख) सत्य घ) उपर्युक्त तीनों ( )
7. निम्नलिखित वाक्यों में उचित शब्दों द्वारा रिक्त स्थान भरिएः
   (संस्कृति, पशुता, पशु, मनुष्यता, मनुष्य)
   1) उच्छश्रृंखलता .... की प्रवृत्ति हैं, ''स्व'' का बंधन .... का स्वभाव है।
   2) वृहत्तर जीवन में अस्त्र-शस्त्रों को बढ़ने देना मनुष्य की .... की निशानी है और उनकी बाढ़ को रोकना .... का तकाज़ा है।
   3) अपने आप पर अपने आप के द्वारा लगाया हुआ बंधन हमारी .... की बड़ी भारी विशेषता है।
   4) मनुष्य की .... को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।

35-3 fucU/k dk lkj

इस निबंध की शुरुआत एक प्रश्न से होती है। लेखक की छोटी लड़की अपने पिता से पूछती है कि नाखून क्यों बढ़ते हैं? नाखून काटिए, तीन दिन बाद फिर बढ़ जाएंगे। अपनी बच्ची के इस मासूम से प्रश्न से लेखक एक जटिल सवाल में उलझ जाता है।

इस प्रश्न पर विचार करते हुए लेखक के सामने मानव सभ्यता के विकास की कहानी उजागर होने लगती है। कुछ लाख वर्ष पहले मनुष्य जंगली था। अपनी जीवन रक्षा के लिए वह दांतों और नाखूनों का उपयोग करता था। बाद में उसने अपनी रक्षा के लिए पत्थर, पेड़ की डाल और हड्डियों का भी उपयोग किया, उन्हें हथियार की तरह इस्तेमाल किया। मनुष्य लगातार उन्नति करता रहा। उसने लोहे के अस्त्र-शस्त्र बनाये। ऐसे ही हथियारों से आर्यों ने असुरों और दूसरी जातियों को पराजित किया। फिर बंदूक, तोप और बम बने। आज मनुष्य एटम बम तक पहुंच चुका है। उसे अब नाखून की जरूरत नहीं है। फिर भी, नाखून बढ़ते जा रहे हैं।

इस जटिल सवाल से लेखक लगातार जूझता है कि आखिर नाखून क्यों बढ़ते हैं? नाखून तो उस बर्बर युग की देन है जब वह नाखून का हथियार की तरह इस्तेमाल करता था। नाखून काटकर वह बर्बरता से छुटकारा पाना चाहता है। लेकिन क्या वास्तव में वह बर्बरता से छुटकारा पा सका है? हिरोशिमा का हत्याकांड तो इसी बर्बरता का प्रमाण है।

प्राचीन पुस्तकों में नाखूनों को सजाने और संवारने संबंधी उल्लेख मिलते हैं। वात्स्यायन के 'काम सूत्र' से मालूम पड़ता है कि आज से दो हजार वर्ष पहले मनुष्य अपने नाखूनों को तरह-तरह से सजाता-संवारता था। इन उल्लेखों से लेखक को भारतवर्ष की एक विशेषता का ज्ञान हुआ। यहां के लोगों द्वारा अपनी ऐसी प्रवृत्तियों को जिन्हें हम असत् कह सकते हैं, मानवीय रूप में ढालने की कोशिश का पता चलता है। इससे प्रतीत होता है कि भारतवासी शुरू से ही अपनी असत् प्रवृत्तियों से छुटकारा पाने का प्रयत्न करते रहे हैं।

इसके पश्चात द्विवेदीजी प्राणी विज्ञान को अपने चिंतन का आधार बनाते हैं। प्राणी विज्ञान से मालूम पड़ता है कि मनुष्य के मन की वृत्तियों की तरह ही मनुष्य के शरीर में अभ्यास से पैदा होने वाली बहुत-सी स्वाभाविक वृत्तियां अभी बाकी हैं। इसलिए शरीर ने अपने भीतर एक विशेषता पैदा कर ली है। बिना किसी प्रयत्न के वे वृत्तियां सक्रिय रहती हैं। नाखून बढ़ना, केशों का बढ़ना आदि ऐसी ही सहजता वृत्तियां हैं जिसके बारे में वह नहीं सोचता अगर वह सोचता तो उसे मालूम होता कि नाखून बढ़ा लेने की वृत्ति उसके अंदर के पशुत्व की निशानी है, उसे काटने की प्रवृत्ति मनुष्यता की। इसलिए पशुत्व के चिह्न भले ही उसमें रह गये हों, वह पशुता छोड़ चुका है। पशुता के सहारे वह आगे नहीं बढ़ सकता। उसे विकास के लिए नया रास्ता खोजना होगा। कारण, हथियार बनाने की प्रवृत्ति भी मनुष्यता की विरोधी है।

यहां लेखक एक और प्रश्न उठाता है कि मनुष्य की प्रगति की दिशा कौन-सी है? वह किस ओर बढ़ रहा है? हथियारों को बढ़ाने की ओर या उन्हें समाप्त करने की ओर। यह स्पष्ट है कि हमारे भीतर की बची पशुता के कारण ही नाखून बढ़ते हैं और इसी कारण हथियार भी। लेखक भारतीय संस्कृति के विशेष गुण आत्म नियंत्रण के बल पर सहजता पशुता पर विजय पाने की प्रेरणा देता है। अंग्रेजी शब्द ''इंडिपेंडेंस'' के भारतीय अर्थ ''स्वाधीनता'' का उदाहरण देते हुए द्विवेदीजी कहते हैं कि अपने ''स्व'' पर अपने आप के द्वारा लगाया हुआ बंधन भारतीय संस्कृति की खास विशेषता है। कालिदास का हवाला देते हुए लेखक यह स्पष्ट करता है कि भारतीय संस्कृति के इस गुण की चर्चा वह पुरातन के प्रति मोह के कारण नहीं कर रहा। हर पुरानी बात अच्छी नहीं होती और न ही हर नई बात खराब। आवश्यकता है विवेक से निर्णय लेने की। अगर हमें अपने सांस्कृतिक कोष से कोई कल्याणकारी वस्तु मिल जाए तो उसे अपना लेने से बेहतर क्या हो सकता है?

भारत में लंबे समय से अनेक जातियां आती रही हैं। उनमें संघर्ष भी हुआ है। उन सबके लिए ''एक सामान्य धर्म खोज निकालना'' आसान काम नहीं है। लेकिन ऐसा एक सामान्य आदर्श है और वह है अपने द्वारा बनाये गये बंधनों में स्वयं को बांधना। आहार, निद्रा, भय आदि स्वभाव मनुष्य और पशु में एक से है, लेकिन संयम, श्रद्धा, तपस्या, त्याग और दूसरों के प्रति संवेदना ही मनुष्यता की पहचान है। इसीलिए मनुष्य लड़ाई-झगड़े और बुरे आचरण को अच्छा नहीं समझता। सबके प्रति सहानुभूति का भाव, अहिंसा, सत्य और क्रोध से रहित धर्म का मूल आत्मनिर्मित बंधन में है। महाभारत में यही कहा गया है और यही उपदेश गांधी जी ने दिया था। गांधी जी ने कहा था कि केवल बाहरी उन्नति पर्याप्त नहीं है। मनुष्य के भीतर की पशुता को नष्ट करना होगा। क्रोध और हिंसा से दूर रहने और दूसरों के लिए कष्ट सहने का उपदेश भी गांधीजी ने दिया था। उच्छश्रृंखलता को वे पशु स्वभाव मानते थे और ''स्व'' के बंधन को मनुष्य का स्वभाव। किंतु उनको गोली मार दी गई। वह देखकर आश्चर्य होता है कि मनुष्य की वास्तविक सफलता के आधार को गांधीजी ने कितनी गहराई से खोज लिया था।

एक दिन ऐसा भी आ सकता है कि जब मनुष्य के नाखूनों का बढ़ना रुक जाएं। प्राणी विज्ञान के अनुसार अनावश्यक अंग समाप्त हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में शायद मनुष्य की पशुता भी समाप्त हो जाए और वह हिंसक हथियारों का प्रयोग बंद कर दे। किंतु जब तक ऐसा नहीं होता तब तक हमें बच्चों को यह शिक्षा देनी होगी कि नाखून का बढ़ना मनुष्य की पशुता की निशानी है, उसे न बढ़ने देना उसका आदर्श है। मानव जीवन में हथियारों का बढ़ाना पशुता है और उन्हें रोकना मानवता का सूचक। मानव स्वभाव में पुरातन काल से चली आ रही पशुता की वृत्तियां जैसे घृणा, ईर्ष्या आदि के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता, उसे सीखना नहीं होता। किंतु इन से मुक्ति पाने की तैयारी मनुष्य को करनी ही पड़ती है। इस स्थिति के कारण आत्मसंयम और दूसरों की भावनाओं का आदर करने का आदर्श, उसके निजी धर्म हैं और ये मनुष्य के गौरव के प्रतीक हैं। मनुष्य हिंसात्मक हथियारों को एकत्र करके, बाहरी साधनों की अधिकता से क्षणिक सफलता तो पा सकता है किंतु वास्तविक लक्ष्य तो उसे तभी प्राप्त होगा जब वह प्रेम, मैत्री, त्याग को अपनाये और अपने आपको पूरी तरह से सबके कल्याण के लिए समर्पित कर दे। नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस विवेकहीन प्राकृतिक वृत्ति का परिणाम है जो उसके जीवन में भौतिक सफलता तो लाती है, लेकिन जिनसे मनुष्य के मनुष्यत्व का विकास नहीं होता। आत्मनियंत्रण के द्वारा मनुष्य अपनी प्राकृतिक वृत्तियों को वश में करता है और मानवता के उज्ज्वल आदर्शों की ओर बढ़ता है। मनुष्य की यह विकास यात्रा ही वास्तविक यात्रा है और जीवन की सार्थकता भी इसी में है।

द्विवेदीजी का विश्वास है कि मनुष्य के नाखून भले ही बढ़ते रहें लेकिन वह अपनी पशु वृत्तियों को नहीं बढ़ने देगा।

35-4 lanHkZ lfgr O;k[;k

हमें उम्मीद है कि आपने निबंध को ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा। निबंध का सार पढ़ने के बाद आपको यह मालूम हो गया होगा कि इस निबंध में क्या कहा गया है। लेकिन हो सकता है आप निबंध का मंतव्य न समझ पाये हों अथवा निबंध के तत्त्वों की दृष्टि से इसकी विशेषताएं उजागर न हुई हों। इसलिए हम आपके सामने अगली इकाई में निबंध की अंतर्वस्तु और भाषा-शैली की विशेषताएं प्रस्तुत करेंगे। यहां हम आपके सामने कुछ महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या प्रस्तुत करेंगे जिससे कि आपके सामने निबंध का कथ्य पूरा खुल सके।

निबंध के किसी अंश की व्याख्या कैसे की जाती है इसके संबंध में आप इकाई 34 में पढ़ चुके हैं। हम यहां उसे दोहराएंगे नहीं। यहां हम निबंध का एक अंश लेते हैं और उसकी व्याख्या करते हैं :

x|ka'k % *मुझे ऐसा लगता है कि मनुष्य अब नाखून को नहीं चाहता। उसके भीतर बर्बर-युग का कोई अवशेष रह जाए, यह उसे असह्य है। लेकिन यह भी कैसे कहूँ, नाखून काटने से क्या होता है? मनुष्य की बर्बरता घटी कहाँ है, वह तो बढ़ती जा रही है। मनुष्य के इतिहास में हिरोशिमा का हत्याकांड बार-बार थोड़े ही हुआ है। यह तो उसका नवीनतम रूप है। मैं मनुष्य की ओर देखता हूँ तो कभी-कभी निराश हो जाता हूँ। ये उसकी भयंकर पाशवी वृत्ति के जीवंत प्रतीक हैं। मनुष्य की पशुता को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।*

हमने आपको पहले की इकाइयों में बताया था कि सबसे पहले संदर्भ लिखा जाता है। संदर्भ के अंतर्गत रचना का शीर्षक, रचनाकार का नाम तथा वह प्रसंग, जिसके संदर्भ में उक्त उद्धरण कहा गया है। इस दृष्टि से अगर विचार करें तो हमारे सामने स्पष्ट है कि यह उद्धरण किस रचना से लिया गया है तथा इसका लेखक कौन है। इसके बाद प्रसंग पर आते हैं। इस निबंध की शुरुआत इस प्रश्न से होती है कि नाखून क्यों बढ़ते है? इस प्रश्न पर विचार करते हुए लेखक के सामने मानव सभ्यता का अब तक का विकास उजागर हो जाता है और इस विकास के साथ वह यह भी देखता है कि मनुष्य ने हथियारों का भी लगातार विकास किया है। किसी समय वह अपनी जीवन रक्षा के लिए नाखून और दांतों का इस्तेमाल करता था और अब उसने एटम बम जैसे संहारक हथियार बना लिए हैं। तब प्रश्न उठता है कि मनुष्य सभ्य हुआ है या नहीं? पशुता तो अब भी बाकी है जो उसके अंदर उस समय से ही थी जब वह जंगल में रहता था।

अब आप स्वयं उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर संदर्भ लिख सकते हैं।

lanHkZ % प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते है?' से लिया गया है। द्विवेदीजी ने इस प्रश्न पर विचार किया है कि नाखून क्यों बढ़ते हैं। हथियारों के

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

विकास को देखकर उनको लगता है कि मनुष्य में अब भी वह पशुता बाकी है जो बर्बर युग की निशानी है।

आइए, अब हम उक्त अंश की व्याख्या पर विचार करें। सबसे पहले यह देखिए कि इस उद्धरण में मुख्य बातें क्या कही गयी हैं। लेखक ने सबसे पहले यह बात कही है कि नाखून को मनुष्य पसंद नहीं करता क्योंकि वह बर्बर युग का अवशेष है। इस बात का तात्पर्य यह है कि मनुष्य नाखून से छुटकारा पाकर बर्बरता से छुटकारा पाना चाहता है। इस विचार के भीतर से लेखक में दूसरा प्रश्न उभरता है कि यह भी कैसे कहा जाय कि मनुष्य बर्बरता से मुक्त होना चाहता है? अगर सचमुच ऐसा होता तो हिरोशिमा जैसे हत्याकांड क्यों होते? वस्तुतः यह एक अंतर्विरोध है। एक तरफ मनुष्य नाखून से मुक्ति चाहता है, दूसरी तरफ एटम बम जैसे हथियारों का निर्माण और इस्तेमाल करने में लगा है। यह इस बात का द्योतक है कि मनुष्य अभी भी अपने अंदर की पशुता से मुक्त नहीं हुआ है। नाखून का बढ़ना उसी पशुता का प्रतीक है जो अभी नष्ट नहीं हुई है। जिस प्रकार बार-बार काटने पर भी नाखून बढ़ जाते हैं, उसी तरह मनुष्य की पशुता भी बार-बार उभर आती है और हिरोशिमा जैसे कांड हो जाते हैं।

इस प्रकार अब आप स्वयं व्याख्या लिख सकते हैं :

O;k[;k लेखक का विचार है कि मनुष्य अब नाखून नहीं चाहता, क्योंकि नाखून उस युग की निशानी है जब वह जंगली अवस्था में रहता था। पर अब मनुष्य अपनी बर्बरता से मुक्त होना चाहता है। वह यह नहीं चाहता कि उसके अंदर जंगलीपन का कोई अवशेष रह जाय। वह पशुता से मुक्त होना चाहता है। लेकिन लेखक सोचता है कि यह बात भी पूरे विश्वास के साथ कैसे कही जा सकती है? केवल नाखून काटना ही तो पर्याप्त नहीं है? हिरोशिमा में अभी हाल में एटम बम का प्रयोग किया गया और हजारों-हजार आदमियों को मार डाला गया। यह एक हत्याकांड था। क्या यह मनुष्य की बर्बरता, उसके जंगलीपन की निशानी नहीं है? फिर कैसे कहा जा सकता है कि मनुष्य के अंदर की बर्बरता कम हुई है। लेखक अपनी निराशा व्यक्त करते हुए कहता है कि मैं जब नाखून की ओर देखता हूँ तो निराश हो जाता हूँ। ये मनुष्य के अंदर की पशुता के जीते-जागते प्रतीक हैं। जिस तरह नाखून काटे जाने के बावजूद बार-बार बढ़ जाते हैं, उसी तरह मनुष्य की पशुता भी बार.बार उभर आती है। नाखून की तरह पशुता भी नष्ट नहीं हो रही है। लेखक की चिंता और निराशा का कारण यही है।

इसके बाद आपको उपर्युक्त गद्यांश की भाषा-शैली के बारे में कुछ विशेष कहना चाहिए। जैसे आप यह कह सकते हैं कि इस उद्धरण में लेखक संहारक हथियारों से चिंतित हैं जो मनुष्य की पशुता के प्रतीक हैं। आप हिरोशिमा का संक्षिप्त विवरण दे सकते हैं। आप बता सकते हैं कि हिरोशिमा पर अमेरिका द्वारा परमाणु बम डाले जाने के तीन दिन बाद जापान के एक अन्य शहर नागासाकी पर भी परमाणु बम डाला गया था। आप उक्त उद्धरण की भाषा और शैली पर टिप्पणी कर सकते हैं और इसके लिए आपको अगली इकाई के 'संरचना शिल्प' भाग से मदद मिल सकती है।

fo'k"k %

1) इस उद्धरण में लेखक मनुष्य की पशुता पर चिंता व्यक्त कर रहा है जिसके कारण हिरोशिमा जैसे हत्याकांड होते हैं।
2) हिरोशिमा जापान का एक शहर था और अमेरिका ने 6 अगस्त, 1945 को एटम बम से इस शहर को नेस्तनाबूत कर दिया था।
3) अमेरिका ने 9 अगस्त, 1945 को नागासाकी पर भी एटम बम गिराया था।
4) उद्धरण की भाषा तत्सम प्रधान है। भाषा में खड़ी बोली का परिनिष्ठित रूप मिलता है तथा लेखक के विचार बहुत ही स्पष्ट रूप में व्यक्त हुए हैं।

उपर्युक्त गद्यांश के बाद आइए, निबंध के एक और अंश को लें।

बृहत्तर जीवन में अस्त्र-शस्त्रों को बढ़ने देना मनुष्य की पशुता की निशानी है और उनकी बाढ़ को रोकना मनुष्यत्व का तकाजा है।

lUnHkZ % (आप रचना और लेखक के नाम देने के बाद प्रसंग का उल्लेख कीजिए। लेखक ने यहां हथियारों की वृद्धि पर चिंता प्रकट की है और इसे मनुष्यता के विरुद्ध माना है।)

O;k[;k % (व्याख्या में आप मनुष्यता और पशुता का अंतर बताइए। यह भी बताइए कि द्विवेदी जी किन गुणों को मनुष्य की पहचान मानते हैं और हथियारों के निर्माण को क्यों मानव-विरोधी मानते हैं। इस बात को आप नाखून के बढ़ने और काटने से भी जोड़िए और मनुष्य की सहज

वृत्तियों और उसके स्वधर्म के बंधन से भी जोड़िए। अगर आप इन सभी बातों को सही ढंग से रख सकेंगे तो आप उक्त अंश की बेहतर व्याख्या कर सकेंगे।)

fo'ks"k% (इसके अंतर्गत आप विनाशकारी हथियारों के लगातार बढ़ते खतरे के प्रति लेखक की चिंता को रेखांकित कर सकते हैं। इस महत्त्वपूर्ण बात को कहने के लिए लेखक के ढंग पर भी टिप्पणी कर सकते हैं।)

अब आप स्वयं इस उद्धरण की संदर्भ सहित व्याख्या लिखिए।

vH;kl

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर रिक्त स्थान में लिखिए।

1) उपर्युक्त गद्यांश की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए।

lanHkZ % ....

....

O;k[;k % ....

....

....

fo'ks"k % ....

....

2) *कालिदास ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नये खराब ही नहीं होते। भले लोग दोनों की जांच कर लेते हैं, जो हितकर होता है, उसे ग्रहण करते हैं, और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते रहते हैं सो, हमें परीक्षा करके हितकर बात सोच लेनी होगी और अगर हमारे पूर्वसंचित भंडार में वह हितकर वस्तु निकल आवे, तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है।*

lanHkZ %

संकेतः लेखक का नाम

रचना का नाम

रचना में संदर्भ : नये और पुराने विचारों में मानने योग्य कौन और उसका आधार।

....

....

....

O;k[;k %

संकेत : कालिदास के कथन की व्याख्या : ग्रहणीय कौन?

नया या पुराना

नये या पुराने का अंतर

बुद्धिमान और मूर्ख का अंतर

पुराना भी स्वीकार्य : अगर वह हितकर हो

....

....

fo'ks"k %

संकेतः 1) कालिदासः 'मालविकाग्निमित्र' से उद्धरण

2) पुरातनपंथी दृष्टि से भिन्न

3) भाषा-शैली की विशेषता

....

....

....

35-5 lkjka'k

- इस इकाई में आपने आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' का वाचन किया है। इस निबंध में द्विवेदीजी ने नाखून के बहाने मनुष्य की हिंसक वृत्ति पर विचार किया है। उन्होंने गंभीरता से इस प्रश्न को उठाया है कि क्या कारण है कि इतनी भौतिक उन्नति के बावजूद मनुष्य अपनी बर्बर मनोवृत्तियों से मुक्त नहीं हो पाया है। इसका उत्तर देते हुए कहा है कि जब मनुष्य आत्म नियंत्रण वाले गुणों को भूलता है तभी

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

वह पशुता की ओर बढ़ता है। हथियारों का बढ़ता जख़ीरा इस बात का प्रमाण है। भारतीय संस्कृति की विशेषता है स्वाधीनता या स्व का बंधन। हमें इसे याद रखने की आवश्यकता है। निबंध में कही गयी इन बातों को आप अपने शब्दों में प्रस्तुत कर सकते हैं।

- 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' अत्यंत महत्त्वपूर्ण निबंध है। इस निबंध में लेखक ने कई महत्त्वपूर्ण सवालों को उठाया है। आपने इस निबंध के कुछ अंशों की व्याख्या द्वारा इसमें कही गयी बातों को समझने का प्रयास किया है। अब आप स्वयं निबंध के ऐसे ही महत्त्वपूर्ण अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या कर सकते हैं।

35-6 'kCnkoyh

Ekkuorkoknh nf"V % वे गुण जिनसे मनुष्य के मनुष्यता की पहचान होती है जैसे सत्य, अहिंसा, प्रेम, सहानुभूमि, निर्वैर आदि। उन्हें मानवता या मनुष्यता कहते हैं। मनुष्य के सकारात्मक गुणों को अपनी दृष्टि का आधार बनाना मानवतावाद है।

vYiK % कम जानने वाला।

l/k % वह छेद जो चोर दीवार तोड़कर बनाते हैं।

cuekul"k % बिना पुंछ का बंदर जिसकी शक्ल आदमी से कुछ अधिक मिलती है।

n/khfp % एक पौराणिक चरित्र, महर्षि शुक्राचार्य के पुत्र, वृत्रासुर के अत्याचार से जब देवता पीड़ित थे तो इंद्र ने दधीचि की हड्डियों से वज्र बनाया और उससे वृत्रासुर का वध किया।

vlj % राक्षस, एक पौराणिक जाति जिसकी वास्तविकता के बारे में कुछ कहना असंभव है। हो सकता है आर्यों का जिनसे संघर्ष हुआ हो, उन्हें असुर पुकारते हों।

vk;l % श्रेष्ठ, यहां एक जाति से तात्पर्य है जिसके बारे में इतिहासकारों का विचार है कि ईसा से लगभग दो हजार वर्ष पहले वे भारत आये थे और उन्होंने अपनी सभ्यता यहाँ स्थापित की।

ukx] lqo.k] ;{k] x/ko % प्राचीन भारतीय जातियाँ जिनका उल्लेख हिंदू पुराणों में मिलता है।

iyhrs okyh cnd : बंदूक का आरंभिक रूप, जब बंदूक में बारुद भरकर उसमें आग लगाई जाती थी और फिर छोड़ा जाता था।

u[k-nrkoych : नाखून और दांतों पर निर्भर।

rr% fde % तो इससे क्या?

vo'k"k % शेष, बाकी।

ccjrk % असभ्यता या जंगलीपन।

fgjksf'kek % जापान का एक शहर जिस पर अमेरिका ने दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान 6 अगस्त 1945 को एटम बम गिराया था और जिससे हजारों-हजार लोग मारे गये थे।

ik'koh ofÙk : पशुओं जैसा स्वभाव।

okRL;k;u % कामसूत्र पुस्तक के लेखक, वास्तविक नाम मल्ल नाग, इस पुस्तक में मनुष्य की काम वृत्तियों और उससे जुड़ी बातों का वर्णन है।

orqykdkj % गोल आकार का।

pnzkdkj % चंद्रमा जैसा आकार।

nrqy % बड़े दांत जैसा।

xkM ns'k % बंगाल का पुराना नाम।

nkf{k.kkR; % दक्षिण देश का निवासी।

v/kkxkfeuh % अवनति, हीनता या बुराई।

lgt ofÙk;k % मनोविज्ञान से संबंधित शब्द जिसका अर्थ है, स्वाभाविक क्रियाएं या स्वभाव।

fuck/k % भोली-भाली।

vuqofrrk % अनुकरण।

foiqy % विस्तृत या अधिक।

vu|lf/kRlk % अनुसंधान या खोज।
dkfynkl % संस्कृत के महान रचनाकार जिन्होंने नाटक और काव्य ग्रंथों की रचना की।
iolfpr % पहले से इकट्ठा किया हुआ।
tkfr;k % यहां जातियां शब्द भारत के बाहर से आने वाले विभिन्न समुदायों के लिए इस्तेमाल किया गया है जो अलग-अलग क्षेत्रों और संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करते थे। जैसे, आर्य, शक, हुण, यवन, तुर्क, मंगोल आदि।
ukuk % अनेक प्रकार के।
mnHkkfor % उत्पन्न या कल्पित।
vlR;kpj.k % सत्य के विपरीत आचरण या झूठा व्यवहार।
egkHkkjr % वेदव्यास द्वारा रचित संस्कृत का प्राचीन महाकाव्य।
fuoj Hkko % वैर से रहित भाव।
mRl % स्रोत।
ykgk yuk (मु.) : मुकाबला करना।
,d c<k : यहां बूढे से तात्पर्य गांधी जी से है।
pfjrkFkrk % जिसका प्रयोजन सिद्ध हो गया हो।
dej dluk (मु.) : तैयार रहना।
ekj.kkL= % ऐसे हथियार जिससे दूसरे की जान जाती हो।
fu%'k"k % जिसमें कुछ बच न जाए, समूचा।

35-7 cks/k i'uk@vH;klk d mÙkj

cks/k i'u

1. क) पशुता ख) अस्त्र-शस्त्र ग) कामसूत्र घ) मनुष्यता
2. (ख)
3. 1) केश बढ़ना 2) नाखून बढ़ना 3) पलकों का उठना-गिरना
4. क) √ ख) × ग) √ घ) √ ङ) ×
5. (ग)
6. (घ)
7. 1) पशु, मनुष्य 2) पशुता, मनुष्यत्व 3) संस्कृति 4) पशुता

vH;kl

1. भाग 35.4 में इस अंश की व्याख्या पर विचार किया गया है और उसके आधार पर अपना उत्तर लिखिए।
2. lnHk % प्रस्तुत पंक्तियां आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' में से ली गयी हैं। इनमें लेखक ने संस्कृत के महाकवि कालिदास के एक श्लोक का भावार्थ देते हुए नये और पुराने के संबंधों पर विचार किया है। उन्होंने कहा है कि मृत अतीत से चिपके रहना बंदरिया का आदर्श हो सकता है, मनुष्य का नहीं।

O;k[;k % कालिदास का विचार था कि कोई चीज पुरानी हो जाने से ही अच्छी नहीं हो जाती और न ही कोई चीज नयी हो जाने के कारण खराब हो जाती है। नया भी अच्छा हो सकता है और पुराना भी। समझदार लोग इसके बारे में निर्णय उसके नये या पुराने से नहीं करते बल्कि वे वह जाँच करते हैं कि वह ग्रहण करने योग्य है या नहीं। उसको ग्रहण करना हितकार होगा या नहीं। मूर्ख वे ही लोग कहलाते है जो अपने विवेक का इस्तेमाल नहीं करते और दूसरों के कहे का अंधानुकरण करते हैं और बाद में पछताते हैं। द्विवेदीजी कालिदास के मत से सहमति प्रकट करते हुए यह और जोड़ते हैं कि अगर हमें अतीत के संचित कोष से कोई हितकारी वस्तु मिलती है तो निस्संकोच उसे अपना लेना चाहिए।

fo'k"k% 1) कालिदास का यह मत उनके ग्रंथ 'मालविकाग्निमित्रम्' से लिया गया है।
2) इन पंक्तियों में द्विवेदीजी ने नये और पुराने के संबंध में एक विवेकसम्मत दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।
3) उक्त गद्यांश की भाषा सरल और तत्सम हिंदी में है।

bdkbl 36 Ukk[ku D;k c<rs g\ % fo'y'k.k vkj eY;kdu

bdkbl dh :ijs[kk

36.0 उद्देश्य

36.1 प्रस्तावना

36.2 अंतर्वस्तु

36.2.1 विचार पक्ष

36.2.2 भाव पक्ष

36.3 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

36.4 संरचना-शिल्प

36.4.1 भाषा

36.4.2 शैली

36.5 प्रतिपाद्य

36.6 सारांश

36.7 शब्दावली

36.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

36-0 mÌs';

आप इस इकाई में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' की रचनागत विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- निबंध की विषयवस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे। उक्त विश्लेषण के आधार पर इस निबंध के भाव पक्ष और विचार पक्ष की विशेषताएं बता सकेंगे;
- निबंध पर लेखकीय व्यक्तित्व के प्रभाव का विवेचन कर सकेंगे;
- निबंध की भाषागत और शैलीगत विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे; और
- निबंध के प्रतिपाद्य का विश्लेषण कर सकेंगे।

36-1 iLrkouk

आपने इकाई 35 में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' का वाचन किया था। निबंध के साथ उसके कुछ महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या का भी आपने अध्ययन किया था। अब आप इस निबंध के रचनागत वैशिष्ट्य का अध्ययन करेंगे। इसके लिए हम निबंध का विश्लेषण करेंगे। निबंध के विश्लेषण का हमारा आधार वही होगा, जो 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन' निबंध में रहा है। इस इकाई में हमारी कोशिश होगी कि निबंध की विशेषताओं को पहचानने के लिए विश्लेषण में आपका सक्रिय योगदान हो। इसलिए हम अपनी ओर से पूरा विश्लेषण करने की बजाय उसके लिए आवश्यक संकेत सूत्र देंगे तथा उस विधि का परिचय देंगे जिसकी मदद लेकर आप स्वयं विश्लेषण कर सकें और सही निष्कर्ष निकाल सकें। विश्लेषण की आपकी क्षमता को और बढ़ाने के लिए हम बोध प्रश्न और अभ्यास भी देंगे।

36-2 vrolr

हम आपको पहले बता चुके हैं कि निबंध में अंतर्वस्तु के दो पक्ष होते हैंः भाव पक्ष और विचार पक्ष। किसी निबंध में विचारों की प्रधानता होती है, किसी में भावों की। ऐसे भी निबंध हो सकते हैं जिनमें विचार और भाव एक-दूसरे से गुंथे हुए हों और निबंध हमारी भावनाओं और विचारों दोनों को उत्तेजित करे। अगर हम इस निबंध की अंतर्वस्तु पर विचार करें, तो हमें यह समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी कि यह निबंध 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन' से भिन्न प्रकार का है। लेकिन यह भिन्नता किस दृष्टि से है? अंतर्वस्तु पर विचार करते हुए हम इस भिन्नता को जानने और समझने का प्रयास करेंगे।

सबसे पहले आप इस बात पर विचार करें कि इस निबंध का विषय क्या है? निबंध को पढ़ने से हमें यह समझने में कोई परेशानी नहीं होती कि निबंध का विषय नाखून क्यों बढ़ते हैं पर विचार करना नहीं है बल्कि नाखून के बढ़ने की प्रवृत्ति के माध्यम से कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण

सवालों पर विचार करना है। ये महत्त्वपूर्ण सवाल कौन-से हैं और उन पर लेखक ने एक भाववादी की तरह विचार किया है या एक बुद्धिवादी की तरह यह जानना भी है। दूसरे, यह निबंध हमें सोचने के लिए प्रेरित करता है या मात्र हमारे भावों को ही उद्वेलित करता है? इन सभी पक्षों का विवेचन करने के लिए आइए, पहले निबंध के विचार पक्ष को समझने का प्रयास करें।

36-2-1 fopkj i{k

द्विवेदीजी के इस निबंध की शुरुआत बच्चे की जिज्ञासा या एक प्रश्न से होती है। ''नाखून क्यों बढ़ते हैं?'' यह प्रश्न बच्चे द्वारा पूछा गया सामान्य सा प्रश्न नहीं रहता, जब लेखक इस प्रश्न में अंतर्निहित उसके व्यापक अर्थ को खोलता है। हम सभी जानते हैं कि नाखूनों का आज ऐसा कोई उपयोग नहीं है जो उसके होने की अपरिहार्यता को सिद्ध करे। लेकिन मानव इतिहास में एक समय ऐसा भी रहा होगा जब मनुष्यों को इन नाखूनों की जरूरत थी। हम जानते हैं कि कई जंगली जानवर शिकार के लिए नाखूनों और दांतों का इस्तेमाल करते हैं। अपनी बर्बर अवस्था में जब मनुष्य बनमानुस की तरह रहा होगा, तब अपनी रक्षा और शिकार के लिए दांतों और नाखूनों का इस्तेमाल भी करता होगा। लेकिन आज नाखूनों का ऐसा कोई उपयोग बाकी नहीं रहा है। फिर भी, नाखून बढ़ते जाते हैं। आज नाखून को बढ़ाना अच्छा नहीं माना जाता, इसलिए मनुष्य बढ़े हुए नाखूनों को काटता है। शायद इसलिए कि बढ़े हुए नाखून असभ्यता और जंगलीपन की निशानी है।

ekuo izxfr vkSj gfFk;kjksa dk fodkl % इस बिंदु पर आकर द्विवेदीजी एक नया प्रश्न उठाते हैं। अगर मनुष्य सचमुच बर्बरता के चिह्नों से छुटकारा पाना चाहता है तो फिर वह हथियारों का निर्माण क्यों कर रहा है? किसी जमाने में मनुष्य अपनी रक्षा के लिए नख और दांत का प्रयोग करता था। फिर, पत्थर, लकड़ी और हड्डियों का इस्तेमाल करने लगा। लोहे के हथियार बने, बारूद का आविष्कार हुआ और अब एटम बम का युग है। हथियारों के इस विकास को देखें तो हम समझ सकते हैं कि मनुष्य अधिक से अधिक विध्वंसक हथियार बनाने की ओर बढ़ रहा है। हिरोशिमा और नागासाकी का उदाहरण हमारे सामने हैं जहां एटम बमों ने लगभग दो लाख लोगों को कुछ ही मिनटों में लाश में बदल दिया था। तब कैसे कह सकते हैं कि मनुष्य सचमुच बर्बरता से मुक्त होना चाहता है?

द्विवेदीजी अपने निबंध की शुरुआत में ही एक सामान्य बाल जिज्ञासा को संपूर्ण मानवजाति से जुड़े प्रश्न से जोड़ देते हैं। आप देखेंगे कि यह तरीका शुक्लजी से अलग है। शुक्लजी जिस समस्या पर अपना निबंध लिखते हैं उसको शुरू में ही स्पष्ट रूप से रख देते हैं और फिर उसके एक-एक पक्ष का विवेचन करते जाते हैं और तब निष्कर्ष तक पहुंचते हैं। लेकिन द्विवेदीजी अपने विषय को एक साथ नहीं खोलते, उसे धीरे-धीरे खोलते हैं। ऊपर, जिस विचार बिंदु तक हम पहुंचे हैं, वहां यह नहीं जान सकते कि निबंध की अंतर्वस्तु आगे किस दिशा की ओर मुड़ेगी। इस दृष्टि से द्विवेदीजी की पद्धति काफी स्वतंत्र है। वे अपने निबंध में विचारों को कोई तार्किक क्रम देने या ऊपरी तौर पर उनमें एकता और संगति लाने का प्रयास नहीं करते; यद्यपि उसमें विचारों की आंतरिक एकता और तार्किक संगति हमेशा बनी रहती है। द्विवेदीजी के निबंधों में विचारों को उत्तेजित करने के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध रहती है। इस दृष्टि से देखें तो इस निबंध में निम्नलिखित बिंदुओं पर गंभीरता से विचार किया गया है :

- मानव प्रगति और हथियारों का विकास
- विलास वृत्ति का उदात्तीकरण
- मनुष्य की अभ्यास-जन्य सहज वृत्तियां
- स्व का बंधन : भारतीय संस्कृति की विशेषता
- नये और पुराने का प्रश्न
- मनुष्य और पशु में अंतर : सामान्य धर्म की खोज
- भौतिक उन्नति और मनुष्यता का मार्ग

ये सभी विचार बिंदु जिस एक लक्ष्य से प्रेरित है, वह है विश्व शांति का प्रश्न। लेकिन अपने आप में भी ऊपर के सभी प्रश्न अत्यंत गंभीर विवेचन की मांग करते हैं जो एक छोटे से निबंध में संभव नहीं है इसलिए द्विवेदीजी एक अन्य मार्ग अपनाते हैं। वे प्रत्येक प्रश्न का गंभीर विवेचन करने की बजाय उसके मूल मंतव्य को पकड़ते हैं और उसे अत्यंत प्रभावशाली रूप में रख देते हैं। उदाहरण के लिए, नाखूनों को सजाने संवारने के पक्ष को लें। इसका, निबंध के मूल मंतव्य

से सीधा संबंध नहीं है। मूल मंतव्य मनुष्य की पाशविक वृत्ति को उजागर करना और उसके वास्तविक धर्म की पहचान कराना है।

foykl ofÙk dk mnkÙkhdj.k % द्विवेदीजी निबंध में हमें यह जानकारी देते हैं कि आज से दो हजार साल पहले भारत में नाखूनों को सजाने संवारने की कला का विकास भी हुआ था। स्पष्ट है कि नाखूनों के जिस उपयोग का यहां संकेत दिया गया है उसका संबंध मनुष्य की विलास वृत्ति से रहा है। लेकिन द्विवेदीजी इस तरह की प्रवृत्ति के सकारात्मक पक्ष को भी हमारे सामने रखते हैं, जब वे कहते हैं कि 'समस्त अधोगामिनी वृत्तियों को और नीचे खींचने वाली वस्तुओं को भारतवर्ष ने मनुष्योचित बनाया है।' द्विवेदीजी के कहने का तात्पर्य यह है कि वे वस्तुएं जो मनुष्य को पतन की ओर ढकेलती हैं उनको भी भारतीय परंपरा ने कला का रूप देकर मनुष्यत्व के अनुकूल बनाने का प्रयास किया है। नाखूनों का यह संदर्भ इस निबंध के मूल कथ्य से सीधा जुड़ा नहीं है किंतु द्विवेदीजी की यह विशेषता है कि वे असंबद्ध बातों में भी एक तार्किक संगति उत्पन्न कर देते हैं।

eu"; dh vH;kltU; lgt ofÙk;k¡ % द्विवेदीजी ने इस निबंध में मुख्य प्रश्न यह उठाया है कि मनुष्य पशुता से मुक्त क्यों नहीं हो पा रहा है? नाखून के बढ़ने को वे पशुता मानते हैं और हथियारों के निर्माण को भी। इस प्रश्न पर अपने चिंतन को आगे बढ़ाते हुए वे प्राणी विज्ञान के एक सिद्धांत का सहारा लेते हैं। प्राणी विज्ञान के अनुसार मनुष्य के शरीर में कुछ ऐसी अभ्यासजन्य वृत्तियां हैं जिन्हें उसे न सीखना होता है और न जिनके लिए उसे अलग से कोई प्रयास करना पड़ता है। जैसे केशों का बढ़ना, नाखूनों का बढ़ना, पलकों का उठना-गिरना आदि। इनमें से कुछ ऐसी वृत्तियां भी है जिनकी अब सभ्यता के विकास के साथ आवश्यकता नहीं है लेकिन लाखों वर्षों के अभ्यास के कारण वे वृत्तियां अब भी सक्रिय हैं। किसी समय शारीरिक और रक्षात्मक आवश्यकता ने उन वृत्तियों को उत्पन्न किया होगा। इन्हें ही द्विवेदीजी ने अनजान की स्मृतियाँ कहा है। नाखून का बढ़ना ऐसी ही सहजात वृत्ति है जो उस अवस्था की द्योतक है जब मनुष्य बर्बर अवस्था में रहता था। मनुष्य इस बात को आज भूल गया है कि नाखूनों का बढ़ना उसी पशुत्व का प्रमाण है। बाहरी तौर पर वह पशुत्व को छोड़ चुका है लेकिन पशुत्व का चिह्न अब भी विद्यमान है जिसे वह बढ़ने पर काट देता है।

लेकिन क्या मनुष्य ने सचमुच मनुष्यता को अपना लिया है? इस प्रश्न का उत्तर है ''नहीं''। क्योंकि मनुष्य नाखून भले ही काट रहा हो लेकिन हथियारों को तो लगातार बढ़ा ही रहा है। तब मार्ग कौन-सा है?

अब तक द्विवेदीजी ने अपने निबंध के विषय की समस्या प्रस्तुत की थी, देखना यह है कि वे उसका क्या समाधान हमारे सामने रखते हैं?

Lo dk c/ku % Hkkjrh; lLÑfr dh fo'k"krk % समस्या की ही तरह वे समाधान के प्रश्न को भी सीधे रूप में नहीं रखते। वे अपनी चर्चा की शुरुआत अंग्रेजी के एक शब्द ''इंडिपेंडेंस'' के भारतीय पर्याय से करते हैं। ''इंडिपेंडेंस'' का अर्थ है अनधीनता। अनधीनता का आशय है ''किसी की अधीनता का अभाव'। लेकिन भारतीय पर्याय यह नहीं है। भारतीय पर्याय है, स्वाधीनता या स्वतंत्रता अर्थात स्व की अधीनता या स्व का तंत्र। इस प्रकार इसमें किसी की अधीनता का अभाव नहीं बल्कि 'स्व' की अधीनता का भाव निहित है। इसे द्विवेदीजी भारतीय संस्कृति की विशेषता मानते हैं।

u;s ;k iqjkus dk iz'u % यहां एक शंका खड़ी हो सकती है कि क्या द्विवेदीजी भारतीय परंपरा का महिमा मंडन कर रहे हैं? निश्चय ही नहीं। द्विवेदीजी कालिदास के मत का उल्लेख करते हुए स्पष्ट कर देते हैं कि उनकी दृष्टि पुरातनपंथियों जैसी नहीं है। लेकिन उनका मानना है कि अगर हमारे अतीत के कोष में मानव जाति की भलाई की कोई बात हो तो हमें उसे अवश्य स्वीकार करना चाहिए।

eu"; vkj i'kq e vUrj & lkekU; /keZ dh [kkst % आचार्य द्विवेदी इसके बाद मानव जाति के लिए सामान्य धर्म की बात को उठाते हैं। आखिर मनुष्य और पशु में मूल अंतर क्या है? भारतीय परंपरा में आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये चार बातें ऐसी मानी गयी हैं जो मनुष्य और पशु में एक समान है। स्पष्ट ही इन चार बातों के होने मात्र से कोई मनुष्य, मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं बन जाता। तब वह क्या चीज है जो मनुष्य को मनुष्य बनाती है? यहां

द्विवेदीजी उस सामान्य धर्म की बात करते हैं जिसे स्वयं मनुष्य ने खोजा है और जिसे मनुष्य ने अपने ऊपर बंधन के तौर पर स्वीकार किया है। संयम, श्रद्धा, तप, त्याग और दूसरों के दुख-सुख के प्रति संवेदना। निश्चय ही ये ऐसे धर्म हैं जिन्हें स्वीकार करने के लिए मनुष्य बाध्य नहीं है लेकिन जिन्हें स्वीकार करके मनुष्य, मनुष्य कहलाने का अधिकारी बनता है।

Hkkfrd mUufr vkj eu";rk dk ekxZ % इनकी आवश्यकता आज क्यों है? क्योंकि भौतिक उन्नति इस बात की गारंटी नहीं है कि मनुष्य पशुत्व से मुक्त हो जाएगा। हथियार इसी भौतिक उन्नति का अंग है जिससे केवल विध्वंस और विनाश ही हो सकता है। लेकिन क्या मनुष्य का लक्ष्य विनाश है? महात्मा गांधी ने सावधान किया था कि सिर्फ भौतिक उन्नति से सुख और शांति नहीं मिलेगी। अपने मन को भी बदलना होगा। मन से हिंसा, क्रोध, द्वेष और असत्य को दूर करना और दूसरों के लिए जीना सीखना होगा, दूसरों के लिए कष्ट सहन करना होगा। गांधीजी ने ये बातें एक उपदेशक की तरह नहीं कही थी वरन् अपने व्यवहार को भी उन्हीं के अनुकूल ढाल लिया था। लेकिन जिन लोगों के मन में हिंसा थी, द्वेष था, क्रोध और बैर का भाव था, उन्हें उनकी बातें अच्छी नहीं लगीं और उन्होंने गांधीजी की हत्या कर दी।

द्विवेदीजी कहते हैं कि हो सकता है किसी दिन नाखून बढ़ना बंद हो जाएं क्योंकि जो हमारे लिए गैर जरूरी है प्रकृति उसे हमसे अलग कर देती है – जैसे पूंछ। हो सकता है किसी दिन मनुष्य विध्वंसकारी अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण बंद कर दे। लेकिन जब तक ऐसा नहीं होता है तब तक हमें बच्चों को सिखाना होगा कि नाखून का बढ़ना पशुता की निशानी है और उसको बढ़ने देना मनुष्य का आदर्श नहीं है। इसी तरह हथियारों की बढ़ोतरी हमारी पशुता की निशानी है और उनको कम करने की इच्छा रखना हमारी मनुष्यता का प्रमाण है। हमें अपने मनुष्य होने की पहचान को नहीं भूलना चाहिए।

मानवजाति की सार्थकता विनाशकारी हथियारों का ढेर लगाने में नहीं है। मनुष्य जीवन की सार्थकता इस बात में है कि वह प्रेम, मैत्री और त्याग के मार्ग पर चले तथा सब के कल्याण के लिए अपने को समर्पित कर दे। नाखून के बढ़ने की तरह हिंसक वृत्ति भले ही मनुष्य की सहज वृत्ति का परिणाम हो, लेकिन उससे मुक्त होने की कोशिश करना भी मनुष्यत्व की पहचान है।

इस प्रकार द्विवेदीजी नाखून बढ़ने के सवाल से मनुष्य की हिंसक वृत्ति को जोड़ते हैं और हिंसक वृत्ति के सवाल को हथियारों की बढ़ोतरी से। हथियारों में वृद्धि होने से मानवजाति के संपूर्ण विनाश का खतरा उत्पन्न हो गया है। प्रश्न यह है कि इससे मुक्त कैसे हों? द्विवेदीजी इसके लिए आत्मनियंत्रण का मार्ग सुझाते हैं जो भारतीय परंपरा की देन है और जिसके द्वारा ही मनुष्य अपने अंदर की पशुता से मुक्त हो सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि यह निबंध हमें विश्व-शांति के महत्त्व पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है।

36-2-2 Hkko i{k

'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' पर विचार करने के दौरान हमने देखा कि द्विवेदीजी ने इससे जुड़े कई सवालों पर गहन चिंतन से निकले निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं। इस निबंध का मूल प्रश्न केवल वैचारिक नहीं है, वह मनुष्य की भावनाओं का भी सवाल है। नाखून बढ़ना भले ही शारीरिक क्रिया हो, लेकिन पशुता और मनुष्यता, मनुष्य के आंतरिक भाव हैं। द्विवेदीजी की मुख्य चिंता मनुष्य की मनोवृत्तियों को लेकर रही है। मनुष्य में दो तरह की वृत्तियां होती हैं। एक ओर क्रोध, बैर, द्वेष हैं जो मनुष्य में घृणा और नफ़रत पैदा करते हैं जिनके कारण लोगों में लड़ाई-झगड़ा बढ़ता है। यही प्रवृत्ति जब विभिन्न समुदायों, जातियों और राष्ट्रों के बीच बढ़ती है तो उनमें युद्ध होता है। इन युद्धों में हजारों-लाखों निर्दोष लोग मारे जाते हैं। हिंसा और घृणा मनुष्य को ऐसे हथियारों की ओर ले जाती हैं जिनसे और अधिक नरसंहार होता है। आखिर क्या यह सत्य नहीं है कि आज अस्त्र-शस्त्रों की होड़ ने मानव-जाति को ऐसे कगार पर ला खड़ा कर दिया है जहां एक कदम आगे बढ़ाने पर ही मानव-जाति संपूर्ण विनाश की ओर बढ़ सकती है।

तब प्रश्न यह है कि इस खतरे से कैसे बचा जाए? द्विवेदीजी इसका उत्तर विचारधारात्मक स्तर पर नहीं देते। वे इसका उत्तर भी भावनाओं के धरातल पर देते हैं। उनका विचार है कि अगर क्रोध, हिंसा, घृणा और पाशविक वृत्तियां मनुष्य में मौजूद हैं तो सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य ने कुछ ऐसी भावनाओं और धारणाओं को भी अंगीकार किया है जिनसे वह अपनी

पाशविकता पर विजय प्राप्त कर सके। दूसरों के सुख-दुख के प्रति संवेदना का भाव, प्रेम का भाव, दूसरों के लिए कष्ट उठाना – ये ऐसी चीज़ें हैं जिनसे व्यक्ति घृणा, क्रोध, हिंसा जैसी वृत्तियों पर विजय पा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस निबंध में वस्तुतः दो भिन्न तरह की भावधाराओं का संघर्ष दिखाया गया है जिन्हें आज की हमारी सभ्यता के मूल में निहित माना जा सकता है। इसलिए हम यह भी कह सकते हैं कि द्विवेदीजी के सामने हथियारों के बढ़ते खतरे की चिंता जितनी प्रबल थी, उससे कहीं अधिक प्रबल थी मनुष्य की पशुता की जो मनुष्य की आंतरिक वृत्ति है। इसके कारण क्रोध, घृणा, वैर आदि नकारात्मक भाव उत्पन्न होते हैं और जिनके कारण ही मनुष्य हथियारों की ओर दौड़ता है।

अब प्रश्न उठता है कि द्विवेदीजी अपने निबंध में प्रधानता किस को देते हैं, विचारों को या भावों को। इसका उत्तर देना सरल नहीं है। वस्तुतः द्विवेदीजी की पद्धति विचारप्रधान नहीं है, लेकिन वह पूरी तरह भावों में भी नहीं बहते। वरन् देखा यह गया है कि जब वे भावनाओं में गहरे डूबे नजर आते हैं तब भी उसमें कोई गहरा विचार अंतर्निहित होता है और जब वे किसी विचार का विवेचन कर रहे होते हैं तो वहां भी कोई मानवीय भाव उस विचार को शक्ति दे रहा होता है। इसके लिए हम निम्नलिखित उदाहरण दे सकते हैं :

> *मेरा मन पूछता है – किस ओर? मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है। पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर? अस्त्र बढ़ाने की ओर या अस्त्र काटने की ओर। मेरी निर्बोध बालिका ने मानो मनुष्य-जाति से ही प्रश्न किया है – जानते हो, नाखून क्यों बढ़ते हैं? यह हमारी पशुता के अवशेष हैं। मैं भी पूछता हूँ – जानते हो, ये अस्त्र-शस्त्र क्यों बढ़ रहे है? ये हमारी पशुता की निशानी है।*

उपर्युक्त उद्धरण में आप पाएंगे कि लेखक अपनी बात को भावात्मक ढंग से रख रहा है, लेकिन इसमें अंतनिर्हित प्रश्न हमारे विचारों को भी उद्धेलित करने वाला है। इसलिए, अंत में, यह कहा जा सकता है कि द्विवेदीजी के इस निबंध में विचार और भावना दोनों एक दूसरे से इस तरह संयोजित हैं कि इसे हम सिर्फ विचार प्रधान या भाव प्रधान निबंध नहीं कह सकते।

ck/k i'u

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गए उत्तरों से मिलाइए।

1. निबंध में निम्नलिखित में से किन-किन बातों पर विचार किया गया है। सही पर (√) का चिह्न लगाइए।
   - क) मानव प्रगति और हथियारों का विकास ( )
   - ख) राष्ट्र की सुरक्षा का प्रश्न ( )
   - ग) नये और पुराने का प्रश्न ( )
   - घ) मानवता और पशुता में अंतर ( )
   - ङ) मोक्ष प्राप्ति का मार्ग ( )
2. निबंध में किस मुख्य समस्या पर विचार किया गया है?
   - क) नाखून का बढ़ना
   - ख) भौतिक उन्नति को रोकना
   - ग) मनुष्य की आंतरिक पशुता को समाप्त करना
   - घ) गांधीवाद का प्रचार करना ( )
3. मनुष्यता का मार्ग कौन-सा है?
   - क) भौतिक उन्नति करना
   - ख) दूसरों के लिए कष्ट सहन करना
   - ग) अस्त्र-शस्त्र बढ़ाना
   - घ) नाखून काटना ( )
4. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक पंक्ति में दीजिए:
   1) ''स्व का बंधन'' का क्या आशय है?

   ....

   ....

2) सहज वृत्ति किसे कहते हैं?

....

3) कौन-कौन सी बातें मनुष्य और पशु में समान हैं?

....

4) हथियारों की बढ़ोतरी को रोकना क्यों आवश्यक है?

....

vH;kl

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

1. प्रस्तुत निबंध विचार प्रधान है या भाव प्रधान? पांच पंक्तियों में अपना मत प्रस्तुत कीजिए।

   mÙkj ladsr%

   विचार प्रधान निबंध की विशेषता ....

   भाव प्रधान निबंध की विशेषता ....

   द्विवेदीजी के निबंध में विचारों और भावों में संतुलन ....

2. निम्नलिखित अंश के आधार पर निबंध के भाव पक्ष का विवेचन अधिक-से-अधिक 100 शब्दों में कीजिए।

   एक बूढ़ा था। उसने कहा था – बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ। क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो, आत्म-तोषण की बात सोचो, काम करने की बात सोचो।

   mÙkj ladsr %

   बात कहने का भावपरक और आत्मीय तरीका

   विवेचनपरकता से भिन्न

   पाठक की भावनाओं को उद्वेलित करने का प्रयास

   छोटे-छोटे वाक्य जिसमें बात के भाव पक्ष पर बल

   ....

   ....

   ....

   ....

36-3 ys[kdh; O;fDrRo dh vfHkO;fDr

निबंध में लेखक का व्यक्तित्व किसी-न-किसी रूप में अवश्य व्यक्त होता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की शैली शुक्लजी की अपेक्षा कम विवेचनपरक और अधिक भावनात्मक है इसलिए उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं को ज्यादा सरलता से पहचाना जा सकता है। यद्यपि इन दोनों रचनाकारों के व्यक्तित्व की कुछ विशेषताएं एक-सी हैं। द्विवेदीजी के इस निबंध को पढ़ने से उनके व्यक्तित्व की जो विशेषताएं हमारे सामने उभरकर आती हैं, उन्हीं पर यहां विचार किया जाएगा।

ekuorkoknh% आचार्य द्विवेदी का दृष्टिकोण मानवतावादी है, उनकी इस दृष्टि को हम इस निबंध में भी पहचान सकते हैं। द्विवेदीजी को यह निबंध लिखने की क्यों आवश्यकता हुई, अगर इस पर विचार करें तो हम पाएंगे कि इसके पीछे मानव-जाति के भविष्य की चिंता ही मुख्य कारण है। द्विवेदीजी के लिए ऐसा विश्व ही आदर्श है जो सुख-शांति और प्रेम की भावना से भरा हो। जहां लोग क्रोध, घृणा और असत्य से मुक्त होकर जिएं। लेकिन उनके आदर्शों का यह संसार वास्तविकता में मौजूद नहीं है। जो है – वह विनाश के कगार पर खड़ा है क्योंकि मनुष्य ने ऐसे अस्त्र-शस्त्र निर्मित कर लिए हैं कि उससे संपूर्ण मानव जाति का विनाश हो सकता है। यही मुख्य चिंता है जिसने द्विवेदीजी को इस निबंध की रचना के लिए प्रेरित किया है।

आचार्य द्विवेदी अपनी चिंता को सिर्फ हथियारों की बढ़ोतरी तक ही सीमित नहीं रखते। उनका मानना है कि केवल हथियारों की कमी की बात करना पर्याप्त नहीं है। आवश्यकता इस बात

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

की है कि हम उस मूल कारण को पहचानें जो इंसान को हथियारों के निर्माण की ओर ले जाती है। द्विवेदीजी की विशेषता यह है कि वे मनुष्य की आंतरिक वृत्तियों के प्रकाश में इस पर विचार करते हैं और बताते हैं कि इस समस्या का संबंध उन पाशविक वृत्तियों से है जिनसे अभी तक मनुष्य मुक्त नहीं हो पाया है। लेकिन ये पाशविक वृत्तियां मनुष्य के लिए जितनी सच है उससे कहीं ज्यादा सच है मनुष्य का धर्म। प्रेम, तप, श्रद्धा, संवेदना, त्याग मानवीय गुण या धर्म है, जिनके द्वारा मनुष्य अपने मनुष्यत्व का प्रमाण देता है। मनुष्य जब इन्हें ही भूल जाता है तब वह पशुता की ओर बढ़ने लगता है और तभी वह अस्त्र-शस्त्र का जखीरा बढ़ाता है।

पांडित्य : द्विवेदीजी के व्यक्तित्व की दूसरी प्रमुख विशेषता है उनका पांडित्य। हम आपको इकाई 35 में बता चुके हैं कि द्विवेदीजी ने प्राचीन भारतीय साहित्य का गहन अध्ययन किया था। उनकी यह अध्ययनशीलता हमें इस निबंध में भी दिखाई देती है। निबंध के आरंभ में ही राम, दधीचि मुनि, आर्यों का आगमन, सुर-असुर संग्राम, कामसूत्र, कालिदास, महाभारत, गौतम आदि के उल्लेख उनके प्राचीन भारतीय इतिहास, साहित्य और संस्कृति से गहरे परिचय को ही प्रकट करते हैं। द्विवेदीजी के पांडित्य की विशेषता यह है कि वे अपने निबंध को अपनी विद्वता से क्लिष्ट और बोझिल नहीं होने देते और न ही अपने पांडित्य से वे दूसरों को आतंकित करते हैं। प्राचीन परंपरा के ये उल्लेख उनके निबंध की अंतर्वस्तु के साथ पूरी तरह रचे-बसे हैं। जैसे दधीचि मुनि का उल्लेख हथियारों के विकास को प्रकट करता है। 'कामसूत्र' नाखूनों के उपयोग की सौंदर्य संबंधी जानकारी प्रदान करता है। कालिदास नये-पुराने के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं, तो महाभारत और गौतम मानवीय धर्म की व्याख्या करते हैं। ये पक्ष निबंध की विषयवस्तु को समृद्ध ही करते हैं।

द्विवेदीजी के पांडित्य की दूसरी विशेषता यह है कि प्राचीन साहित्य और संस्कृति का यह गहरा अध्ययन उन्हें रूढ़िवादी और दकियानूसी नहीं बनाता। उनके सोच में वैज्ञानिक दृष्टि अंतर्निहित है। उदाहरण के लिए, उनका पूरा निबंध विज्ञान की इस मान्यता पर टिका हुआ है कि मनुष्य पहले बर्बर अवस्था में था और धीरे-धीरे विकास करता हुआ आज की स्थिति में पहुंचा है। जबकि धार्मिक मान्यता यह है कि यह सृष्टि ईश्वर की इच्छा से उत्पन्न हुई है। इसी तरह, वे अपनी बात की व्याख्या के लिए सिर्फ प्राचीन साहित्य का सहारा नहीं लेते बल्कि प्राणी विज्ञान और मनोविज्ञान की मान्यताओं का भी सहारा लेते हैं और अपने मत को उनसे पुष्ट करते हैं। इस प्रकार द्विवेदीजी के पांडित्य का आधुनिकता या पुरातनता से कोई विरोध नहीं है बल्कि उनका तो मत है कि जहां भी जो बात अच्छी हो उसे अंगीकार करना चाहिए।

विचारक : द्विवेदीजी के व्यक्तित्व की तीसरी विशेषता है कि उनकी विचारशीलता। वे किसी भी प्रश्न पर गहरी अंतर्दृष्टि के साथ विचार करते हैं। यद्यपि उनका उद्देश्य पाठकों को अपनी विचार प्रणाली से प्रभावित करने का नहीं होता। वे उस मूल चिंता से पाठक को जोड़ना चाहते हैं जो उनके निबंध की रचना का आधारभूत कारण है। इस तरह वे अपने पाठक को अपनी चिंता का सहभागी बनाते हैं। द्विवेदीजी के चिंतन की खास बात यह है कि वे अपनी बात को प्रायः सामान्य अनुभव से शुरू करते हैं। उस सामान्य अनुभव को वे ज्यादा व्यापक और बृहत्तर जीवन से जुड़े सवालों से सहज ही जोड़ देते हैं। जैसे इस निबंध में नाखून का बढ़ना, नाखून का हथियार की तरह इस्तेमाल का उल्लेख करते हुए एटम बम तक के निर्माण तक पहुंच जाना। इसी तरह नाखून का बढ़ना और काटना क्रमशः मनुष्य की पशुता और मनुष्यता के प्रतीक बन जाते हैं। इस प्रकार, द्विवेदीजी नाखून बढ़ने के सामान्य अनुभव को हथियारों की बढ़ोतरी से जोड़कर मानवजाति की सामान्य चिंता, विश्व शांति के प्रश्न को अनायास ही प्रभावशाली ढंग से सामने ले आते हैं।

संवेदनशील सहृदय द्रष्टा : द्विवेदीजी के व्यक्तित्व की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता उनकी संवेदनशीलता है। वे चिंतक से अधिक सृजनशील साहित्यकार थे। उनकी संवेदनशीलता जहां व्यापक मानवीय सहानुभूति के रूप में व्यक्त हुई हैं वहीं उनकी सृजनशीलता ने उनके निबंधों को सरस, रोचक और आत्मीय बनाया है। द्विवेदीजी मनुष्य के उदात्त और मानवीय पक्ष को उजागर करते हैं। भावप्रवण और हृदयस्पर्शी ढंग से वे अपनी बात रखते हैं। इससे उनकी बातें पाठक के मस्तिष्क के साथ-साथ हृदय को भी उद्वेलित करती है। निबंध के आरंभ के निम्नलिखित अंश को देखिए :

पर कोई नहीं जानता कि वे अभागे नाखून क्यों इस प्रकार बढ़ा करते हैं। काट लीजिए, वे चुपचाप दंड स्वीकार कर लेंगे, पर निर्लज्ज अपराधी की भांति फिर छूटते ही सेंध पर हाजिर। आखिर ये इतने बेहया क्यों है?

निबंध के उपर्युक्त अंश की भाषा पर गौर कीजिए। आप देखेंगे कि द्विवेदीजी ने यहां नाखून काटने और बढ़ने की प्रक्रिया का मानवीकरण कर दिया है और नाखून के लिए अभागे, निर्लज्ज, अपराधी, बेहया जैसे विशेषणों का प्रयोग करके अपनी बात को हृदयग्राही भी बना दिया है और उसमें रोचकता भी आ गयी है।

इस प्रकार द्विवेदीजी के लेखकीय व्यक्तित्व की कई विशेषताएं हमारे सामने उजागर होती है।

ck/k i'u

5. द्विवेदीजी के व्यक्तित्व की कौन-सी ऐसी विशेषता है जिससे उनकी अध्ययनशीलता का पता चलता है?
   क) पांडित्य
   ख) मानवतावाद
   ग) संवेदनशीलता
   घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं ( )
6. पुरानी मान्यताओं के प्रति द्विवेदीजी का क्या दृष्टिकोण था?
   क) वे उन का पूर्ण समर्थन करते थे।
   ख) वे उनके कटु आलोचक थे।
   ग) वे पुराने की अपेक्षा नये को उचित मानते थे।
   घ) वे नये और पुराने को विवेकशील दृष्टि से जांचने के पक्षधर थे। ( )

vH;kl

3. द्विवेदीजी के मानवतावादी दृष्टिकोण पर पांच पंक्तियों में टिप्पणी लिखिए।

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

36-4 lajpuk-f'kYi

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी के प्रमुख निबंधकार हैं। इन्होंने निबंध की एक नयी शैली विकसित की जिसे ललित निबंध कहा जाता है। द्विवेदीजी का यह निबंध इस शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। भाषा और शैली दोनों दृष्टियों से द्विवेदीजी के निबंध अत्यंत प्रभावशाली हैं। आइए, हम उनके इस निबंध की भाषा-शैली की विशेषताओं का अध्ययन करें।

36-4-1 Hkk"kk

'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' से स्पष्ट है कि आचार्य द्विवेदी की भाषा आचार्य शुक्ल की भाषा से भिन्न है। यद्यपि द्विवेदीजी की भाषा भी परिनिष्ठित और परिष्कृत है लेकिन उनकी भाषा की कुछ अन्य विशेषताएं भी हैं। द्विवेदीजी की शैली विवेचनापरक नहीं है। उनकी भाषा में अधिक लचीलापन है। वे विषय और प्रसंग के अनुसार अपनी भाषा को बदल देते हैं। द्विवेदीजी की भाषा के कई रूप और स्तर हमारे सामने खुलते जाते हैं। उनकी भाषा में शब्द चयन से लेकर वाक्य रचना तक एक तरह की स्वच्छंदता नजर आती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि आचार्य द्विवेदी की भाषा में बिखराव या अर्थगत शिथिलता है। उनकी भाषा नदी की तरह प्रवाहमयी है। कभी गरजती-उफनती आगे बढ़ती है, तो कभी कल-कल करती शांति से बहती रहती है। इस निबंध के कुछ अंशों को सामने रखकर उनकी भाषा पर विचार कर सकते हैं :

> *कुछ लाख ही वर्षों की बात है, जब मनुष्य जंगली था, वनमानुष जैसा। उसे नाखून की जरूरत थी। उसकी जीवन रक्षा के लिए नाखून बहुत जरूरी थे। असल में वही उसके अस्त्र थे। दांत भी थे, पर नाखून के बाद ही उनका स्थान था।*

आप उपर्युक्त अंश की भाषा का विश्लेषण कीजिए। यहां केवल एक स्थिति का वर्णन है। लेकिन यहां भाषा का रूप अत्यंत सहज और स्वाभाविक है। छोटे-छोटे वाक्य और बोलचाल के सामान्य शब्दों का प्रयोग किया गया है, जिनमें खड़ी बोली का स्वाभाविक रूप प्रकट होता है। किसी भी पाठक को उक्त बातें समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

> *अगर आदमी अपने शरीर की, मन की और वाक् की अनायास घटने वाली वृत्तियों के विषय में विचार करे, तो उसे अपनी वास्तविक प्रवृत्ति पहचानने में बहुत सहायता मिले। पर कौन सोचता है? सोचना तो क्या उसे इतना भी पता नहीं चलता कि उसके भीतर नख बढ़ा लेने की जो सहजवृत्ति है, वह उसके पशुत्व का प्रमाण है।*

इस अंश में द्विवेदीजी ने सहज वृत्ति का बौद्धिक विवेचन किया है। इसलिए आप पाएंगे कि इस अंश की भाषा ऊपर के अंश से भिन्न है। यहां वाक्य लंबे हैं। शब्द तत्सम प्रधान है। यद्यपि यहां भी लेखक ने अपनी बात प्रभावशाली ढंग में रखी है।

> *मनुष्य को सुख कैसे मिलेगा? बड़े-बड़े नेता कहते है, वस्तुओं की कमी है, और मशीन बैठाओ, और उत्पादन बढ़ाओ और धन की वृद्धि करो, और बाह्य उपकरणों की ताकत बढ़ाओ।*

द्विवेदीजी ने यहां कहा है कि कुछ नेताओं के अनुसार भौतिक उन्नति ही सुख का साधन है। अब इस बात को एक पंक्ति में भी रखा जा सकता था। लेकिन द्विवेदीजी उसे छोटे-छोटे उपवाक्यों में प्रस्तुत करते हैं और भौतिक उन्नति के तात्पर्य को एक व्यापक रूपक में बदल देते हैं। यहां कथन का वैचारिक पक्ष ही उजागर नहीं होता बल्कि उसकी प्रस्तुति में निहित उनकी भावना भी उजागर होती है और सबसे बड़ी बात यह है कि द्विवेदीजी जो कहना चाहते हैं उसे क्लिष्ट बनने से बचाकर सहज और आत्मीयतापूर्ण बना देते हैं।

उपर्युक्त तीन उदाहरणों से हम उनकी भाषा की कुछ विशेषताओं को सामने रख सकते हैं:

- द्विवेदीजी की भाषा परिनिष्ठित है। उसमें हिंदी की स्वाभाविकता, सहजता और सरसता है।
- उनकी भाषा विषय और प्रसंग के अनुकूल परिवर्तित होती है।
- वे प्रायः छोटे और स्पष्ट अर्थ देने वाले वाक्य बनाते हैं। अपेक्षाकृत लंबे वाक्य वे वहीं इस्तेमाल करते हैं जहां कोई गंभीर विवेचन किया गया हो।
- उनकी भाषा का प्रमुख गुण है, लालित्य। इसके लिए वे भाषा को सरस, रोचक, आत्मीय और पठनीय बनाते हैं और साथ ही काव्य के उपकरणों का भी इस्तेमाल करते हैं। जैसे अलंकार, बिंब, रूपक आदि का प्रयोग। आवश्यकतानुसार मुहावरों का भी प्रयोग करते हैं। लेकिन इनसे उनका कथन दबता नहीं है बल्कि और प्रभावशाली बन जाता है।
- उनकी शब्दावली अत्यंत व्यापक है। वे तत्सम शब्दों का पर्याप्त प्रयोग करते हैं। लेकिन तद्भव, देशज और उर्दू शब्दों का प्रयोग भी धड़ल्ले से मिलता है।

अतः हम कह सकते हैं कि द्विवेदीजी ने शुक्लजी की भाषा में लालित्य का एक अतिरिक्त गुण जोड़कर उसे और अधिक समृद्ध किया है।

36-4-2 'kSyh

द्विवेदीजी के निबंधों की शैली न तो विवेचन प्रधान है और न ही भावप्रधान। वस्तुतः उनमें शैली का एक नया ही रूप मिलता है जिसे हम निबंध की ललित शैली कह सकते हैं। वे सिर्फ कथन के मंतव्य को ही उजागर करना पर्याप्त नहीं समझते, बल्कि अपनी बात को इस ढंग से कहना चाहते हैं कि उसका सौंदर्य भी सबको प्रभावित करे। वे ''क्या कहा है'' के साथ-साथ ''कैसे कहा है'' को भी ध्यान में रखते हैं। यही कारण है कि वे निबंध को कभी वैचारिक गूढ़ता से बोझिल नहीं होने देते और न ही पाठकों को भावनाओं की दरिया में बहाते जाते हैं कि वे अपनी सुध-बुध ही खो बैठे। वे बात को गूढ़ चिंतन शैली में पेश करने की बजाय अनुभूतिपरक बना देते हैं, ताकि सामान्य से सामान्य पाठक भी अनभूति के स्तर पर उससे जुड़ सके। जैसे, नाखून क्यों बढ़ते हैं, यह सामान्य पाठक के लिए भी कोई ऐसा प्रश्न नहीं है जिसे वह न समझ सके। लेकिन विश्वशांति की आवश्यता पर कोई बौद्धिक निबंध लिखा जाता, तो हो सकता है पाठक उससे इतनी अंतरंगता महसूस नहीं करता।

द्विवेदीजी की शैली की दूसरी विशेषता यह है कि वह अपने कथ्य को एक धारा में बांधे नहीं रखते बल्कि आवश्यकता के अनुसार बदलते रहते हैं। अगर जरूरत हुई तो किसी ग्रंथ की कोई

गूढ़ बात उद्धृत कर दी और जरूरत हुई तो प्रकृति और जीवन से संबंधित कोई बात कह दी। यह भी आवश्यक नहीं है कि वे अपने निबंध को किसी खास विषय तक ही सीमित रखें। मूल कथ्य के साथ-साथ अगर कोई अन्य बात उभर आती है तो उसे भी अत्यंत रोचक ढंग से प्रस्तुत कर देते हैं। जैसे निबंध के आरंभ में अस्त्र-शस्त्रों के विकास की कहानी कहते हुए वे प्राचीन भारतीय इतिहास पर भी टिप्पणी कर देते हैं। आर्यों की जीत इसलिए हुई कि उनके पास घोड़े थे, लोहे के अस्त्र थे। इसी प्रकार नाखूनों की चर्चा के दौरान वे 'कामसूत्र' के हवाले से दो हजार साल पहले नाखून संवारने की भिन्न-भिन्न कलाओं का परिचय देने लगते हैं या कालिदास के हवाले से नये-पुराने पर टिप्पणी करते हैं। इस तरह के प्रसंगों से उनके निबंध की एकरसता भी समाप्त होती है और पाठक को भी कई नयी जानकारियां प्राप्त होती हैं।

द्विवेदीजी के निबंध की तीसरी विशेषता यह है कि अपनी बात को सरस ढंग से कहने के अभ्यासी हैं। इसके लिए वे या तो रोचक प्रसंगों का चयन करते हैं या फिर अपनी बात को सरस रूप देते हैं। उदाहरण के लिए, नये-पुराने वाले प्रसंग को देखिए। वे पुराने से चिपके रहने को उस बंदरिया की उपमा देते हैं जो अपने मरे बच्चे को गोद में चिपकाए रहती है। इस उदाहरण से उनकी बात अधिक रोचक बनकर सामने आती है। साथ ही वे रूढ़िवादिता पर प्रहार भी कर देते हैं। वे गंभीर विवेचन के समय भी कुछ ऐसे शब्द अपनी बात में डाल देते हैं जिससे बात की गंभीरता भी बनी रहती है और वह अधिक सहज और सरस भी हो जाती है। इस वाक्य को देखिए:

> *''इसलिए मनुष्य >xM-VV को अपना आदर्श नहीं मानता, गुस्से में आकर p<-nkMu वाले अविवेकी को बुरा समझता है।*

उपर्युक्त वाक्य में द्विवेदीजी ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात कही है। लेकिन ''झगड़े-टंटे'' और ''चढ-दौड़ने वाले'' प्रयोग, वाक्य को अधिक सहज और कथ्य को अधिक सरस बना देते हैं। इसी तरह गांधीजी का सीधा नाम लेने की बजाय उन्हें, 'बूढ़ा', कहने से गांधीजी के प्रति लेखक की गहरी श्रद्धा और आस्था भी प्रकट होती है, और दूसरों की उनके प्रति उपेक्षा का भाव भी।

अतः शैली की दृष्टि से इस निबंध को हम ललित निबंध कह सकते हैं क्योंकि तथ्य के पूर्ण सौंदर्य को इसमें उजागर किया गया है।

36-5 ifrik|

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के इस निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' का प्रतिपाद्य क्या है, अब तक के विश्लेषण से आप समझ गये होंगे। आपको मालूम होगा कि लगभग छह वर्षों तक दूसरा विश्वयुद्ध चलता रहा था। इस युद्ध में पूरा यूरोप, एशिया के कई देश, अमरीका आदि शामिल थे। इस में करोड़ों लोग मारे गये थे। हजारों शहर तबाह हो गये थे। युद्ध के आखिरी चरण में अमरीका ने जापान के दो शहरों पर एटम बम का प्रयोग किया था, जिनके कारण वे दोनों शहर पूरी तरह नष्ट हो गये। यद्यपि 1945 में विश्व युद्ध समाप्त हो गया लेकिन दुनिया से युद्ध का खतरा समाप्त नहीं हुआ। इसके विपरीत दूसरे विश्व युद्ध के बाद दुनिया दो खेमों में बंट गई। एक का नेता अमरीका था और दूसरे का सोवियत संघ। दोनों ओर से जोर-शोर से युद्ध की तैयारियां होने लगी। नये-नये अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण होने लगा। इसने तीसरे विश्वयुद्ध का खतरा उत्पन्न कर दिया। ऐसे में विश्व की शांतिकामी जनता ने युद्ध की तैयारियों के विरूद्ध आवाज उठाई। विध्वंसक हथियारों पर रोक लगाने की मांग होने लगी। शांति के पक्ष में उठी इस आवाज का समर्थन लेखकों, कलाकारों, बुद्धिजीवियों ने भी किया। लेखकों ने कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि लिखकर युद्ध के विरोध में और शांति के पक्ष में प्रचार किया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह निबंध इसी शांति अभियान का एक अंग है और इसका उद्देश्य विश्वशांति की आवश्यकता को प्रतिपादित करना है।

युद्ध का खतरा और मानव जाति के विनाश का भय आज पहले से कहीं ज्यादा बढ़ गया है और इस दृष्टि से निबंध की प्रासंगिकता और महत्त्व और भी बढ़ जाता है। लेकिन द्विवेदीजी ने इस प्रश्न को व्यापक मानवीय संदर्भ में प्रस्तुत किया है। द्विवेदीजी ने इस प्रश्न को केवल हथियारों के उत्पादन तक सीमित नहीं रखा है बल्कि उसे मनुष्यत्व और पशुत्व से जोड़कर इसके नैतिक पक्ष को भी उजागर किया है।

द्विवेदीजी ने अपने मत के समर्थन में महात्मा गांधी के आदर्शों को प्रस्तुत किया है। हम सभी जानते हैं कि महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा का आदर्श रखा था और ब्रिटिश दासता के विरुद्ध संघर्ष में भी उन्होंने सत्य और अहिंसा का मार्ग नहीं छोड़ा था। इसी तरह उन्होंने प्रेम, तपस्या और त्याग द्वारा विरोधी के हृदय-परिवर्तन की बात कही थी। द्विवेदीजी, गांधीजी के इन मानवीय आदर्शों से अत्यंत प्रभावित थे और उन्होंने अपने इस निबंध में उन्हीं आदर्शों को मनुष्यत्व की पहचान के रूप में स्थापित किया है।

द्विवेदीजी का विचार है कि पशुता मनुष्य की एक ऐसी प्रकृति है जो उसके बर्बर युग का अवशेष कही जा सकती है। सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य ने कुछ मानवीय गुणों का विकास भी किया है। प्रेम, श्रद्धा, त्याग, तपस्या, संवेदना आदि ऐसे ही मानवीय गुण है लेकिन इन्हें मनुष्य तभी अपना सकता है जब वह स्व के बंधन को स्वीकार करे। 'स्व' का अर्थ है मुनष्य के वे सामान्य गुण जिससे वह पशु से अलग अपनी पहचान बनाता है।

द्विवेदीजी ने भारतीय संस्कृति की एक ऐसी विशेषता को भी हमारे सामने रखा है जिसे प्रायः भुला दिया जाता है। ''स्व का बंधन'' ऐसी ही विशेषता है। आत्मानुशासन के द्वारा मनुष्य हिंसा, क्रोध, घृणा आदि से छुटकारा पा सकता है।

इस प्रकार द्विवेदीजी का यह निबंध विश्वशांति का संदेश देने के साथ-साथ पशुता और मनुष्यता के अंतर को भी उजागर करता है और हमें बताता है कि मनुष्य होने के नाते हमारे लिए क्या श्रेयष्कर है, नाखून को बढ़ने देना या नाखून को बढ़ने न देना।

'kh"kZd dh mi;qDrrk% 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन' की तरह द्विवेदीजी के इस निबंध का शीर्षक विषय का सीधा प्रतिपादन नहीं करता। केवल 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' पढ़ने से हम अनुमान नहीं लगा सकते कि इस निबंध का वास्तविक विषय क्या है। वस्तुतः निबंध का शीर्षक व्यंजनापूर्ण है। निबंध में नाखून क्यों बढ़ते हैं, इसकी चर्चा तो है ही, इसके साथ-साथ और इससे कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण विषय है, मनुष्य की पशुता का बढ़ना। इस निबंध का वास्तविक विषय यही है कि इस अर्थ में नाखून पशुता का प्रतीक बनकर इस निबंध में प्रस्तुत हुआ है। द्विवेदीजी की शैली की यह विशेषता है कि इन दोनों को इस तरह एक साथ जोड़कर उन्होंने प्रस्तुत किया है कि पाठक को निबंध के वास्तविक मंतव्य तक पहुंचने में कोई कठिनाई नहीं आती।

vH;kl

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए और उत्तर इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

4. इस निबंध के आधार पर द्विवेदीजी के शब्द चयन पर अपने विचार पांच पंक्तियों में लिखिए?

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

5. इस निबंध को ललित निबंध क्यों कहा गया है? पांच पंक्तियों में समझाइए?

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

6. द्विवेदीजी ने किस उद्देश्य से प्रेरित होकर यह निबंध लिखा है। पांच पंक्तियों में समझाइए?

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

7. द्विवेदीजी महात्मा गांधी ने किन आदर्शों से प्रभावित थे? पांच पंक्तियों में समझाइए?

....

....

....

....

....

8. निम्नलिखित अंश के आधार पर द्विवेदी की भाषा की कोई दो विशेषताएं बताइए। उत्तर चार पंक्तियों से अधिक न हो।

लेकिन प्रकृति है कि अब भी नाखून को जिलाए जा रही है और मनुष्य है कि अब भी उसे काटे जा रहा है। वे कंबखत रोज बढ़ते हैं, क्योंकि वे अंधे हैं, नहीं जानते कि मनुष्य को इससे कोटि-कोटि गुना शक्तिशाली अस्त्र मिल चुका है।

....

....

....

....

9. निबंध की प्रासंगिकता पर अपने विचार लिखिए।

....

....

....

....

36-6 lkjka'k

- आपने इकाई 35 के अंतर्गत आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' की विशेषताओं का अध्ययन किया है। यह निबंध मनुष्य की हिंसक मनोवृत्ति पर केंद्रित है जिसके कारण वह मारक अस्त्र-शस्त्रों का ढेर लगा रहा है। इस निबंध में द्विवेदीजी हमारी भावनाओं को उद्वेलित करते हैं, साथ ही हमारे विचारों को भी। इस दृष्टि से इस निबंध में भाव और विचार दोनों का संयोजन है। आप अब इसके भावपक्ष और विचारपक्ष की विवेचना कर सकते हैं।
- द्विवेदीजी के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताएं हैं; मानवतावाद, पांडित्य, गहन चिंतन, संवेदनशीलता और सौंदर्य दृष्टि। अब आप निबंध में द्विवेदीजी के व्यक्तित्व की इन विशेषताओं को पहचान सकते हैं।
- इस निबंध की भाषा सहज स्वाभाविक, सरस, रोचक और भावप्रवण है। इनकी भाषा में हिंदी का अपना सौंदर्य व्यक्त हुआ है। इसमें जटिल विचारों और गहन अनुभूतियों को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता है। आप स्वयं इस निबंध की भाषा की विशेषताओं का वर्णन कर सकते हैं।
- यह ललित निबंध है। इसमें शैली का अनुपम सौंदर्य है। निबंध के विचार और भाव अत्यंत सरस, रोचक और आत्मीय ढंग से व्यक्त हुए हैं। अब आप स्वयं शैली की इन विशेषताओं का विवेचन कर सकते हैं।
- इस निबंध का मुख्य विषय विश्वशांति का प्रसार करना है। लेकिन इसके माध्यम से लेखक ने मनुष्य की आंतरिक पशुता और सामान्य मानवधर्म पर भी विचार किया है। आप स्वयं निबंध के प्रतिपाद्य का विवेचन कर सकते हैं।
- आप निबंध के शीर्षक की उपयुक्तता को भी समझा सकते हैं।

36-7 'kCnkoyh

vifjgk;Z % जिसका परिहार न हो सके, अनिवार्य।

ukxklkdh % जापान का एक शहर, जिस पर अमेरिका द्वारा 9 अगस्त, 1945 को एटम बम डाला गया था।

iqjkruiaFkh % पुरातन का अर्थ है, पुराना। वह जो प्राचीन रूढ़ियों को अच्छा समझता हो और नये का आंख मूंदकर विरोध करता हो।

efgek eMu % महिमा अर्थात बड़प्पन; महिमा मंडन अर्थात बड़प्पन से युक्त करना।
ekuohdj.k % एक अलंकार जिसमें निर्जीव वस्तु, विचार या भाव को मानवीय रूप में प्रस्तुत किया जाता है।
LoPNUnrk % अपनी इच्छा के अनुसार विचरण करना।
ufrd % जो नीति के अनुकूल हो अर्थात लोक व्यवहार के उपयुक्त आचरण।
vkReku'kklu % अपने आप का अपने आप पर नियंत्रण।

36-8 cks/k iz'uksa@vH;klksa ds mÙkj

cks/k iz'u

1. क) √ ख) × ग) √ घ) √ ङ) ×
2. ग)
3. ख)
4. 1) अपने आप पर, अपने आप के नियंत्रण को ''स्व का बंधन'' कहते हैं।
   2) वे वृत्तियों जो अभ्यासजन्य हैं, जिन्हें न तो सीखना होता है और न जिसके लिए प्रयास करना पड़ता है। जैसे नाखून का बढ़ना, पलकों का गिरना, आदि।
   3) आहार, निद्रा, भय और मैथुन मनुष्य और पशु में समान है।
   4) मानव-जाति को विनाश से बचाने के लिए यह आवश्यक है।
5. क)
6. घ)

vH;kl

1. देखिए भाग 36.2
2. उपभाग 36.2.2 पढ़िए और अपना उत्तर स्वयं लिखिए।
3. देखिए भाग 36.3
4. देखिए उपभाग 36.4.1
5. देखिए उपभाग 36.4.2
6. देखिए भाग 36.5
7. देखिए भाग 36.5
8. द्विवेदीजी ने यहां भाषा को भावप्रवण बनाया है। नाखून का मानवीकरण करके और उसे ''कंबख्त'' और ''अंधा'' कहकर उन्होंने बात में आत्मीयता भी उत्पन्न कर दी है। द्विवेदीजी कठिन भाषा और सामान्य बोलचाल की भाषा दोनों में सिद्धहस्त हैं। लेकिन वे अपनी बात को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से कहने में सफल रहे हैं।
9. द्विवेदीजी ने यह निबंध छठे दशक के आरंभ में लिखा था, उस समय जिस तरह के हथियार दुनिया में मौजूद थे, उससे कई हजार गुना अधिक खतरनाक और संख्या में भी कई गुना अधिक हथियार आज दुनिया में मौजूद हैं। एक छोटी-सी चिंगारी सारी दुनिया को कुछ मिनटों में नष्ट कर सकती है। मालूम नहीं कब मनुष्य की पशुता जाग उठे और दुनिया को राख के ढेर में बदलता हुआ देखने के लिए भी कोई न बचे। ऐसी स्थिति में यह और भी जरूरी है कि मनुष्य अपने अंदर की पशुता पर विजय प्राप्त करे और अपने मनुष्यत्व को पहचाने।

bdkbZ 37 ?khlk ¼egknsoh oekZ½ % okpu vkSj fo'ys"k.k

bdkbZ dh :ijs[kk

37.0 उद्देश्य
37.1 प्रस्तावना
37.2 रेखाचित्र का वाचन : घीसा
37.3 रेखाचित्र का सार
37.4 संदर्भ सहित व्याख्या
37.5 अंतर्वस्तु
37.6 मुख्य चरित्र
37.7 परिवेश
37.8 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति
37.9 संरचना-शिल्प
37.10 प्रतिपाद्य
37.11 सारांश
37.12 शब्दावली
37.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

37-0 mís';

यह स्नातक उपाधि के पाठ्यक्रम 'हिंदी गद्य' के छठे खंड की पांचवी इकाई और पाठ्यक्रम की 37वीं इकाई है। इस इकाई में आप महादेवी वर्मा द्वारा रचित रेखाचित्र 'घीसा' का वाचन और विश्लेषण का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- 'घीसा' के वाचन से उसकी अंतर्वस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- 'घीसा' में आये कठिन शब्दों के अर्थ बता सकेंगे;
- 'घीसा' के प्रमुख अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या कर सकेंगे;
- 'घीसा' की अंतर्वस्तु की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- 'घीसा' में आये प्रमुख चरित्रों की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- 'घीसा' में चित्रित परिवेश की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- 'घीसा' में लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- 'घीसा' का रेखाचित्र की विशेषताओं के संदर्भ में और उसकी भाषा और शैली की विशेषताएँ बता सकेंगे; और
- 'घीसा' के प्रतिपाद्य का विवेचन कर सकेंगे।

37-1 izLrkouk

स्नातक उपाधि कार्यक्रम के हिंदी ऐच्छिक पाठ्यक्रम (बी.एच.डी.ई-101) 'हिन्दी गद्य' के छठे खंड की यह पांचवी इकाई है। इस खंड में आप हिंदी गद्य की कथेतर विधाओं का अध्ययन कर रहे हैं। अब तक आप भारतेंदु हरिश्चंद्र के निबंध 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन' और हजारी प्रसाद द्विवेदी के ललित निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' का अध्ययन किया है। अब इस इकाई में आप छायावाद की महान कवयित्री और गद्यकार महादेवी वर्मा के रेखाचित्र 'घीसा' का अध्ययन करेंगे। 'इससे पहले आप खंड-4 में 'घीसा' पर मन्नू भंडारी द्वारा लिखी गयी टेलीविजन पटकथा का अध्ययन कर लिया है। उससे आपको 'घीसा' की अंतर्वस्तु का ज्ञान हो गया होगा। लेकिन इस इकाई में आप महादेवी वर्मा द्वारा लिखे इस रेखाचित्र का अध्ययन करने के बाद आप इस बात को अच्छी तरह से समझ सकेंगे कि कैसे एक रचना और उस पर लिखी गयी पटकथा में क्या अंतर होता है और वह अंतर किन-किन कारणों से होता है। इस इकाई में आप 'घीसा' का अध्ययन करने के साथ-साथ उसके कुछ अंशों की व्याख्या का अध्ययन भी करेंगे। इसके बाद आप रेखाचित्र के रूप में 'घीसा' की विशेषताओं का ज्ञान भी प्राप्त करेंगे। आप 'घीसा' की अंतर्वस्तु, उसके प्रमुख चरित्र, उसमें चित्रित परिवेश, रचना पर

लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव और 'घीसा' की भाषा और शैली की विशेषताओं का अध्ययन भी करेंगे। आप इस रचना के उद्देश्य की भी जानकारी प्राप्त करेंगे। इस अध्ययन से आप यह समझ पायेंगे कि रेखाचित्र के रूप में 'घीसा' का क्या महत्त्व है।

'घीसा' महादेवी वर्मा की रचना है। महादेवी वर्मा (1907-87) को छायावाद की प्रमुख कवयित्री के रूप में तो जाना ही जाता है इसके साथ ही उन्हें श्रेष्ठ गद्यकार के रूप में भी जाना जाता है। उन्होंने रेखाचित्र, संस्मरण और वैचारिक निबंध के क्षेत्र में उल्लेखनीय लेखन किया है। रेखाचित्र और संस्मरण विधा को साहित्यिक उत्कर्षता प्रदान करने में उनका अमूल्य योगदान है। इस इकाई में आप उनके 'घीसा' नामक रेखाचित्र का अध्ययन करने जा रहे हैं जिसमें एक गरीब विधवा स्त्री और उसके छोटे बच्चे घीसा के जीवन संघर्ष, स्वाभिमान और अत्यंत विपरीत परिस्थितियों में भी हार न मानने का संकल्प अत्यंत मर्मस्पर्शी रूप में पाठकों के समक्ष सजीव हो उठता है। अब आप इस महान कृति का वाचन करें।

37-2 j[kkfp= dk okpu % ?khlk

वर्तमान की कौन-सी अज्ञात प्रेरणा हमारे अतीत की किसी भूली हुई कथा को संपूर्ण मार्मिकता के साथ दोहरा जाती है, यह जान लेना सहज होता तो मैं भी आज गाँव के उस efyu सहमे नन्हे-से विद्यार्थी की सहसा याद आ जाने का कारण बता सकती, जो एक छोटी लहर के समान ही मेरे thou-rV को अपनी सारी vknzrk से छूकर अनन्त tyjkf'k में विलीन हो गया है।

गंगा पार झूँसी के खँडहर और उसके आस-पास के गाँवों के प्रति मेरा जैसा अकारण आकर्षण रहा है, उसे देखकर ही संभवतः लोग जन्म-जन्मांतर के संबंध का व्यंग्य करने लगे हैं। है भी तो आश्चर्य की बात! जिस अवकाश के समय को लोग इष्ट-मित्रों से मिलने, उत्सवों में सम्मिलित होने तथा अन्य आमोद-प्रमोद के लिए सुरक्षित रखते हैं, उसी को मैं इस खँडहर और उसके {kr-fo{kr चरणों पर पछाड़ें खाती हुई HkkxhjFkh के तट पर काट ही नहीं, सुख से काट देती हूँ।

दूर-पास बसे हुए गुड़ियों के बड़े-बड़े ?kjkSnks के समान लगने वाले कुछ लिपे-पुते, कुछ th.kZ-'kh.kZ घरों से स्त्रियों का झुण्ड पीतल-ताँबे के चमचमाते मिट्टी के नये लाल और पुराने Hkwnjx घड़े लेकर गंगाजल भरने आती है, उसे भी मैं पहचान गई हूँ। उनमें कोई बूटेदार लाल, कोई कुछ सफेद और कोई मैल और सूत में v}r स्थापित करने वाली, कोई कुछ नई और कोई छेदों से चलनी बनी हुई धोती पहने रहती हैं। किसी की मोम लगी पाटियों के बीच में एक अंगुल चौड़ी सिन्दूर-रेखा अस्त होते हुए सूर्य की किरणों में चमकती रहती है और किसी की कड़वे तेल से भी अपरिचित रूखी जटा बनी हुई छोटी-छोटी लटें मुख को घेर कर उसकी उदासी को और अधिक केंद्रित कर देती हैं। किसी की साँवली गोल कलाई पर शहर की कच्ची नगदार चूड़ियों के नग रह-रहकर हीरे-से चमक जाते हैं और किसी के दुर्बल काले igqap पर लाख की पीली मैली चूड़ियाँ काले पत्थर पर मटमैले चन्दन की लकीरें जान पड़ती हैं। कोई अपने fxyV के कड़े-युक्त हाथ घड़े की ओट में छिपाने का प्रयत्न-सा करती रहती है और कोई चाँदी के iNyh-ddu की झनकार के साथ ही बात करती है। किसी के कान में लाख की पैसे वाली तरकी धोती से कभी-कभी झाँक भर लेती है और किसी की ढारें लंबी जंजीर से गला और गाल एक करती रहती है। किसी के गुदना गुदे गेहुँए पैरों में चाँदी के कड़े सुडौलता की परिधि-सी लगते हैं और किसी की फैली उँगलियों और सफेद एड़ियों के साथ मिली हुई स्याही jkx और काँसे के कड़ों को लोहे की साफ की हुई बेड़ियाँ बना देती है।

वे सब पहले हाथ-मुँह धोती हैं, फिर पानी में कुछ घुसकर घड़ा भर लेती हैं- तब घड़ा किनारे रख, सिर पर bMqjh ठीक करती हुई मेरी ओर देखकर कभी मलिन, कभी उजली, कभी दुःख की व्यथा-भरी, कभी सुख की कथा-भरी मुस्कान से मुस्करा देती हैं। अपने-मेरे बीच का अंतर उन्हें ज्ञात है, तभी कदाचित् वे मुस्कान के सेतु से उसका वार-पार जोड़ना नहीं भूलतीं।

ग्वालों के बालक अपनी चरती हुई गाय-भैंसों में से किसी को उस ओर बहकते देखकर ही ydqVh लेकर दौड़ पड़ते, xMfj;ksa के बच्चे अपने झुंड की एक भी बकरी या भेड़ को उस ओर बढ़ते देखकर कान पकड़कर खींच ले जाते हैं और व्यर्थ दिन भर गिल्ली-डंडा खेलनेवाले निठल्ले लड़के भी बीच-बीच में नजर बचाकर मेरा रुख देखना नहीं भूलते।

उस पार शहर में दूध बेचने जाते या लौटते हुए ग्वाले, किले में काम करने जाते या घर आते हुए मजदूर, नाव बाँधते या खोलते हुए मल्लाह, कभी-कभी 'चुनरी त रंगाउब लाल मजीठी हो' गाते-गाते मुझ पर दृष्टि पड़ते ही अचकचा कर चुप हो जाते हैं। कुछ विशेष सभ्य होने का गर्व करनेवालों से मुझे एक सलज्ज नमस्कार भी प्राप्त हो जाता है।

कह नहीं सकती, कब और कैसे मुझे उन बालकों को कुछ सिखाने का ध्यान आया; पर जब बिना dk;dkfj.kh के निर्वाचन के, बिना inkf/kdkfj;k के चुनाव के, बिना भवन के, बिना चंदे की अपील के और सारांश यह है कि बिना किसी चिर-परिचित समारोह के, मेरे विद्यार्थी पीपल के पेड़ की घनी छाया में मेरे चारों ओर एकत्र हो गए, तब मैं बड़ी कठिनाई से गुरु के उपयुक्त गंभीरता का भार वहन कर सकी।

और वे ftKkl कैसे थे सो कैसे बताऊँ! कुछ कानों में बालियाँ और हाथों में कड़े पहने, धुले कुरते और ऊँची धोती में नगर और ग्राम का सम्मिश्रण जान पड़ते थे, कुछ अपने बड़े भाई का पाँव तक लंबा कुरता पहने खेत में डराने के लिए खड़े किए हुए नकली आदमी का स्मरण दिलाते थे, कुछ उभरी पसलियों, बड़े पेट और टेढ़ी दुर्बल टाँगों के कारण अनुमान से ही मनुष्य-संतान की परिभाषा में आ सकते थे और कुछ अपने दुर्बल, रूखे और मलिन मुखों की करुण सौम्यता और fu"iHk पीली आँखों में संसार भर की उपेक्षा बटोर बैठे थे; पर घीसा उनमें अकेला ही रहा और आज भी मेरी स्मृति में अकेला ही आता है।

वह xk/kyh मुझे अब तक नहीं भूली। संध्या के लाल सुनहली आभा वाले उड़ते हुए ndy पर रात्रि ने मानो छिपकर vtu की मूठ चला दी थी। मेरा नाव वाला कुछ चिंतित-सा लहरों की ओर देख रहा था; बूढ़ी भक्तिन मेरी किताबें, कागज-कलम आदि सँभाल कर नाव पर रखकर बढ़ते अंधकार पर खिजलाकर बुदबुदा रही थी या मुझे कुछ सनकी बनाने वाले विधाता पर, यह समझना कठिन था। बेचारी मेरे साथ रहते-रहते दस लंबे वर्ष काट आई है, नौकरानी से अपने-आपको एक प्रकार की vfHkHkkfodk मानने लगी है; परंतु मेरी सनक का दुष्परिणाम सहने के अतिरिक्त उसे क्या मिला है? सहसा ममता से मेरा मन भर आया; परंतु नाव की ओर बढ़ते हुए मेरे पैर, फैलते हुए अंधकार में से एक स्त्री-मूर्ति को अपनी ओर आता देख ठिठक रहे। साँवले, कुछ लंबे-से मुखड़े में पतले स्याह ओठ कुछ अधिक स्पष्ट हो रहे थे। आँखें छोटी पर व्यथा से आर्द्र थीं। मलिन, बिना किनारी की गाढ़े की धोती ने उसके lydkjfgr अंगों को भलीभाँति ढक लिया था; परंतु तब भी शरीर की सुडौलता का आभास मिल रहा था। कंधे पर हाथ रखकर वह जिस दुर्बल अर्धनग्न बालक को अपने पैरों से चिपकाए हुए थी, उसे मैंने संध्या के >ViV में ठीक से नहीं देखा।

स्त्री ने रुक-रुककर कुछ शब्दों और कुछ संकेत में जो कहा, उससे मैं केवल यह समझ सकी कि उसके पति नहीं है, दूसरों के घर लीपने-पोतने का काम करने वह चली जाती है और उसका यह अकेला लड़का ऐसे ही घूमता रहता है। मैं इसे भी और बच्चों के साथ बैठने दिया करूँ, तो यह कुछ तो सीख सके।

दूसरे इतवार को मैंने उसे सबसे पीछे अकेले एक ओर दुबक कर बैठे हुए देखा। पक्का रंग, पर गठन में विशेष सुडौल, मलिन मुख जिसमें दो पीली, पर सचेत आँखें जड़ी-सी जान पड़ती थीं। कस कर बंद किए हुए पतले ओठों की दृढ़ता और सिर पर खड़े हुए छोटे-छेटे रूखे बालों की उग्रता उसके मुख की संकोचभरी कोमलता से विद्रोह कर रही थी। उभरी हड्डियों वाली गर्दन को सँभाले हुए झुके कंधों से रक्तहीन मटमैली हथेलियों और टेढ़े-मेढ़े कटे हुए नाखूनों युक्त हाथों वाली पतली बाँहें ऐसी झूलती थीं, जैसे ड्रामा में विष्णु बनने वाले की दो नकली भुजाएँ। निरंतर दौड़ते रहने के कारण उस लचीले शरीर में दुबले पैर ही विशेष पुष्ट जान पड़ते थे।-बस ऐसा ही था वह, न नाम में कवित्व की गुंजाइश, न शरीर में।

पर उसकी सचेत आँखों में न जाने कौन-सी जिज्ञासा भरी थी। वे निरंतर घड़ी की तरह खुली मेरे मुख पर टिकी ही रहती थीं। मानो मेरी सारी विद्या-बुद्धि को सीख लेना ही उनका ध्येय था।

लड़के उससे कुछ खिंचे-खिंचे से रहते थे। इसलिए नहीं कि वह कोरी था, वरन् इसलिए कि किसी की माँ, किसी की नानी, किसी की बुआ आदि ने घीसा से दूर रहने की नितांत आवश्यकता उन्हें कान पकड-पकड़ कर समझा दी थी।- यह भी उन्होंने बताया और बताया घीसा के सबसे अधिक कुरूप नाम का रहस्य। बाप तो जनम से पहले ही नहीं रहा। घर में

कोई देखने-भालने वाला न होने के कारण माँ उसे बंदरिया के बच्चे के समान चिपकाये फिरती थी। उसे एक ओर लिटाकर जब वह मजदूरी के काम में लग जाती थी, तब पेट के बल घसीट-घसीट कर बालक संसार के प्रथम अनुभव के साथ-साथ इस नाम की योग्यता भी प्राप्त करता जाता था।

फिर धीरे-धीरे अन्य स्त्रियाँ भी मुझे आते-जाते रोककर अनेक प्रकार की भाव-भंगिमा के साथ एक विचित्र सांकेतिक भाषा में घीसा की जन्म-जात अयोग्यता का परिचय देने लगीं। क्रमशः मैंने उसके नाम के अतिरिक्त और कुछ भी जाना।

उसका बाप था तो कोरी, पर बड़ा ही अभिमानी और भला आदमी बनने का इच्छुक। Mfy;k आदि बुनने का काम छोड़ कर वह थोड़ी बढ़ईगीरी सीख आया और केवल इतना ही नहीं, एक दिन चुपचाप दूसरे गाँव से युवती वधू लाकर उसेने अपने गाँव की सब सजातीय सुंदरी बालिकाओं को उपेक्षित और उनके योग्य माता-पिता को निराश कर डाला। मनुष्य इतना अन्याय सह सकता है; परंतु ऐसे अवसर पर भगवान् की vlfg".kqrk प्रसिद्ध ही है। इसी से जब गाँव के चौखट-किवाड़ बनाकर और ठाकुरों के घरों में सफेदी करके उसने कुछ ठाट-बाट से रहना आरंभ किया, तब अचानक हैजे के बहाने वह वहाँ बुला लिया गया, जहाँ न जाने का बहाना न उसकी बुद्धि सोच सकी, न अभिमान। पर स्त्री भी कम गर्वीली न निकली। गाँव के अनेक विधुर और अविवाहित कोरियों ने केवल उदारवश ही उसकी नैया पार लगाने का उत्तरदायित्व लेना चाहा; परंतु उसने केवल कोरा उत्तर नही नहीं दिया, iR;qr उसे नमक-मिर्च लगाकर rhr भी कर दिया। कहा- 'हम सिंघ के egjk: होइके का सियारन के जाब।' फिर बिना स्वर-ताल के आँसू गिराकर, बाल खोलकर, चूड़ियाँ फोड़कर और बिना किनारे की धोती पहनकर जब उसने बड़े घर की विधवा का स्वाँग भरना आरंभ किया, तब तो सारा समाज {kkHk के समुद्र में डूबने-उतराने लगा। उस पर घीसा बाप के मरने के बाद हुआ है। हुआ तो वास्तव में छः महीने बाद, परंतु उस समय के संबंध में क्या कहा जाय, जिसका कभी एक क्षण वर्ष-सा बीतता है कभी एक वर्ष एक क्षण हो जाता है। इसी से यदि छः मास का समय रबर की तरह खिंचकर एक साल की अवधि तक पहुच गया, तो इसमें गाँव वालों का क्या दोष!

यह कथा अनेक {kidke; विस्तार के साथ सुनाई तो गई थी मेरा मन फेरने के लिए और मन फिरा भी, परंतु किसी सनातन नियम से कथावाचक की ओर न फिरकर कथा के नायकों की ओर फिर गया और इस प्रकार घीसा मेरे और अधिक निकट आ गया। वह अपना जीवन संबंधी viokn कदाचित् पूरा नहीं समझ पाया था; परंतु अधूरे का भी प्रभाव उस पर कम न था, क्योंकि वह सबको अपनी छाया से इस प्रकार बचाता रहता था, मानो उसे कोई छूत की बीमारी हो।

पढ़ने, उसे सबसे पहले समझने, उसे व्यवहार के समय स्मरण रखने, पुस्तक में एक भी धब्बा न लगाने, स्लेट को चमचमाती रखने ओर अपने छोटे-से-छोटे काम का उत्तरदायित्व बड़ी गंभीरता से निभाने में उसके समान कोई चतुर न था। इसी से कभी-कभी मन चाहता था कि उसकी माँ से उसे माँग ले जाऊँ और अपने पास रख कर उसके विकास की उचित व्यवस्था कर दूँ-परंतु उस उपेक्षिता, पर ekfuuh विधवा का वही एक सहारा था। वह अपने पति का स्थान छोड़ने पर प्रस्तुत न होगी, यह भी मेरा मन जानता था और उस बालक के बिना उसकी जीवन कितना दुर्वह हो सकता है, यह भी मुझसे छिपा न था। फिर नौ साल के कर्त्तव्यपरायण घीसा की गुरु-भक्ति देखकर उसकी मातृ-भक्ति के संबंध में कुछ संदेह करने का स्थान ही नहीं रह जाता था और इस तरह घीसा वहीं और उन्हीं कठोर परिस्थितियों में रहा, जहाँ क्रूरतम नियति ने केवल अपने मनोविनोद के लिए ही उसे रख दिया था।

शनिश्चर के दिन ही वह अपने छोटे दुर्बल हाथों से पीपल की छाया को गोबर-मिट्‌टी से पीला चिकनापन दे आता था। फिर इतवार को माँ के मज़दूरी पर जाते ही एक मैले, फटे कपड़े में बँधी मोटी रोटी और कुछ नमक या थोड़ा चबेना और एक डली गुड़ बगल में दबाकर, पीपल की छाया को एकबार फिर झाड़ने-बुहारने के पश्चात् वह गंगा के तट पर आ बैठता और अपनी पीली सतेज आँखों पर क्षीण साँवले हाथ की छाया कर दूर-दूर तक दृष्टि को दौड़ाता रहता। जैसे ही उसे मेरी नीली सफेद नाव की झलक दिखाई पड़ती, वैसे ही वह अपनी पतली टाँगों पर तीर के समान उड़ता और बिना नाम लिए हुए ही साथियों को सुनाने के लिए गुरु साहब कहता हुआ फिर पेड़ के नीचे पहुँच जाता, जहाँ न जाने कितनी बार दुहराये-तिहराये हुए

कार्यक्रम की एक अंतिम vkofŸk आवश्यक हो उठती। पेड़ की नीची डाल पर रखी हुई मेरी 'khryikVh उतार कर बार-बार झाड़ पोंछकर बिछाई जाती, कभी काम न आने वाली सूखी स्याही से काली कच्चे काँच की दावात, टूटे निब और उखड़े हुए रंगवाले भूरे, हरे कलम के साथ पेड़ के dkVj से निकालकर यथास्थान रख दी जाती और तब इस विचित्र पाठशाला का विचित्र मंत्री और निराला विद्यार्थी कुछ आगे बढ़कर मेरे सप्रणाम स्वागत के लिए प्रस्तुत हो जाता।

महीने में चार दिन ही मैं वहाँ पहुँच सकती थी और कभी-कभी काम की अधिकता से एक-आध छुट्टी का दिन ओर भी निकल जाता था; पर उस थोड़े से समय और इने-गिने दिनों में भी मुझे उस बालक के हृदय का जैसा परिचय मिला, वह चित्र के एल्बम के समान निरन्तर नवीन-सा लगता है।

मुझे आज भी वह दिन नहीं भूलता जब मैंने बिना कपड़ों का प्रबंध किए हुए ही इन बेचारों को सफाई का महत्त्व समझाते-समझाते थका डालने की मूर्खता की। दूसरे इतवार को सब जैसे-कै-तैसे ही सामने थे– केवल कुछ गंगाजी में मुँह इस तरह धो आए थे कि मैल अनेक रेखाओं में विभक्त हो गया था, कुछ के हाथ-पाँव ऐसे घिसे थे कि शेष मलिन शरीर के साथ वे अलग जोड़े हुए से लगते थे और कुछ 'न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी' की कहावत चरितार्थ करने के लिए कीट-से मैले फटे कुरते घर ही छोड़कर ऐसे vfLFkiitje; रूप में आ उपस्थित हुए थे, जिसमें उनके प्राण, 'रहने का आश्चर्य है, गए अचंभा कौन' की घोषणा करते जान पड़ते थे; पर घीसा गायब था। पूछने पर लड़के काना-फूसी करने को या एक साथ सभी उसकी अनुपस्थिति का कारण सुनाने को आतुर होने लगे। एक-एक शब्द जोड़-तोड़कर समझना पड़ा कि घीसा माँ से कपड़ा धोने के साबुन के लिए तभी से कह रहा था–माँ को मजदूरी के पैसे मिले नहीं और दुकानदार ने नाज लेकर साबुन दिया नहीं। कल रात को माँ को पैसे मिले और आज सवेरे वह सब काम छोड़ कर पहले साबुन लेने गई। अभी लौटी है, अतः घीसा कपड़े धो रहा है, क्योंकि गुरु साहब ने कहा था कि नहा-धोकर साफ कपड़े पहन कर आना। और अभागे के पास कपड़े ही क्या थे। किसी दयावती का दिया हुआ एक पुराना कुरता, जिसकी एक आस्तीन आधी थी और एक अँगोछा-जैसा फटा टुकड़ा। जब घीसा नहाकर गीला अँगोछा लपेटे और आधा भीगा कुरता पहने अपराधी के समान मेरे सामने आ खड़ा हुआ, तब आँखें ही नहीं मेरा रोम-रोम गीला हो गया। उस समय समझ में आया कि nzks.kkpk;Z ने अपने Hkhy f'k"; से अँगूठा कैसे कटवा दिया था।

एक दिन न जाने क्या सोच कर मैं उन विद्यार्थियों के लिए 5-6 सेर जलेबियाँ ले गई; पर कुछ तोलनेवाले की सफाई से, कुछ तुलवाने वाले की समझदारी से और कुछ वहाँ की छीना-झपटी के कारण प्रत्येक को पाँच से अधिक न मिल सकीं। एक कहता था– मुझे एक कम मिली; दूसरे ने बताया– मेरी अमुक ने छीन ली। तीसरे को घर में सोते हुए छोटे भाई के लिए चाहिए, चौथे को किसी और की याद आ गई। पर इस कोलाहल में अपने हिस्से की जलेबियाँ लेकर घीसा कहाँ खिसक गया, यह कोई न जान सका। एक नटखट अपने साथी से कह रहा था-'सार एक ठो पिलवा पाले है, ओही का देय बरे गा होई' पर मेरी दृष्टि से संकुचित होकर चुप रह गया और तब तक घीसा लौटा ही। उसका सब हिसाब ठीक था-जलखई वाले छन्ने में दो जलेबियाँ लपेट कर वह माई के लिए छप्पर में खोंस आया है, एक उसने अपने पाले हुए, बिना माँ के कुत्ते के पिल्ले को खिला दी और दो स्वयं खा लीं। 'और चाहिए' पूछने पर उसकी संकोच भरी आँखें झुक गई-ओठ कुछ हिले। पता चला कि पिल्ले को उससे कम मिली है। दें तो गुरु साहब पिल्ले को ही एक और दे दें।

और होली के पहले की एक घटना तो मेरी स्मृति में ऐस गहरे रंगों से अंकित है, जिसका धुल सकना सहज नहीं। उन दिनों हिंदू-मुस्लिम oeuL; धीरे-धीरे बढ़ रहा था और किसी दिन उसके चरम सीमा तक पहुँच जाने की पूर्ण संभावना थी। घीसा दो सप्ताह से ज्वर में पड़ा था- दवा मैं भिजवा देती थी; परंतु देखभाल का कोई ठीक प्रबंध न हो पाता था। दो-चार दिन उसकी माँ स्वयं बैठी रही। फिर एक अंधी बुढ़िया को बैठाकर काम पर जाने लगी।

इतवार की साँझ को मैं बच्चों को विदा दे, घीसा को देखने चली, परंतु पीपल के पचास पग दूर पहुँचते-पहुँचते उसी को डगमगाते पैरों से गिरते-पड़ते अपनी ओर आते देख, मेरा मन उद्विग्न हो उठा। वह तो इधर पन्द्रह दिन से उठा ही नहीं था। अतः मुझे उसके lfUuikrxLr

होने का ही संदेह हुआ। उसके सूखे शरीर में तरल विद्युत-सी दौड़ रही थी, आँखें और भी सतेज और मुख ऐसा था, जैसी हल्की आँच में धीरे-धीरे लाल होने वाला लोहे का टुकड़ा।

पर उसके okr-xLr होने से भी अधिक चिंताजनक उसकी समझदारी की कहानी निकली। वह प्यास से जाग गया था; पर पानी पास मिला नहीं और मनियाँ की अँधी vkth से माँगना ठीक न समझकर वह चुपचाप कष्ट सहने लगा। इतने में मुल्लू के कक्का ने पार से लौटकर दरवाजे से ही अंधी को बताया कि शहर में दंगा हो रहा है और तब उसे गुरु साहब का ध्यान आया। मुल्लू के कक्का के हटते ही वह ऐसे हौले-हौले उठा कि बुढ़िया को पता ही न चला और कभी दीवार, कभी पेड़ का सहारा लेता-लेता इस ओर भागा। अब वह गुरु साहब के गोड़ धर कर यहीं पड़ा रहेगा; पर पार किसी तरह भी न जाने देगा।

तब मेरी समस्या और भी जटिल हो गई। पार तो मुझे पहुँचना था ही; पर साथ ही बीमार घीसा को ऐसे समझाकर, जिससे उसकी स्थिति और गंभीर न हो जाए। पर सदा के संकोची, नम्र और आज्ञाकारी घीसा का इस दृढ़ और हठी बालक में पता ही न चलता था। उसने पारसाल ऐसे ही अवसर पर grkgr दो मल्लाह देखे थे और कदाचित् इस समय उसका रोग से विकृत मस्तिष्क उन चित्रों में गहरा रंग भर कर मेरी उलझन को और उलझा रहा था। पर उसे समझाने का प्रयत्न करते-करते अचानक ही मैंने एक ऐसा तार छू दिया, जिसका स्वर मेरे लिए भी नया था। यह सुनते ही कि मेरे पास रेल में बैठकर दूर-दूर से आए हुए बहुत से विद्यार्थी हैं जो अपनी माँ के पास साल भर में एक बार ही पहुँच पाते हैं और जो मेरे न जाने से अकेले घबरा जाएँगे, घीसा का सारा हठ, सारा विरोध ऐसे बह गया जैसे वह कभी था ही नहीं।— और तब घीसा के समान तर्क की क्षमता किसमें थी! जो साँझ को अपनी माई के पास नहीं जा सकते, उनके पास गुरु साहब को जाना ही चाहिए। घीसा रोकेगा, तो उसके भगवान् जी गुस्सा हो जाएँगे, क्योंकि वे ही तो घीसा को अकेला बेकार घूमता देखकर गुरु साहब को भेज देते हैं, आदि-आदि उसके तर्कों का स्मरण कर आज भी मन भर आता है। परंतु उस दिन मुझे आपत्ति से बचाने के लिए अपने बुखार से जलते हुए अशक्त शरीर को घसीट लाने वाले घीसा को जब उसकी टूटी खटिया पर लिटा कर मैं लौटी, तब मेरे मन में कौतूहल की मात्रा ही अधिक थी।

इसके उपरांत घीसा अच्छा हो गया और धूल और सूखी पत्तियों को बाँध कर उन्मत्त के समान घूमने वाली गर्मी की हवा से उसका रोज संग्राम छिड़ने लगा—झाड़ते-झाड़ते ही वह पाठशाला धूल-धूसरित होकर भूरे, पीले और कुछ हरे पत्तों की चादर में छिप कर तथा ddky'k"kh शाखाओं में उलझते, सूखे पत्तों को पुकारते वायु की संतप्त सरसर से मुखरित होकर उस भ्रान्त बालक को चिढ़ाने लगती। तब मैंने तीसरे पहर से संध्या समय तक वहाँ रहने का निश्चय किया; परंतु पता चला घीसा किसकिसाती आँखों को मलता और पुस्तक से बार-बार धूल झाड़ता हुआ दिन भर वहीं पेड़ के नीचे बैठा रहता है, मानो वह किसी प्राचीन युग का rikorh vukxfjd cgepkjh हो, जिसकी तपस्या भंग के लिए ही लू के झोंके आते हैं।

इस प्रकार चलते-चलते समय ने जब दाईं छूने के लिए दौड़े हुए बालक के समान झपट कर उस दिन पर उँगली धर दी, जब मुझे उन लोगों को छोड़ जाना था, तब तो मेरा मन बहुत ही अस्थिर हो उठा। कुछ बालक उदास थे और कुछ खेलने की छुट्टी से प्रसन्न! कुछ जानना चाहते थे कि छुट्टियों के दिन चूने की fVifd;k¡ रखकर गिने जाएँ, या कोयले की लकीरें खींचकर। कुछ के सामने बरसात में चूते हुए घर में आठ पृष्ठ की पुस्तक बचा रखने का प्रश्न था और कुछ कागजों पर चूहों के आक्रमण की ही समस्या का समाधान चाहते थे। ऐसे महत्त्वपूर्ण कोलाहल में घीसा न जाने कैसे अपना रहना अनावश्यक समझ लेता था, अतः सदा के समान आज भी मैं उसे न खोज पाई। जब मैं कुछ चिंतित-सी वहाँ से चली, तब मन भारी-भारी हो रहा था, आँखों में कोहरा-सा घिर-घिर आता था। वास्तव में उन दिनों डाक्टरों को मेरे पेट में फोड़ा होने का संदेह हो रहा था— ऑपरेशन की संभावना थी। कब लौटूँगी या नहीं लौटूँगी, यही सोचते-सोचते मैंने फिर कर चारों ओर जो आर्द्र दृष्टि डाली, वह कुछ समय तक उन परिचित स्थानों को भेंट कर वहीं उलझ रही ।

पृथ्वी के mPNokl के समान उठते हुए धुँधलेपन में वे कच्चे पर आकंठ मग्न हो गए थे-केवल फूस के मटमैले और खपरैल के कत्थई और काले छप्पर, वर्षा में बढ़ी गंगा के मिट्टी जैसे जल में पुरानी नावों के समान जान पड़ते थे। dNkj की बालू में दूर तक फैले तरबूज और खरबूजे

के खेत अपनी सिर की और फूस के मुट्ठियों, टट्टियों और रखवाली के लिए बनी i.kdfV;k के कारण जल में बसे किसी vkfne द्वीप का स्मरण दिलाते थे। उनमें एक-दो दीए जल चुके थे, तब मैंने दूर पर एक छोटा-सा काला धब्बा आगे बढ़ता देखा। वह घीसा ही होगा। यह मैंने दूर से ही जान लिया। आज गुरु साहब को उसे विदा देना है, यह उसका नन्हा हृदय अपनी पूरी संवेदना-शक्ति से जान रहा था, इसमें संदेह नहीं था। परंतु उस उपेक्षित बालक के मन में मेरे लिए कितनी सरल ममता और मेरे विछोह की कितनी गहरी व्यथा हो सकती है, यह जानना मेरे लिए शेष था।

निकट आने पर देखा कि उस धूमिल गोधूली में बादामी कागज़ पर काले चित्र के समान लगने वाला नंगे बदन घीसा एक बड़ा तरबूज दोनों हाथों में सम्हाले था, जिसमें बीच के कुछ कटे भाग में से भीतर की b'kr-y{; ललाई चारों ओर के गहरे हरेपन में कुछ बंद गुलाबी फूल-जैसी जान पड़ती थी।

घीसा के पास न पैसा था न खेत– तब क्या वह इसे चुरा लाया है! मन का संदेह बाहर आया ही और तब मैंने जाना कि जीवन का खरा सोना छिपाने के लिए उस मलिन शरीर को बनाने वाला ईश्वर उस बूढ़े आदमी से भिन्न नहीं, जो अपनी सोने की मोहर को कच्ची मिट्टी की दीवार में रखकर निश्चिंत हो जाता है। घीसा गुरु साहब से झूठ बोलना भगवान जी से झूठ बोलना समझता है। यह तरबूज कई दिन पहले देख आया था। माई के लौटने में जाने क्यों देर हो गई, तब उसे अकेले ही खेत पर जाना पड़ा। वहाँ खेत वाले का लड़का था, जिसकी उसके नए कुरते पर बहुत दिन से नज़र थी। प्रायः सुना-सुना कर कहता था कि जिनकी भूख झूठी पत्तल से बुझ सकती है, उनके लिए परोसा लगाने वाले पागल होते हैं। उसने कहा– पैसा नहीं है, तो कुरता दे जाओ। और घीसा आज तरबूज न लेता, तो कल उसका क्या करता। इससे कुरता दे आया; पर गुरु साहब को चिंता करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि गर्मी में वह कुरता पहनता ही नहीं और आने-जाने के लिए पुराना ठीक रहेगा। तरबूज सफेद न हो, इसलिए कटवाना पड़ा–मीठा है या नहीं यह देखने के लिए, उँगली से कुछ निकाल भी लेना पड़ा।

गुरु साहब न लें, तो घीसा रात भर रोएगा-छुट्टी भर रोएगा। ले जायें तो वह रोज नहा-धोकर पेड़ के नीचे पढ़ा हुआ पाठ दोहराता रहेगा और छुट्टी के बाद पूरी किताब पट्टी पर लिखकर दिखा सकेगा।

और तब अपने स्नेह में प्रगल्भ उस बालक के सिर पर हाथ रखकर मैं Hkkokfrjd से ही निश्चय हो रही। उस तट पर किसी गुरु को किसी शिष्य से कभी ऐसी दक्षिणा मिली होगी, ऐसा मुझे विश्वास नहीं; परंतु उस nf{k.kk के सामने संसार में अब तक सारे आदान-प्रदान फीके जान पड़े।

फिर घीसा के सुख का विशेष प्रबंध कर मैं बाहर चली गई और लौटते-लौटते कई महीने लग गए। इस बीच में उसका कोई समाचार न मिलना ही संभव था। जब फिर उस ओर जाने का मुझे अवकाश मिल सका, तब घीसा को उसके भगवान जी ने सदा के लिए पढ़ने से अवकाश दे दिया था– आज वह कहानी दोहराने की मुझमें शक्ति नहीं है; पर संभव है आज के कल, कल के कुछ दिन, दिनों के मास और मास के वर्ष बन जाने पर मैं nk'kfud के समान धीर-भाव से उस छोटे जीवन का उपेक्षित अंत बता सकूँगी। अभी मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है कि मैं अन्य मलिन मुखों में उसकी छाया ढूँढ़ती रहूँ।

37-3 j[kkfp= dk lkj

'घीसा' महादेवी वर्मा द्वारा लिखित अत्यंत मर्मस्पर्शी रेखाचित्र है। महादेवी गंगा पार झूँसी के खंडहर और उसके आसपास के गाँवों के प्रति अपने आकर्षण के कारण वहां जब भी समय मिलता था, घूमने जाया करती थी। उन गाँवों में घूमते हुए उनका ध्यान इस बात की ओर गया कि वहां के निर्धन बच्चों को पढ़ाना चाहिए। सप्ताह में एक दिन वह गंगा पार बच्चों को पढ़ाने लगीं। उन्हीं बच्चों में घीसा भी था। घीसा एक विधवा स्त्री का बेटा था जिसका पति घीसा के पैदा होने से छह महीने पहले ही हैजे से मर गया था। घीसा की मां लोगों के घर पर लीपने-पोतने का काम करके अपने और अपने बेटे का गुजारा करती थी। घीसा का नाम घीसा इसलिए पड़ा कि पिता के न होने और घर में कोई देखभाल करने वाला न होने के कारण घीसा

की मां काम पर घीसा को भी साथ ले जाती थी और वहां वह जमीन पर पेट के बल घसिट-घसिट कर अपनी मां के आसपास घूमता रहता था। इसीसे उसका नाम घीसा पड़ गया था। अपने पिता की मृत्यु के छह महीने बाद पैदा होने के कारण और विधवा होने के बावजूद दुबारा शादी न करने के कारण घीसा की मां और घीसा के बारे में तरह-तरह की बातें कही जाती थीं जिसका आशय यह था कि महादेवी वर्मा को घीसा जैसे बच्चे को अपनी पाठशाला में नहीं पढ़ाना चाहिए। गाँव वालों के विरोध के बावजूद घीसा महादेवी वर्मा की पाठशाला में पढ़ने लगा। अपने बच्चों को पढ़ाने की इच्छा घीसा की मां में थी और पढ़ने की इच्छा घीसा में भी थी। महादेवी जी पढ़ाने के लिए महीने में चार दिन ही मुश्किल से निकाल पाती थी। लेकिन इन चार दिनों में ही पढ़ाई के प्रति घीसा के लगाव, उसकी सादगी और अपने गुरु के प्रति उसकी भक्ति को महादेवी जी ने पहचान लिया था। गुरु द्वारा कही गयी प्रत्येक बात उसके लिए ऐसा आदेश थी जिसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता था। महादेवी वर्मा इस रेखाचित्र में ऐसी कई घटनाओं का उल्लेख करती हैं जिनसे घीसा के चरित्र के उज्ज्वल पक्ष उभरकर सामने आते हैं। जब पाठशाला से अवकाश लेकर महादेवी वर्मा कुछ महीने के लिए जा रही होती है तो घीसा उन्हें भेंट देने के लिए तरबूज लेकर आता है और उस तरबूज को हासिल करने के लिए वह अपना नया कुर्ता तक दे देता है, यह जानकर महादेवी द्रवित हो जाती है। लेकिन जब महादेवी कुछ महीनों बाद लौटती है तो उन्हें मालूम पड़ता है कि घीसा अब इस दुनिया में नहीं है।

37-4 lanHkZ lfgr O;k[;k

महादेवी वर्मा द्वारा लिखित 'घीसा' नामक रेखाचित्र का आपने अध्ययन कर लिया है। अब हम इसके कुछ महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या करेंगे। महादेवी जी के इस रेखाचित्र की वैसे तो एक-एक पंक्ति महत्त्वपूर्ण है लेकिन फिर भी कुछ अंश विशेष महत्त्व के हैं।

1) *वर्तमान की कौन-सी अज्ञात प्रेरणा हमारे अतीत की किसी भूली हुई कथा को संपूर्ण मार्मिकता के साथ दोहरा जाती है, यह जान लेना सहज होता तो मैं भी आज गाँव के उस मलिन सहमे नन्हे-से विद्यार्थी की सहसा याद आ जाने का कारण बता सकती, जो एक छोटी लहर के समान ही मेरे जीवन-तट को अपनी सारी आर्द्रता से छूकर अनन्त जलराशि में विलीन हो गया है।*

lanHkZ% उपर्युक्त पंक्तियां महादेवी वर्मा के रेखाचित्र 'घीसा' में से लिया गया है। यह रेखाचित्र उक्त पंक्तियों के साथ ही आरंभ होता है और जिस घीसा के बारे में रेखाचित्र में वर्णन किया गया है उस के बारे में बताने से पहले महादेवी वर्मा लिखने की अपनी प्रेरणा का कारण उक्त पंक्तियों में बताती हैं।

O;k[;k% महादेवी वर्मा को अचानक गाँव के एक नन्हे से विद्यार्थी की याद आ जाती है जो गंगा पार झूंसी के खंडहरों के पास के एक छोटे से गाँव का रहने वाला था और जिससे उनकी मुलाकात उस पाठशाला में हुई थी जो महादेवी वर्मा ने उस गाँव के एक पेड़ के नीचे शुरू की थी। इस घीसा नामक विद्यार्थी की याद उन्हें अचानक कैसे आ गयी इस बात का कोई ठोस कारण समझ न पाने के कारण वह उसकी याद को वर्तमान की अज्ञात प्रेरणा मानती है। महादेवी जी घीसा की याद 'मलिन सहमे नन्हे-से विद्यार्थी' के रूप में करती है। मलिन इसलिए कि वह गरीब है, सहमा इसलिए कि आज तक वह किसी पाठशाला में पढ़ने के लिए नहीं गया है इसलिए डरा हुआ है और उम्र में तो बहुत छोटा है ही। लेकिन उसकी स्मृति मार्मिकता से भरी है जिसे हम रेखाचित्र पढ़ने से जान पाते हैं। उस नन्हे बच्चे को वह उस छोटी सी लहर की तरह याद करती है जो समुद्र से निकल कर किनारे से टकराकर हमेशा हमेशा के लिए समुद्र में ही विलीन हो जाती है। घीसा भी उनके लिए उस लहर की तरह है जिसने उनके जीवन रूपी तट को अपनी संवेदनशीलता से छूकर इस विश्व के महासमुद्र में विलीन हो गया है। इसी घीसा की कहानी वे रेखाचित्र के माध्यम से कहती हैं।

fo'ks"k%

1) महादेवी वर्मा लिखित 'घीसा' नामक यह रेखाचित्र एक विधवा मां और उसके बच्चे की मर्मस्पर्शी कथा है। घीसा नामक वह बालक कैसे थोड़े ही दिनों में अपने व्यवहार से लेखिका को प्रभावित कर पाता है इसका बहुत ही संवेदनशील चित्र इस रेखाचित्र में खींचा गया है।

2) महादेवी वर्मा कवयित्री हैं इसलिए गद्य में भी वह कविता जैसी भाषा लिखती हैं।

मसलन, उनका यह कथन 'जो एक छोटी लहर के समान ही मेरे जीवन-तट को अपनी सारी आर्द्रता से छूकर अनन्त जलराशि में विलीन हो गया है' काव्य की भाषा के नजदीक है।

3) भाषा तत्सम प्रधान है लेकिन उसमें निहित संवेदनशीलता गहरे रूप में प्रभावित करती है।

अब हम कुछ अंशों का यहां उद्धृत कर रहे हैं जिनकी व्याख्या इकाई पढ़कर स्वयं करने का प्रयास करें।

vH;kl

1) *कह नहीं सकती, कब और कैसे मुझे उन बालकों को कुछ सिखाने का ध्यान आया; पर जब बिना कार्यकारिणी के निर्वाचन के, बिना पदाधिकारियों के चुनाव के, बिना भवन के, बिना चंदे की अपील के और सारांश यह है कि बिना किसी चिर-परिचित समारोह के, मेरे विद्यार्थी पीपल के पेड़ की घनी छाया में मेरे चारों ओर एकत्र हो गए, तब मैं बड़ी कठिनाई से गुरु के उपयुक्त गंभीरता का भार वहन कर सकी।*

....

....

....

....

....

2) *तब अपने स्नेह में प्रगल्भ उस बालक के सिर पर हाथ रखकर मैं भावातिरेक से ही निश्चल हो रही। उस तट पर किसी गुरु को किसी शिष्य से कभी ऐसी दक्षिणा मिली होगी, ऐसा मुझे विश्वास नहीं; परंतु उस दक्षिणा के सामने संसार में अब तक सारे आदान-प्रदान फीके जान पड़े।*

....

....

....

....

....

....

37-5 vrroLrq

महादेवी वर्मा द्वारा लिखे गये रेखाचित्र उन साधारण लोगों की असाधारण कहानियां कहते हैं जो अभावों के बीच जीते हुए, तरह-तरह के कष्ट उठाते हुए और अत्यंत विपरीत परिस्थितियों के बीच भी अपने अंदर की मनुष्यता से एक ऐसे व्यक्तित्व के रूप में उभरते हैं जो महान से महान व्यक्तियों की महानता से कमतर नहीं है। 'घीसा' भी एक ऐसा ही रेखाचित्र है जिसका केंद्रीय चरित्र घीसा और उसकी विधवा मां का जीवन संघर्ष और उस संघर्ष के बीच भी अपने आत्मसम्मान और अपने मनुष्यत्व को बनाए रखने की उनकी कोशिश ही इस रेखाचित्र को अविस्मरणीय बना देती है।

इस रेखाचित्र के केंद्र में घीसा है और महादेवी ने उसी का अत्यंत मर्मस्पर्शी और संवेदनशील शब्दचित्र निर्मित किया है। यह है तो रेखाचित्र लेकिन इसे कहानी की तरह गढ़ा गया है। रेखाचित्र को तीन भागों में बांटकर देखा जा सकता है। रेखाचित्र का पहला भाग वह है जब महादेवी जी झूंसी के खंडहरों के पास के एक गाँव में एक पेड़ के नीचे गाँव के बच्चों को पढ़ाने का निर्णय लेती है और उस पाठशाला में पढ़ने के लिए घीसा अपनी मां के साथ आता है। घीसा एक पिछड़ी जाति (कोरी) की विधवा स्त्री का बेटा है और अपने पिता की मृत्यु के छह माह बाद पैदा होने के कारण उसकी मां के चरित्र को लेकर अनर्गल बातें गाँव में व्याप्त हैं। महादेवी पर भी यह दबाव है कि घीसा को स्कूल में भर्ती न किया जाए लेकिन गाँव वालों की परवाह किए बिना महादेवी घीसा को स्कूल में भर्ती कर लेती है।

रेखाचित्र का दूसरा भाग स्कूल में पढ़ते हुए घीसा के व्यवहार के बारे में है। इस भाग में घीसा

का पढ़ाई के प्रति समर्पण, गुरु के प्रति गहरा भक्तिभाव और उसकी निश्छल संवेदनशीलता उभरकर आती है। यहां महादेवी जी ने छोटे-छोटे लेकिन मार्मिक प्रसंगों के द्वारा घीसा के व्यक्तित्व को उभारने की कोशिश की है। घीसा की मां एक मामूली मजदूर स्त्री है जो दूसरों के घर पर लिपाई-पोताई का काम कर अपना और अपने बेटे का जीवन यापन करती है। घीसा द्वारा स्कूल के आंगन को साफ करना, साफ-सफाई का आदेश मिलने पर धुले हुए गीले कपड़े पहन के आ जाना। गुरु द्वारा जलेबी मिलने पर उसे अपनी मां और अपने कुत्ते के बीच बराबर बांटने की कोशिश करना, यह जानकर कि शहर में दंगा फैल गया है, अपनी बीमारी की अवस्था में भी गुरु जी को गाँव में ही रोकने की कोशिश करना और यह जानकर कि शहर में भी बहुत से बच्चे उनके आसरे पर है, उनको जाने देना आदि कई प्रसंगों के माध्यम से घीसा के जीवन के कई पहलू सामने आते हैं। उसकी विनम्रता, उसकी आज्ञाकारिता और उसकी दृढ़ता। उसके व्यक्तित्व की इन्हीं विशेषताओं की वजह से धीरे-धीरे महादेवी वर्मा के मन में घीसा जगह बना लेता है।

रेखाचित्र का तीसरा और अंतिम भाग महादेवी वर्मा का गाँव से विदा लेना है। अपनी बीमारी की वजह से महादेवी जी को लंबे समय तक स्कूल बंद रखना है और इसकी सूचना वह बच्चों को दे देती है। कुछ बच्चे उदास हो जाते हैं तो कुछ छुट्टी की बात से प्रसन्न हो जाते हैं। छुट्टियों के दिन में किताबों को संभालकर रखना, छुट्टी के दिनों को गिनना और कई तरह की समस्याएं बच्चे अपनी गुरु के सामने रखते हैं। लेकिन इस पूरी चर्चा में घीसा पाठशाला से गायब हो जाता है और जब महादेवी जी घर जाने के लिए नदी के तट पर पहुंचती है तो उनको शाम के धुंधलके में घीसा नंगे बदन आता दिखायी देता है। उसके हाथ में बड़ा सा तरबूज है जो वह अपनी गुरु को विदा स्वरूप भेंट करने के लिए लाया है। तरबूज को देखकर अचानक महादेवी वर्मा के मन में संदेह होता है कि कहीं घीसा इसे किसी के खेत से चुराकर तो नहीं लाया है। घीसा बताता है कि यह तरबूज वह अपने नये कुरते के बदले में लाया है जिस पर खेत की रखवाली करने वाले बच्चे की बहुत दिनों से नज़र थी। महादेवी को वह यह भी बताता है कि अब गर्मी के दिन आने वाले हैं और गर्मियों में वह कुरता नहीं पहनता इसलिए उसकी उसे कोई जरूरत नहीं थी। वह यह भी कहता है कि गुरु से झूठ बोलना भगवान से झूठ बोलना है। यह भेंट ही यह बताने के लिए पर्याप्त है कि गुरुजी का विछोह घीसा के लिए बहुत बड़ी व्यथा है और इससे गुरु के प्रति गहरी श्रद्धा और प्रेम का भी प्रमाण मिलता है। महादेवी कहती है कि इतनी मूल्यवान भेंट आज तक किसी शिष्य ने अपने गुरु को नहीं दी होगी। महादेवी दुखी मन से गाँव से और घीसा से विदा लेती है। कुछ महीनों बाद जब वह वापस लौटती है तो पाती है कि घीसा को भगवान ने पढ़ने से सदा सदा के लिए छुट्टी देकर अपने पास बुला लिया है। इस प्रकार घीसा महादेवी के जीवन से सदा-सदा के लिए विदा हो जाता है।

'घीसा' है तो एक रेखचित्र लेकिन कथारस से सराबोर। महादेवी वर्मा के अन्य रेखाचित्रों की तरह यहां भी एक अत्यंत साधारण जीवन से आये पात्र को जिसके घर, परिवार और जीवन में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे असाधारण कहा जा सके, अपनी रचना के केंद्र में रखती हैं। उस साधारण से प्रतीत होते जीवन के ऐसे मार्मिक प्रसंगों को वे अपनी रचना में उद्घाटित करती चलती हैं कि वह असाधारणता से चमक उठता है। घीसा के जीवन के साथ भी यही होता है। एक बहुत ही गरीब ग्रामीण विधवा स्त्री जो निम्न जाति (कोरी) की भी है और जिसके प्रति गाँव में न किसी की सहानुभूति है और न ही दयाभाव। वह स्त्री हर तरह के कष्ट उठाकर अपने और अपनी एकमात्र संतान घीसा का मेहनत मजूरी करते हुए पालन-पोषण करती है। उस स्त्री की इच्छा है कि उसकी संतान कुछ पढ़ लिख जाए लेकिन गाँव में पढ़ाने की कोई व्यवस्था नहीं है और ऐसे में महादेवी वर्मा पहुंचती है और बच्चों को पढ़ाने का निश्चय करती है। घीसा की मां भी घीसा को लेकर पहुंचती है लेकिन गाँव के लोग नहीं चाहते कि घीसा उनके बच्चों के साथ पढ़े। उनके अनुसार घीसा एक बदचलन स्त्री का बेटा है और ऐसे बच्चे के साथ पढ़ने से उनके बच्चों पर भी बुरा असर पड़ेगा। घीसा की मां की बदचलनी का सबूत यह था कि घीसा का जन्म अपने पिता की मृत्यु होने के छह माह बाद हुआ था। दूसरा सबूत यह था कि जाति-बिरादरी के कायदे के अनुसार घीसा की मां को पुनर्विवाह कर लेना चाहिए था लेकिन वह शादी के ऐसे इच्छुकों को लौटा चुकी थी क्योंकि स्वयं उसके अनुसार वह एक शेर की बीबी थी अब किसी सियार के साथ कैसे बंध सकती है। इन दो बातों ने घीसा और

उसकी मां को गाँव वालों के लिए अछूत बना दिया था और उसके चरित्र को लेकर तरह-तरह की बातें की जाती थीं। यहां तक कि उसे काम के लिए दूसरे गाँवों में जाना पड़ता था। लेकिन वह स्वाभिमानी स्त्री न झुकने के लिए तैयार हुई और न दबने के लिए।

घीसा ऐसी माता का बेटा था और उसे अपनी मां के कष्टों, घर के अभावों का ज्ञान था। इसलिए उसमें विनम्रता और दृढ़ता एक साथ थी। उसमें एक सहज, स्वाभाविक विनम्रता थी लेकिन जरूरत पड़ने पर वह पूरी दृढ़ता के साथ अपनी बात पर कायम रह सकता था। दंगों के दौरान गुरु जी को शहर नहीं जाना चाहिए क्योंकि इसमें खतरा है। पिछले साल दंगों में दो मल्लाहों के साथ हुई दुर्घटना उसे अब भी याद थी इसलिए वह नहीं चाहता था कि गुरु जी जान जोखिम में डालकर शहर जाएँ। अपनी इस बात से उसे डिगाना लगभग नामुमकिन था लेकिन जब गुरु जी ने उसे बताया कि शहर में भी घीसा जैसे बहुत से बच्चे अपने मां-बाप से दूर उनके आसरे पर रहते हैं और ऐसे वक्त अगर वह उनके पास नहीं हुई तो क्या यह ठीक होगा। इस बात को सुनकर घीसा की सारी दृढ़ता क्षण भर में गायब हो जाती है। वह जानता है कि उन बच्चों को अभी गुरु जी की जरूरत है और उन्हें यहां रोकना किसी भी तरह उचित नहीं है। ऐसे कई प्रसंग घीसा के व्यक्तित्व को साधारणता से असाधारणता में रूपांतरित करते चलते हैं।

रेखाचित्र का अंतिम प्रसंग एक तरह से घीसा के प्रेम, त्याग और गुरुभक्ति का अन्यतम उदाहरण है जब घीसा अपनी गुरु जी को विदाई के समय भेंट के रूप में देने के लिए अपना नया कुरता देकर उसके बदले में तरबूज लेकर आता है। महादेवी जानती थी कि घीसा की मां की हैसियत ऐसी नहीं है कि वह तरबूज खरीद सके इसलिए उन्हें लगता है कि कहीं घीसा किसी के खेत से तो चुराकर नहीं लाया है। लेकिन जब उन्हें वास्तविकता मालूम पड़ती है तो वह अंदर तक हिल जाती है। उस समय की अपनी मनःस्थिति को इन शब्दों में बयान करती हैं, *"और तब अपने स्नेह से प्रगल्भ उस बालक के सिर पर हाथ रखकर मैं भावातिरेक से ही निश्चल हो रही। उस तट पर किसी गुरु को किसी शिष्य से कभी ऐसी दक्षिणा मिली होगी, ऐसा मुझे विश्वास नहीं। परंतु उस दक्षिणा के सामने संसार में अब तक सारे आदान-प्रदान फीके जान पड़े।"*

लेकिन इस अंत का चरम उस अंतिम परिच्छेद में है जब कुछ महीनों बाद महादेवी जी उस गाँव में लौटती हैं तो उन्हें मालूम पड़ता है कि घीसा की मौत हो चुकी है। लेखिका यह तो नहीं बताती कि उसकी मृत्यु कैसे हुई। यह बताने लायक साहस वह अपने में नहीं पाती लेकिन उसका संकेत इस रूप में देती हैं कि *"उस छोटे जीवन का उपेक्षित अंत"* कैसे हुआ वह कभी भविष्य में बता पाएगी। छोटे जीवन के उपेक्षित अंत से स्पष्ट है कि गरीबी और सामाजिक उपेक्षा ने ही अंततः घीसा की जान ली होगी जिसे स्वयं महादेवी वर्मा ने घीसा और उसकी मां के जीवन में देखा था और जिसके कई चित्र उन्होंने रेखाचित्र में अंकित किये हैं।

रेखाचित्र में संस्मरण और कहानी दोनों की विशेषताएं निहित होती है। इस रेखाचित्र में भी हम इन दोनों विशेषताओं को देख सकते हैं। यह कहानी की तरह काल्पनिक कथानक पर आधारित नहीं है वरन महादेवी जी के जीवन में आए सचमुच के लोगों से संबंधित रचना है। घीसा कोई काल्पनिक पात्र नहीं है और न ही वह गाँव जहां जाकर महादेवी वर्मा ने कुछ अवधि तक गरीब बच्चों को पढ़ाया था। घीसा उन्हीं में से एक था। लेकिन इस संस्मरण को उन्होंने संस्मरण की तरह नहीं बल्कि कहानी की तरह लिखा है। कहानी की तरह इसमें भी हम कथावस्तु का आरंभ, विकास और अंत देख सकते हैं। इस रेखाचित्र में घीसा के जीवन के बारे में जो जानकारी दी गयी है उतने तक ही रचनाकार ने अपने को सीमित रखा है। वह अनावश्यक विस्तार में नहीं गया है और न ही बाद में क्या हुआ उसे बताया है जबकि संस्मरण के तौर पर वह इसे बता सकती थी लेकिन तब रचना का प्रभाव कम हो सकता था। अपने वर्तमान रूप में 'घीसा' एक अविस्मरणीय रेखाचित्र बन गया है और उसका पात्र घीसा एक अविस्मरणीय पात्र।

ck/k iz'u

1. रेखाचित्र 'घीसा' में किन-किन विधाओं की विशेषताएं दिखायी देती हैं?
   क) कहानी की
   ख) कविता की

ग) संस्मरण की
घ) कहानी और संस्मरण की ( )

2. घीसा के गाँव में महादेवी वर्मा क्या कार्य आरंभ करती है?
क) बच्चों को पढ़ाना
ख) औरतों को कढ़ाई का काम सिखाना
ग) गाँव वालों को कहानियां सुनाना
घ) धर्मोपदेश देना ( )

3. गाँव वाले घीसा के पाठशाला में पढ़ने का विरोध क्यों करते हैं?

....

4. घीसा महादेवी वर्मा को विदाई के समय क्या भेंट देता है?

....

37-6 e[; pfj=

'घीसा' में बहुत अधिक पात्र नहीं है। रेखाचित्र के केंद्र में स्वयं रचनाकार महादेवी वर्मा हैं जो घीसा के बारे में पाठकों को बता रही हैं। महादेवी वर्मा के साथ उनकी नौकरानी भक्तिन जो अब स्वयं महादेवी जी के शब्दों में नौकरानी से अधिक उनकी अभिभाविका हो गयी है। उसके बाद गाँव के लोग और बच्चे लेकिन इनमें से किसी का चरित्र स्वतंत्र रूप से नहीं उभरता सिर्फ घीसा और उसकी मां का ही चरित्र हमारे सामने आता है। पूरा रेखाचित्र घीसा पर केंद्रित है और उसके व्यक्तित्व की विशेषताएं ही हमारे सामने विस्तार से उभर कर आती हैं। घीसा के मां का चित्र भी कुछ हद तक उभरता है जो किसी न किसी रूप में घीसा के जीवन और चरित्र को उभारने में सहायक बनता है। जहां तक लेखिका का सवाल है वह स्वयं इस रेखाचित्र में मौजूद हैं। उन्हीं के माध्यम से घीसा और गाँव का पूरा चित्र हमारे सामने आता है। वे ही गाँव में स्कूल खोलने का निर्णय लेती हैं। गाँव वालों के विरोध के बावजूद घीसा को अपनी पाठशाला में पढ़ने की अनुमति देती हैं और उन्हीं के लिए घीसा बहुत कुछ ऐसे काम करता है जिससे घीसा के चरित्र के कई पहलू उजागर होते हैं। लेकिन रेखाचित्र का उद्देश्य सिर्फ घीसा के चरित्र को उभारना है इसलिए यहां हम घीसा के चरित्र पर ही विचार करेंगे।

घीसा से महादेवी की पहली मुलाकात उस दिन नदी के किनारे सांझ के समय होती है जब वह गाँव में पाठशाला खोलने का निर्णय ले चुकी है और गाँव के छोटे-छोटे बच्चों को पढ़ाना शुरू दिया है। उस दिन लौटते हुए नदी के किनारे उसे घीसा अपनी मां के साथ पहली बार महादेवी जी से मिलता है लेकिन उस दिन महादेवी जी घीसा पर पूरा ध्यान नहीं दे पाती। लेकिन जब अगली बार घीसा पाठशाला में उपस्थित होता है तब उनका ध्यान घीसा की तरफ जाता है। उस समय वह घीसा का चित्र कुछ इन शब्दों में बयान करती हैं:

"पक्का रंग, पर गठन में विशेष सुडौल, मलिन मुख जिसमें दो पीली, पर सचेत आँखें जड़ी-सी जान पड़ती थीं। कस कर बंद किए हुए पतले ओठों की दृढ़ता और सिर पर खड़े हुए छोटे-छोटे रूखे बालों की उग्रता उसके मुख की संकोचभरी कोमलता से विद्रोह कर रही थी। उभरी हड्डियों वाली गर्दन को सँभाले हुए झुके कंधों से रक्तहीन मटमैली हथेलियों और टेढ़े-मेढ़े कटे हुए नाखूनों युक्त हाथों वाली पतली बाँहें ऐसी झूलती थीं, जैसे ड्रामा में विष्णु बनने वाले की दो नकली भुजाएँ। निरंतर दौड़ते रहने के कारण उस लचीले शरीर में दुबले पैर ही विशेष पुष्ट जान पड़ते थे।– बस ऐसा ही था वह, न नाम में कवित्व की गुंजाइश, न शरीर में।" स्पष्ट है कि एक गरीब मजदूरनी का नौ साल का बेटा घीसा अपने नाम के अनुरूप दिखने में बहुत साधारण था। उसमें कोई बाह्य सौंदर्य नहीं था और न ही उसकी पारिवारिक स्थिति ऐसी थी कि वह अपने को सज-धजकर रख सके। यही वजह है कि महादेवी जी का कहना था कि न नाम में और न शरीर में कोई कवित्व दिखायी देता था। लेकिन यही साधारण शरीर और उतना ही साधारण नाम वाले बालक की आँखों में महादेवी जी को एक विशेष जिज्ञासा भाव दिखायी देता है जैसे वह अपने गुरू की समस्त विद्या-बुद्धि को आँखों-आँखों से ही सीख लेना चाहता है। यानी घीसा का व्यक्तित्व भले ही अत्यंत साधारण हो लेकिन उसकी आँखों में वह भाव थे जो एक विद्यार्थी में होने चाहिए। धीरे-धीरे महादेवी जी के मनोमस्तिष्क पर वह छाता चला जाता

है।

महादेवी के आकर्षण का पहला कारण घीसा के जीवन की वह पूर्वकथा है जिसे गाँव वालों ने घीसा की माँ को बदनाम करने के लिए सुनाई थी। यानी कि घीसा का जन्म पिता की मौत के बाद हुआ। कहने की यह कोशिश की जा रही थी कि घीसा एक नाजायज बच्चा है जबकि सच्चाई यह थी कि वह अपने पिता की मृत्यु के छह महीने बाद पैदा हुआ था। चूंकि घीसा के पिता छोटी जाति (कोरी) के थे और इस वजह से घीसा की मां को विधवा की तरह जीवनयापन करने की बजाए किसी दूसरे से शादी कर लेनी चाहिए थी, लेकिन वह ऐसा नहीं करती। यह भी एक कारण था गाँव वालों के नाराज होने का। शायद उन्होंने इसमें अपना अपमान समझा हो। जो भी हो, लेकिन इसी वजह से घीसा की मां को पूरे गाँव के विरोध का सामना करना पड़ रहा था और काम के लिए भी उसे दूसरे गाँवों में जाना पड़ता था। अपने जीवन के बारे में फैली हुई बातों के बारे में तो घीसा अभी समझ सकने की स्थिति में नहीं था लेकिन अपने प्रति लोगों के अप्रिय रवैये को समझने की क्षमता उसमें थी और यही वजह थी कि स्वयं घीसा अपने को दूसरों से दूर ही रखता था। ऐसे कष्टों के बीच घीसा को उसकी मां ने पाला-पोसा था और यही वजह थी कि महादेवी जी का घीसा के प्रति सहज ही लगाव पैदा हो गया था।

घीसा में पढ़ाई के प्रति सच्ची लगन थी। स्वयं महादेवी पाठशाला में उसके व्यवहार के बारे में टिप्पणी करते हुए लिखती हैं, *"पढ़ने, उसे सबसे पहले समझने, उसे व्यवहार के समय स्मरण रखने, पुस्तक में एक भी धब्बा न लगाने, स्लेट को चमचमाती रखने ओर अपने छोटे-से-छोटे काम को उत्तरदायित्व बड़ी गंभीरता से निभाने में उसके समान कोई चतुर न था"*। उसकी इसी लगन को देखकर महादेवी वर्मा में यह विचार भी उठा था कि वह इस बच्चे को अपने साथ शहर ले जाए और उसके पढ़ने-लिखने की समुचित व्यवस्था कर दे। लेकिन एक विधवा माँ के इकलौते बच्चे को ले जाकर उसकी माँ के जीवन को और कष्टप्रद नहीं बनाना चाहती थी।

घीसा के लिए पढ़ाई का अर्थ केवल पढ़ाई नहीं था। वह उस जगह को जहां पाठशाला लगती थी उसे साफ-सुथरा रखता था। पाठशाला रविवार को लगती थी और वह शनिवार को ही पाठशाला की जगह लीप-पोतकर तैयार कर देता था। फिर रविवार के दिन गंगा किनारे पहुंचकर वह अपनी गुरु जी का इंतजार करता था और जब दूर से उनकी नाव दिखायी देने लगती थी तो वह दौड़कर अन्य विद्यार्थियों को इसकी सूचना देता था। घीसा के लिए गुरु जी की आज्ञा सबसे बढ़कर थी। जब गुरु जी ने बिना यह सोचे-विचारे कि इन गरीब विद्यार्थियों के लिए नहा-धोकर साफ-सुथरे कपड़े पहन कर आने का क्या मतलब है, उन्होंने उन बच्चों को सफाई से आने के लिए कह दिया था। बच्चे आए लेकिन आधे-अधूरे ढंग से सफाई करके। कोई गंगा में हाथ-मुँह धोकर आ गया था और कुछ मैले कपड़े घर पर ही छोड़कर नंगा ही कक्षा में चला आया था। लेकिन घीसा नहीं आया। दूसरे बच्चों ने बताया कि वह अपनी मां से पिछले सप्ताह से ही साबुन लाने के लिए कह रहा था। मां को मजदूरी कल ही मिली इसलिए साबुन आज ही खरीदा जा सका है और वह अपने कपड़े धो रहा है। थोड़ी देर में घीसा धुला हुआ भीगा कुरता पहने और गीला अंगोछा लपेटे महादेवी जी के सामने आ खड़ा हुआ। गुरु की आज्ञा का पालन करने के लिए घीसा की यह लगन देखकर महादेवी जी का *"रोम-रोम गीला हो गया"*।

घीसा का बहुत छोटा सा संसार था जिसमें उसकी मां और वह पिल्ला था जो उसके साथ घुलमिल गया था और घीसा जिसे अपने घर का सदस्य ही समझता था। उसे मिलने वाली हर चीज वह अपनी माँ और उस पिल्ले में जरूर बांटता था। एकबार जब महादेवी जी बच्चों के लिए पांच-छह सेर जलेबी लेकर आई और बच्चों के बीच पांच-पांच के हिसाब से बंटी तो घीसा के हिस्से में भी पाँच ही आयी थी। उसमें से दो उसने अपने लिए, दो अपनी मां के लिए और एक पिल्ले के लिए रख ली। जबकि सब बच्चे और जलेबी की मांग कर रहे थे लेकिन घीसा ने ऐसा कोई आग्रह नहीं किया। लेकिन जब स्वयं महादेवी जी ने उससे पूछा तो बड़ी मुश्किल से उसके मुँह से यह निकला पिल्ले को उससे कम मिली है इसलिए "दें तो गुरु साहब पिल्ले को ही एक ओर दे दें"।

घीसा में अपने गुरु साहब के प्रति कितनी गहरी श्रद्धा थी इसका प्रमाण उस घटना से मिलता है जब अपनी बीमारी के दौरान घीसा को मालूम पड़ता है कि शहर में दंगा हो गया है, तो वह चल सकने की हालत में न होते हुए भी वह गुरु जी को रोकने के लिए घर से निकल पड़ता है और उनके पैरों में पड़कर प्रार्थना करता है कि जब तक दंगा खत्म न हो तब तक वह शहर न जाए। महादेवी जी घीसा की यह जिद्द देखकर असमंजस में पड़ जाती है। घीसा अपनी गुरु जी को तभी जाने देता है जब उसे मालूम पड़ता है कि शहर में उसकी तरह और भी बहुत से बच्चे हैं जो अपने माता-पिता से दूर गुरु जी के सहारे पर हैं। विनम्र, संकोची और आज्ञाकारी घीसा अचानक हठी बन गया था। लेकिन जैसे ही उन बच्चों के बारे में उसे बताया गया जो अपने माता-पिता से दूर गुरु जी के सहारे थे, तो उसका सारा हठ और दृढ़ता काफूर हो गयी थी।

घीसा के व्यक्तित्व का एक और पहलू उस समय सामने आता है जब लंबे समय के लिए महादेवी वर्मा उन बच्चों से विदा लेकर जाने वाली है। घीसा अपना अकेला नया कुरता गुरु जी को भेंट में देने के लिए तरबूज खरीदने के वास्ते दे आता है। पहले महादेवी जी को संदेह होता है कि कहीं घीसा तरबूज चुराके तो नहीं लाया है लेकिन जब उन्हें सारी घटना मालूम पडती है तो इन शब्दों में वह अपने मन के भाव व्यक्त करती है, *"तब अपने स्नेह में प्रगल्भ उस बालक के सिर पर हाथ रखकर मैं भावातिरेक से ही निश्चल हो रही। उस तट पर किसी गुरु को किसी शिष्य से कभी ऐसी दक्षिणा मिली होगी, ऐसा मुझे विश्वास नहीं; परंतु उस दक्षिणा के सामने संसार में अब तक सारे आदान-प्रदान फीके जान पड़े।"* गरीबी और सामाजिक बहिष्कार और अपमान झेलते हुए भी जिस तरह घीसा में संकोच, विनम्रता, दृढ़ता, त्याग, आज्ञाकारिता, सेवाभाव, परोपकारिता आदि मानवीय गुण भरे थे, इन्हीं से उसका व्यक्तित्व दूसरों बच्चों से अलग और विशिष्ट बना था। लेकिन घीसा अपनी जिंदगी की लड़ाई हार गया। महादेवी यह तो नहीं बताती कि घीसा की मृत्यु कैसे हुई लेकिन उसकी मृत्यु उसके जीवन की चरम त्रासदी ही रही होगी।

Ckk/k iz'u

5. निम्नलिखित में से कौन-सी विशेषता घीसा में नहीं है।
   क) विनम्रता
   ख) दृढ़ता
   ग) दिखावा
   घ) आज्ञाकारिता ( )

6. शहर में दंगे के समय अपनी गुरु जी को रोकने की घीसा की कोशिश उसके चरित्र की किस विशेषता को दर्शाता है?

   ....

   ....

   ....

37-7 ifjos'k

'घीसा' में इलाहाबाद के पास गंगा पार झूंसी के खंडहरों के आसपास के गाँवों का परिवेश चित्रित हुआ है। स्वयं महादेवी जी ने इस रेखाचित्र के आरंभ में ही कहा है कि झूंसी के खंडहरों और उसके आसपास गाँवों के प्रति उनका विशेष आकर्षण रहा है। इसी आकर्षण के चलते वह उस क्षेत्र में जाती रहती थी और ऐसी ही एक यात्रा के दौरान उनके मन में यह विचार आया कि क्यों न यहां के गरीब बच्चों को पढ़ाया जाए। इस रेखाचित्र के केंद्र में तो घीसा ही है लेकिन महादेवी जी ने उस गाँव का भी चित्र प्रस्तुत किया है जहां उन्होंने अपनी रविवारीय पाठशाला आरंभ की थी। गंगा किनारे बसे गाँव का छोटा-सा चित्र उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किया है, *"दूर-पास बसे हुए गुड़ियों के बड़े-बड़े घरौंदों के समान लगने वाले कुछ लिपे-पुते, कुछ जीर्ण-शीर्ण घरों से स्त्रियों का झुण्ड पीतल-ताँबे के चमचमाते मिट्टी के नये लाल और पुराने भदरंग घड़े लेकर गंगाजल भरने आती है"*। इसके बाद वह उन ग्रामीण स्त्रियों के सौंदर्य का वर्णन करती हैं जो समूह में गंगा किनारे पानी भरने जाती हैं, *"उनमें कोई बूटेदार लाल, कोई कुछ सफेद और कोई मैल और सूत में अद्वैत स्थापित करने वाली, कोई कुछ नई और कोई*

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

छेदों से चलनी बनी हुई धोती पहने रहती हैं। किसी की मोम लगी पाटियों के बीच में एक अंगुल चौड़ी सिन्दूर-रेखा अस्त होते हुए सूर्य की किरणों में चमकती रहती है और किसी की कड़वे तेल से भी अपरिचित रूखी जटा बनी हुई छोटी-छोटी लटें मुख को घेर कर उसकी उदासी को और अधिक केंद्रित कर देती हैं। किसी की साँवली गोल कलाई पर शहर की कच्ची नगदार चूड़ियों के नग रह-रहकर हीरे-से चमक जाते हैं और किसी के दुर्बल काले पहुँचे पर लाख की पीली मैली चूड़ियाँ काले पत्थर पर मटमैले चन्दन की लकीरें जान पड़ती हैं। कोई अपने गिलट के कड़े-युक्त हाथ घड़े की ओट में छिपाने का प्रयत्न-सा करती रहती है और कोई चाँदी के पछेली-ककना की झनकार के साथ ही बात करती है। किसी के कान में लाख की पैसे वाली तरकी धोती से कभी-कभी झाँक भर लेती है और किसी की ढारें लंबी जंजीर से गला और गाल एक करती रहती है। किसी के गुदना गुदे गेहुँए पैरों में चाँदी के कड़े सुडौलता की परिधि-सी लगते हैं और किसी की फैली उँगलियों और सफेद एड़ियों के साथ मिली हुई स्याही राँगे और काँसे के कड़ों को लोहे की साफ की हुई बेड़ियाँ बना देती है।" ग्रामीण स्त्रियों के इस चित्रण में महादेवी जी ने उनकी गरीबी और दुख का चित्र खींचा है तो दूसरी ओर उन्हीं मे से कुछ जो अपेक्षाकृत संपन्न और सुखी नज़र आती हैं उनका समानांतर चित्र खींचकर गाँव के यथार्थ को उसकी पूर्णता में प्रस्तुत किया है। महादेवी जी ने आगे गाँव के बच्चों और पुरुषों के भी चित्र प्रस्तुत किये हैं। बच्चों का वर्णन वे कुछ इन शब्दों में करती हैं, *"ग्वालों के बालक अपनी चरती हुई गाय-भैंसों में से किसी को उस ओर बहकते देखकर ही लकुटी लेकर दौड़ पड़ते, गड़रियों के बच्चे अपने झुंड की एक भी बकरी या भेड़ को उस ओर बढ़ते देखकर कान पकड़कर खींच ले जाते हैं और व्यर्थ दिन भर गिल्ली-डंडा खेलनेवाले निठल्ले लड़के भी बीच-बीच में नजर बचाकर मेरा रुख देखना नहीं भूलते।"* ऐसे ही शहर में जाकर अपना दूध बेचने वाले, किले में काम करने वाले और मल्लाहों का चित्र भी उन्होंने प्रस्तुत किया है, *"उस पार शहर में दूध बेचने जाते या लौटते हुए ग्वाले, किले में काम करने जाते या घर आते हुए मजदूर, नाव बाँधते या खोलते हुए मल्लाह, कभी-कभी 'चुनरी त रंगाउब लाल मजीठी हो' गाते-गाते मुझ पर दृष्टि पड़ते ही अचकचा कर चुप हो जाते हैं। कुछ विशेष सभ्य होने का गर्व करनेवालों से मुझे एक सलज्ज नमस्कार भी प्राप्त हो जाता है।"*

गंगा पार के इन गाँव की औरतों, बच्चों और पुरुषों के ये चित्र महादेवी ने तटस्थ भाव से नहीं चित्रित किये हैं। उन सबके चित्र उन्होंने उस समय के पेश किये हैं जब वे उनकी आँखों के सामने से गुजर रहे थे। एक शहरी और शिक्षित स्त्री को देखकर उन पर क्या प्रतिक्रिया होती है, उसका वर्णन भी महादेवी ने प्रस्तुत किया है। मसलन, गंगा किनारे पानी भरने जाने वाली औरतें जब महादेवी को देखती हैं तो वे कुछ इस तरह प्रतिक्रिया करती हैं, *"वे सब पहले हाथ-मुँह धोती हैं, फिर पानी में कुछ घुसकर घड़ा भर लेती हैं— तब घड़ा किनारे रख, सिर पर इंडुरी ठीक करती हुई मेरी ओर देखकर कभी मलिन, कभी उजली, कभी दुःख की व्यथा-भरी, कभी सुख की कथा-भरी मुस्कान से मुस्करा देती हैं। अपने-मेरे बीच का अंतर उन्हें ज्ञात है, तभी कदाचित् वे मुस्कान के सेतु से उसका वार-पार जोड़ना नहीं भूलतीं।"* ठीक इसी तरह लोकगीत गाता हुआ जाने वाला व्यक्ति महादेवी को देखकर अचकचाकर चुप जाता है और जिन्हें शहरी अभिवादन का तरीका मालूम है वे एक सलज्ज नमस्कार भी करते हैं। बच्चे महादेवी जी की तरफ कनखियों से देखते हैं। इस तरह महादेवी के लिए परिवेश का अर्थ वहां के घर और झोंपड़े ही नहीं है वे लोग भी हैं जो गाँवों में रहते हैं। उनके जो विविधतापूर्ण चित्र निर्मित किये हैं उनसे मालूम पड़ता है कि महादेवी जी परिवेश को उसकी पूरी जीवंतता और गतिशीलता में चित्रित करती हैं।

जब वह गाँव के बच्चों को पढ़ाने का निर्णय लेती है तो उनके पास कोई साधन नहीं होता। एक पेड़ की घनी छाया में ही वह अपनी पाठशाला आरंभ कर देती हैं। पाठशाला में बच्चे आने शुरू हो जाते हैं। जब पहले दिन बच्चे पाठशाला में पहुंचते हैं तो महादेवी उन बच्चों का चित्र कुछ इस तरह प्रस्तुत करती हैं, *"और वे जिज्ञासु कैसे थे सो कैसे बताऊँ! कुछ कानों में बालियाँ और हाथों में कड़े पहने, धुले कुरते और ऊँची धोती में नगर और ग्राम का सम्मिश्रण जान पड़ते थे, कुछ अपने बड़े भाई का पाँव तक लंबा कुरता पहने खेत में डराने के लिए खड़े किए हुए नकली आदमी का स्मरण दिलाते थे, कुछ उभरी पसलियों, बड़े पेट और टेढ़ी दुर्बल टाँगों के कारण अनुमान से ही मनुष्य-संतान की परिभाषा में आ सकते थे और कुछ अपने दुर्बल, रूखे और मलिन मुखों की करुण सौम्यता और निष्प्रभ पीली आँखों में संसार भर की उपेक्षा बटोर बैठे थे"*। यहां भी महादेवी वर्मा गाँव में गरीबी और अशिक्षा के गहरे प्रभाव को देखती हैं। यही

कारण है कि उन बच्चों का दुबला पतला शरीर, पहनने योग्य कपड़ों का अभाव और साफ-सफाई रखने के लिए जरूरी साधनों की कमी के कारण जिस रूप में वे बच्चे महादेवी जी के सामने उपस्थित हुए थे उसका सजीव चित्र उन्होंने प्रस्तुत किया है। रेखाचित्र में आगे भी बच्चों के ऐसे कई सामूहिक चित्र अलग-अलग प्रसंगों में प्रस्तुत किये हैं।

महादेवी जी ने प्रकृति के भी कई सुंदर चित्र निर्मित किये हैं। वैसे तो हर तरह के चित्रों में उनकी काव्य प्रतिभा अभिव्यक्त हुई है लेकिन प्रकृति के चित्रण में इसे विशेष रूप से देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, संध्या का यह वर्णन, *"संध्या के लाल सुनहली आभा वाले उड़ते हुए दुकूल पर रात्रि ने मानो छिपकर अंजन की मूठ चला दी थी।"* इस तरह प्रकृति के छोटे-बड़े कई चित्र इस रेखाचित्र में बीच-बीच में आते हैं। महादेवी ने घीसा पर केंद्रित अपने रेखाचित्र में घीसा के आसपास की पूरी दुनिया का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। न केवल प्रकृति और गाँव का बल्कि वहां रहने वाले स्त्री-पुरुष और बच्चों का भी। परिवेश के इस चित्र ने इस रेखाचित्र का सौंदर्य और अधिक बढ़ा दिया है।

37.8 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

इस रेखाचित्र का केंद्रीय चरित्र हमारे सामने इसकी लेखिका महादेवी वर्मा के माध्यम से सामने आता है। रेखाचित्र में लेखक जिस व्यक्ति का भी शब्द चित्र प्रस्तुत करता है, वह उसके जीवनानुभव का हिस्सा होता है। भले ही वह जीवन में बहुत थोड़ी ही अवधि के लिए क्यों न आया हो। घीसा भी ऐसा ही चरित्र है जो महादेवी जी के जीवन के एक खास दौर में उनके सामने उपस्थित हुआ था और थोड़े समय रहकर वह सदा-सदा के लिए नज़रों से ओझल हो गया था। लेकिन उसकी स्मृति महादेवी के लिए चिरस्थायी हो गयी थी। महादेवी जी इस रेखाचित्र को संस्मरण के रूप में प्रस्तुत करती हैं इसलिए पूरी रचना में वह स्वयं उपस्थित रहती हैं। एक तटस्थ द्रष्टा के रूप में नहीं बल्कि सक्रिय पात्र के रूप में। इसलिए यह बहुत स्वाभाविक है कि महादेवी जी के व्यक्तित्व की कई विशेषताएं हमारे सामने उभर कर आती हैं।

महादेवी जी रेखाचित्र में अपने बारे में कुछ-कुछ बताती चलती हैं। मसलन, सबसे पहले हमें यह जानकारी मिलती है कि उन्हें गंगा के किनारे झूंसी के खंडहरों और उसके आसपास के गाँवों में घूमने के प्रति विशेष आकर्षण है। लेकिन उनका यह घूमना पर्यटकों के घूमना जैसा नहीं है। गाँव का जैसा सजीव चित्र वे प्रस्तुत करती हैं उससे यह ज्ञात हो जाता है कि उनकी गहरी रुचि मानव समाज में है। लोगों के सुख-दुख को जानना और जितना मुमकिन हो सके उनके दुखों को कम करना। इस स्वभाव के कारण वह यह फैसला लेती हैं कि वह गाँव के बच्चों को पढ़ाएंगी। इसके लिए वह रविवार का अवकाश का दिन चुनती हैं और उस दिन सुबह से शाम तक गाँव में रहकर एक पेड़ के नीचे उन बच्चों को पढ़ाती हैं जो स्कूल नहीं जा पाते। स्कूल में वह बच्चों को सिर्फ अक्षर ज्ञान ही नहीं करातीं वरन उन्हें सामाजिक व्यवहार के तौर तरीके भी सिखाती हैं। लेकिन इस सिखाने की प्रक्रिया में उन्हें अपनी गलती का एहसास होता है तो उसे भी स्वीकार करने में संकोच नहीं करती। मसलन, जब बच्चों को सफाई के बारे में बताती हैं और उनको हिदायत देती हैं कि उन्हें नहा-धोकर साफ सुथरे कपड़े पहन के आना है तो उनके इस निर्देश से बच्चों पर क्या गुजरती है, इसका एहसास होने पर वह अपने बारे में टिप्पणी करती है, *"मुझे आज भी वह दिन नहीं भूलता जब मैंने बिना कपड़ों का प्रबंध किए हुए ही उन बेचारों को सफाई का महत्त्व समझाते-समझाते थका डालने की मूर्खता की।"*

महादेवी जी में बच्चों के प्रति गहरा ममत्व का भाव है जो बार-बार व्यक्त होता है। वह पाठशाला के बच्चों के लिए एक दिन पांच-छह सेर जलेबी ले आती हैं और उन्हें सभी के बीच भक्तिन की मदद से बांटती हैं। भक्तिन वैसे है तो महादेवी जी की नौकरानी लेकिन वह उनकी अभिभाविका की तरह पेश आती है। लेकिन कोई नौकरानी अभिभाविका की तरह तब ही व्यवहार करेगी जब मालकिन भी उसके साथ नौकर की तरह नहीं बल्कि घर के सदस्य की तरह व्यवहार करेगा। महादेवी वर्मा की यह टिप्पणी भक्तिन के प्रति उनके ममत्व भाव को बताता है, *"बेचारी मेरे साथ रहते-रहते दस लंबे वर्ष काट आई है, नौकरानी से अपने-आपको एक प्रकार की अभिभाविका मानने लगी आया"। है; परंतु मेरी सनक का दुष्परिणाम सहने के अतिरिक्त उसके क्या मिला है? सहसा ममता से मेरा मन भर आया"।*

इसी तरह जब महादेवी जी को मालूम पड़ता है कि घीसा बीमार हो गया है तो न सिर्फ उसकी दवाई का इंतजाम करती है उसे देखने उसके घर भी जाती है। गाँव वालों के विरोध के बावजूद घीसा को अपनी पाठशाला में पढ़ने की अनुमति देने में भी महादेवी जी के व्यवहार की दृढ़ता और साहस का परिचय मिलता है। घीसा और उसकी मां के बारे मे की जाने वाली बातों से विचलित हुए बिना वह न केवल घीसा को अपनी पाठशाला में पढ़ने की इजाजत देती है बल्कि उसके प्रति विशेष लगाव भी महसूस करने लगती है। घीसा और उसकी मां के बारे में कही जाने वाली बातों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए वे लिखती हैं, *"यह कथा अनेक क्षेपकोमय विस्तार के साथ सुनाई तो गई थी मेरा मन फेरने के लिए और मन फिरा भी, परंतु किसी सनातन नियम से कथावाचक की ओर न फिरकर कथा के नायकों की ओर फिर गया और इस प्रकार घीसा मेरे और अधिक निकट आ गया था।"* यही वजह है कि घीसा उनके हृदय के नजदीक आ गया और वह उसकी प्रत्येक गतिविधि और व्यवहार को ध्यान से देखने लगी और उसके सुख-दुख की चिंता भी करने लगी। लेखक का मुख्य काम लेखन ही है लेकिन महादेवी वर्मा सिर्फ लेखिका नहीं थी, उन्हें सामाजिक कार्यों में भी गहरी रुचि थी। यह रेखाचित्र इस बात का प्रमाण है कि उनकी रुचि ऐसे सामाजिक कार्यों में नहीं थी जिनसे प्रचार और प्रशंसा मिले बल्कि सचमुच लोगों के बीच जाकर उनके सुख-दुख से जुड़कर उनके लिए कुछ करने का प्रयत्न करना। उनकी यह छवि ही इस रेखाचित्र में हमारे सामने आती है।

cks/k iz'u

7. महादेवी वर्मा के पाठशाला खोलने के निर्णय से उनके व्यक्तित्व की कौन-सी विशेषता व्यक्त होती है?

   ....

8. महादेवी वर्मा द्वारा गाँव में चलाई गई पाठशाला के संबंध में निम्नलिखित में से कौन-सा तथ्य सही नहीं है?

   क) पाठशाला पेड़ के नीचे चलती थी।

   ख) पाठशाला सिर्फ रविवार को लगती थी।

   ग) बच्चों के बीच बांटने के लिए एकबार जलेबी लेकर आई थीं।

   घ) बच्चों से एक रुपया फीस लेती थीं। ( )

9. महादेवी वर्मा ने गाँव वालों के विरोध के बावजूद घीसा को पाठशाला में भर्ती क्यों किया?

   ....

   ....

   ....

37-9 lajpuk-f'kYi

महादेवी वर्मा का रेखाचित्र गद्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है जिसका हिंदी में सर्वाधिक रचनात्मक उपयोग महादेवी जी ने ही किया है। महादेवी वर्मा ने कई रेखाचित्र लिखे हैं ओर उनके लिखे रेखाचित्र काफी चर्चित भी रहे हैं। 'घीसा' उनके प्रख्यात रेखाचित्रों में से एक है। हम इस भाग के अंतर्गत रेखाचित्र की भाषा और शैली पर विचार करेंगे।

^?khlk* dh Hkk"kk

'घीसा' की विशिष्टता उसकी भाषा और शैली में भी निहित है। मर्मस्पर्शी रेखाचित्र के लिए संवेदनशील भाषा का होना जरूरी है और 'घीसा' की भाषा भी वैसी ही है। हालांकि महादेवी की भाषा में तत्सम शब्दावली का ज्यादा प्रयोग होता है लेकिन आवश्यकता के अनुसार वह देशज और बोलचाल के शब्दों का भी प्रयोग करती हैं। उनकी भाषा मार्मिक प्रसंगों में ही नहीं वर्णनात्मक स्थलों पर भी काव्यात्मक भाषा की तरह सौंदर्यपरक होती है। रेखाचित्र की शुरुआत ही जिस तरह की भाषा से होती है उसमें निहित मार्मिकता पाठकों को सहज ही आकृष्ट कर लेती है। घीसा का स्मरण करते हुए वह अपनी बात कुछ-कुछ दार्शनिक शैली में लेकिन गहरे पीड़ा के साथ व्यक्त करती है और उस परिच्छेद के अंत तक आते-आते उनकी भाषा में काव्यात्मकता की विशेषताएं आने लगती हैं: *"वर्तमान की कौन-सी अज्ञात प्रेरणा हमारे अतीत की किसी भूली हुई कथा को संपूर्ण मार्मिकता के साथ दोहरा जाती है, यह जान लेना सहज*

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

होता तो मैं भी आज गाँव के उस मलिन सहमे नन्हे-से विद्यार्थी की सहसा याद आ जाने का कारण बता सकती, जो एक छोटी लहर के समान ही मेरे जीवन-तट को अपनी सारी आर्द्रता से छूकर अनन्त जलराशि में विलीन हो गया है।" यह भाषा छायावादी कवियों की तत्सम शब्दावली के अनुरूप है। महादेवी जी ने अपनी बात को अत्यंत संक्षेप में लेकिन प्रभावपूर्ण ढंग से कही है। घीसा को याद करते हुए उसके लिए जो विशेषण प्रयुक्त किये हैं उससे घीसा के व्यक्तित्व की सभी विशेषताएं एक साथ उजागर हो उठती हैः *"उस मलिन, सहमे, नन्हे से विद्यार्थी"।* उसकी याद करते हुए वह उसके जीवन के उस छोटे से हिस्से को जिन्हें महादेवी वर्मा ने नजदीक से देखा था और जो बाद में सदा के लिए विलीन हो गया था। उसको याद करते हुए वह समुद्र से उठने वाली उस लहर की उपमा देती है जो समुद्र से उठकर समुद्र में विलीन हो जाती है। कमोबेश भाषा का यही स्वरूप पूरे रेखाचित्र में दिखायी देता है। लेकिन जहां जरूरी होता है वहां महादेवी जी देशज और तद्भव शब्दों का भी प्रयोग करती हैंः *"दूर-पास बसे हुए गुड़ियों के बड़े-बड़े घरौंदों के समान लगने वाले कुछ लिपे-पुते, कुछ जीर्ण-शीर्ण घरों से स्त्रियों का झुण्ड पीतल-ताँबे के चमचमाते मिट्टी के नये लाल और पुराने भदरंग घड़े लेकर गंगाजल भरने आती है"*। इन पंक्तियों में भाषा का स्वरूप भिन्न है। बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले शब्द जैसे गुड़िया, घरौंदा, झुंड, पीतल-तांबे, मिट्टी, भदरंग, घड़े जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है तो बीच में जीर्ण-शीर्ण जैसी तत्सम शब्दावली का भी। इसी तरह आगे पंक्तियों में देशज शब्दों का भी प्रयोग है, *"किसी की साँवली गोल कलाई पर शहर की कच्ची नगदार चूड़ियों के नग रह-रहकर हीरे-से चमक जाते हैं और किसी के दुर्बल काले पहुँचे पर लाख की पीली मैली चूड़ियाँ काले पत्थर पर मटमैले चन्दन की लकीरें जान पड़ती हैं। कोई अपने गिलट के कड़े-युक्त हाथ घड़े की ओट में छिपाने का प्रयत्न-सा करती रहती है और कोई चाँदी के पछेली–ककना की झनकार के साथ ही बात करती है। किसी के कान में लाख की पैसे वाली तरकी धोती से कभी-कभी झाँक भर लेती है और किसी की ढारें लंबी जंजीर से गला और गाल एक करती रहती है। किसी के गुदना गुदे गेहुँए पैरों में चाँदी के कड़े सुडौलता की परिधि से लगते हैं"*। इन पंक्तियों की भाषा में नगदार चूड़ियों, काले पहुँचे, गिलट के कड़े, चाँदी के पछेली-ककना, तरकी धोती, गुदना गुदे पैर, जैसे प्रयोग में लोक जीवन की पूरी झलक मिल जाती है। जहां आवश्यक हुआ है वहां उन्होंने गंगा किनारे बोली जाने वाली लोक भाषा (अवधी) का भी प्रयोग किया है। मसलन, घीसा की मां के एक कथन को उसी की भाषा में उद्धृत करती हैं, *"हम सिंघ के मेहरारु होइके का सियारन के जाब"* (मैं सिंह की पत्नी होकर सियार के साथ कैसे जा सकती हूँ)। यही भाषा बच्चों की आपसी बातचीत में उद्धृत हुई है, *"सार एक ठो पिलवा पाले है, ओही का देय बरे गा होई"* (एक पिल्ला पाल रखा है उसी को देने गया होगा)। इस लोकभाषा का प्रयोग करते हुए भी रेखाचित्र में जो भाषा का अपना मिज़ाज है वह कहीं भी न भंग होता है और न ही उसमें शिथिलता आती है।

'घीसा' की शैली

'घीसा' रेखाचित्र है और इकाई 33 में हमने रेखाचित्र की विधागत विशिष्टता पर विचार किया है। रेखाचित्र को परिभाषित करते हुए उस इकाई में कहा गया था, *"जब किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, घटना, दृश्य आदि का न्यूनतम शब्दों से इस प्रकार वर्णन किया जाता है कि पाठक के मन पर उसका हू-ब-हू चित्र बन जाता है तो उसे रेखाचित्र कहते हैं।"* इस परिभाषा के अनुसार अगर हम 'घीसा' का मूल्यांकन करें तो हम पायेंगे कि इसमें भी घीसा नामक एक बालक का शब्दों के माध्यम से रेखाचित्र प्रस्तुत किया गया है। लेकिन घीसा का वैसा विस्तृत चित्रण नहीं है जो जीवनी में किया जाता है। उसके जीवन की संपूर्ण गाथा प्रस्तुत नहीं की गयी है। केवल उन प्रसंगों का उल्लेख किया गया है जिनका घीसा के पाठशाला में प्रवेश लेने और पढ़ने से जुड़े हैं। लेकिन इन प्रसंगों से ही घीसा के व्यक्तित्व के लगभग सभी पहलू उभर कर सामने आ जाते हैं।

रेखाचित्र की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए उस इकाई में कहा गया था, "रेखाचित्र की रचना कहानी की तरह होती है। लेकिन कहानी से भिन्न इस रूप में कि रेखाचित्र में लेखक स्वयं उपस्थित रहता है। कहानी की तरह रेखाचित्र काल्पनिक नहीं होता। उसके पात्र भी कभी न कभी लेखक के संपर्क में जरूर आये होते हैं। लेखक संस्मरण की तरह अपने पात्रों, स्थितियों और प्रसंगों का वर्णन करता है। वह स्वयं भले ही उसका पात्र न हो, लेकिन उसकी मौजूदगी रचना को प्रामाणिक और विश्वसनीय बनाती है। वह ऐसे जीवनचरित्रों को हमारे सामने लाता

है जो अपनी साधारणता में भी असाधारण होते हैं। उनके जीवन के मार्मिक प्रसंग, उनका दृढ़ चरित्र, कठिन और विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए भी आत्मबल बनाये रखना, उनकी करुणा और उनके हृदय का आंतरिक आलोक ही रेखाचित्र की शक्ति होते हैं।" रेखाचित्र की इन विशेषताओं के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि 'घीसा' की शैली रेखाचित्र के सर्वथा अनुरूप है। इस रेखाचित्र के केंद्र में घीसा है। लेकिन रचनाकार ने घीसा के व्यक्तित्व को शब्दबद्ध करने के लिए उसके परिवेश और परिस्थितियों का चित्रण भी साथ-साथ किया है। जहां आवश्यकता हुई है उससे संबद्ध उन पात्रों का भी चित्र प्रस्तुत किया है जो घीसा के व्यक्तित्व को उभारने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई न कोई भूमिका अवश्य निभाते हैं। मसलन, घीसा की मां, उसके साथ पाठशाला में पढ़ने वाले बच्चे और उसके आस-पड़ोस में रहने वाले लोग। लेकिन महादेवी वर्मा ने घीसा की मां को छोड़कर किसी भी अन्य पात्र को उतना ही महत्त्व दिया है जितना घीसा के व्यक्तित्व को उभारने के लिए आवश्यक है। घीसा की मां के जीवन के अवश्य कुछ प्रसंगों को महत्त्व के साथ चित्रित किया है क्योंकि उसका सीधा संबंध स्वयं घीसा के जीवन से है। 'घीसा' की रचना करते हुए महादेवी लेखकीय संयम बनाए रखती है। वह कहीं भी न तो भावनाओं के प्रवाह में अनावश्यक बहती है और न ही प्रसंगों, पात्रों और परिस्थितियों पर अनावश्यक टीका-टिप्पणी करती है। 'घीसा' को पढ़कर कोई भी महसूस कर सकता है कि महादेवी की घीसा के प्रति गहरी आत्मीयता का भाव है लेकिन यह आत्मीयता उनके रचनात्मक अभिव्यक्ति पर हावी नहीं होती।

37-10 ifri k|

'घीसा' एक रेखाचित्र है और गद्य की इस विधा को महादेवी वर्मा ने रचनात्मक उत्कर्षता के साथ प्रस्तुत किया है। इसे पढ़ते हुए पाठक रचनाकार की लेखकीय क्षमता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। रेखाचित्र की भाषा-शैली पाठक को गहरे रूप में प्रभावित करती है। कोई भी साहित्यिक कृति सबसे पहले अपने रचनात्मक सौंदर्य से ही पाठकों को आकृष्ट करती है। लेकिन महादेवी वर्मा का लेखन गहरे मानवीय सरोकारों से जुड़ा है और इस बात को हम इस रचना में भी देख सकते हैं। महादेवी जी ने जितने भी रेखाचित्र लिखे हैं उनमें उन्होंने समाज के उत्पीड़ित और पददलित वर्ग के लोगों के जीवन यथार्थ को उनके प्रति गहरी संवेदना और सहानुभूति के साथ लिखा है। अत्यंत विपरीत परिस्थितियों के बीच भी वे किस तरह अपनी मानवीय संवेदना को बचाये रखते हैं उसे उन्होंने बहुत ही प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया है।

'घीसा' का घीसा भी एक ऐसा ही पात्र है। वह महज नौ साल का छोटा बालक है। गंगा किनारे के एक गाँव में अपनी मां के साथ रहता है। उसकी माँ विधवा है और कोरी जाति (एक पिछड़ी जाति) की है। घीसा की मां को अपना जीवनयापन करने के लिए मेहनत-मजूरी करनी पड़ती है। उसकी इच्छा है कि उसका बेटा भी पढ़-लिख जाए लेकिन गाँव में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। इसलिए जब महादेवी वर्मा प्रत्येक रविवार को गाँव के बच्चों को पेड़ के नीचे पढ़ाने का निश्चय करती है, तो घीसा की माँ अपने बेटे को लेकर महादेवी वर्मा के पास पहुंचती है। महादेवी वर्मा यहां घीसा के माँ-बाप के बारे में बताती है। कैसे दोनों की शादी हुई। कैसे घीसा के पिता का देहांत हुआ और बाद में घीसा की माँ को किस तरह की मुश्किलों का सामना करना पड़ा। महादेवी जी यह भी बताती है कि गाँव में घीसा का माँ का किस तरह विरोध किया जा रहा है। यह विरोध इस हद तक है कि घीसा को पाठशाला में पढ़ने से भी रोका जाता है। लेकिन महादेवी गाँव वालों की इच्छा के विरुद्ध जाकर घीसा को पाठशाला में पढ़ने की अनुमति देती है। यह उनकी उदारता और साहस का परिचायक भी है। पाठशाला में बच्चे घीसा से खींचे-खींचे रहते हैं। इसके बावजूद वह किसी के प्रति कटु नहीं है। पाठशाला में घीसा का विनम्र व्यवहार, पढ़ाई के प्रति उसकी लगन, गुरु जी के प्रति उसकी गहरी श्रद्धा महादेवी जी को उसकी तरफ आकृष्ट कर देती है। जब घीसा को अपनी बीमारी के दौरान मालूम पड़ता है कि शहर में दंगा हो गया है, तो वह महादेवी को शहर जाने से रोकने की हर मुमकिन कोशिश करता है। लेकिन जब उसे मालूम पड़ता है कि बहुत से बच्चे शहर में अपने माता-पिता से दूर गुरु जी के भरोसे है, तब वह उन्हें नहीं रोकता। यह घटना उसके व्यक्तित्व की दृढ़ता और साथ ही उसकी निःस्वार्थ भावना का परिचय देती है। जब महादेवी कुछ महीनों के लिए पाठशाला से अवकाश लेकर जाती है तब अपना नया कमीज देकर वह गुरु जी को भेंट देने के लिए तरबूज लेके आता है। उसकी इस त्याग भावना को जानकर महादेवी वर्मा

द्रवित हो जाती है। रेखाचित्र को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि महादेवी जी न सिर्फ घीसा के जीवन की मुश्किलों के बारे में अपने पाठकों को बताना चाहती हैं वरन अत्यंत प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उसकी मानवीय सहृदयता और उसकी व्यवहारगत विनम्रता को भी रेखांकित करना चाहती है। लेकिन यही इस रेखाचित्र की रचना का प्रतिपाद्य नहीं है। रचना का उद्‌देश्य इससे बड़ा है। महादेवी यह भी बताना चाहती है कि किस तरह भारत के गाँव अब भी आधुनिक सुख-सुविधाओं से ही नहीं उन मूलभूत जरूरतों से भी वंचित है जिसे पाने का हक सभी को है। गाँवों में स्कूल नहीं है। गरीबों के लिए उपयुक्त घर नहीं है। उनके इलाज के लिए न डॉक्टर है और न ही अस्पताल। इसके अलावा गाँवों का सामाजिक पिछड़ापन भी उनकी जिंदगी की मुश्किलों को और बढ़ा देता है। महादेवी इस रेखाचित्र में किसी के प्रति कटु हुए बिना गरीब और दलित समाज के लोगों के जीवन की कठिनता विशेष रूप से अकेली स्त्री जिसका कोई सहारा न हो उसके लिए अपने बच्चों का पालन-पोषण करना कितना दुश्वार है, इसे रेखाचित्र में महादेवी पूरी संवेदनशीलता के साथ उभार पाती है। रेखाचित्र के अंतिम परिच्छेद में यह सूचना कि घीसा की मौत हो गयी है और उसका कारण उसका उपेक्षित जीवन है, यह बताने के लिए पर्याप्त है कि घीसा जैसे गरीब और दलित बच्चे किस तरह बेमौत मारे जाते हैं। इस प्रकार यह रेखाचित्र सिर्फ़ एक बालक घीसा के जीवन और व्यवहार के बारे में ही नहीं बताता बल्कि उन सामाजिक परिस्थितियों पर भी प्रकाश डालता है जिसके कारण घीसा जैसे बच्चों का जीवन न सिर्फ मुश्किलों से भर जाता है बल्कि उनके लिए जीवन एक अभिशाप बन जाता है और मृत्यु ही उन्हें इस अभिशाप से मुक्त कर पाती है।

Ckks/k iz'u

10. निम्नलिखित में से कौन-सी विशेषता 'घीसा' की भाषा पर लागू नहीं होती?
    क) उर्दूनिष्ठ भाषा
    ख) तत्सम शब्दावली
    ग) देशज शब्दों का प्रयोग
    घ) काव्यात्मक भाषा ( )

11. 'घीसा' को किन कारणों से कहानी नहीं माना जा सकता?

    ....

    ....

    ....

    ....

12. निम्नलिखित में से कौन-सा तथ्य घीसा की मां पर लागू नहीं होता?
    क) विधवा थी
    ख) मेहनत-मजूरी करती थी
    ग) घीसा को शिक्षित बनाना चाहती थी
    घ) घीसा को बोझ समझती थी ( )

vH;kl

3. 'घीसा' रेखाचित्र के माध्यम से महादेवी वर्मा क्या कहना चाहती है?

    ....

    ....

    ....

4. 'घीसा' के आधार पर घीसा का चरित्र-चित्रण कीजिए।

    ....

    ....

    ....

5. 'घीसा' की भाषा और शैलीगत विशेषताएं बताइए।

    ....

    ....

    ....

37-11 lkjka'k

हिंदी गद्य के इस पाठ्यक्रम के छठे खंड की इस इकाई में आपने महादेवी वर्मा रचित 'घीसा' नामक रेखाचित्र का अध्ययन किया है। इस इकाई में आपने रेखाचित्र के अंतर्वस्तु की विशेषताओं का भी अध्ययन किया है। आपने इकाई में पढ़ा है कि 'घीसा' रेखाचित्र में एक बालक घीसा किस तरह अपनी पढ़ने की लगन, विनम्र और दृढ़ व्यवहार और गुरुजी के प्रति अपने भक्तिभाव को कैसे प्रकट करता है। आपने यह भी पढ़ा है कि किस तरह घीसा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने लक्ष्य को हासिल करने के लिए प्रयत्न करता है। इस इकाई को पढ़ने से आप इस रेखाचित्र की अंतर्वस्तु की विशेषताएं बता सकेंगे।

इस इकाई में घीसा के चरित्र की विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है। घीसा विनम्र, मेहनती, लगनशील और त्याग भावना से परिपूर्ण है। इस इकाई को पढ़ने के बाद घीसा के चरित्र की विशेषताओं का आकलन भी आप कर सकेंगे।

इस इकाई में रेखाचित्र में वर्णित परिवेश और लेखकीय व्यक्तित्व के प्रभाव का भी विवेचन किया गया है। साथ ही रेखाचित्र की भाषा और शैलीगत विशेषताओं से भी आपका परिचय कराया गया है। इकाई के अंत में रेखाचित्र के उद्देश्य पर भी प्रकाश डाला गया है। इकाई को पढ़ने के बाद आप इन सभी पक्षों का विवेचन स्वयं कर सकेंगे।

37-12 'kCnkoyh

efyu % मैला
thou-rV % जीवन रूपी किनारा
vknzrk % करुणा से युक्त
tyjkf'k % जल का भंडार
{kr-fo{kr % बहुत जगह कटी-फटी, बहुत अधिक घायल
HkkxhjFkh % गंगा
?kjkSnk % खेलने के लिए बच्चों का बनाया हुआ मिट्टी का छोटा-सा घट
th.kZ-'kh.kZ % फटा-पुराना
Hknjax % भद्दा
v}Sr % द्वैत का अभाव, जो केवल एक हो
igaph % हाथ में पहनने की स्त्रियों का गहना
fxyV % सोने का पानी चढ़ाकर बनाया गया चमकीला धातु
iNsyh-ddauk % हाथों में पहनने का गहना
jkax % एक प्रसिद्ध धातु
bMqjh % सिर पर रखा गोल रिंग जिस पर स्त्रियां घड़ा रखती हैं
ydqVh % छोटी-पतली लकड़ी
xMfj;k % भेड़-बकरी चराने वाला
dk;Zdkfj.kh % किसी संस्था को चलाने के लिए बनायी गई समिति
inkf/kdkjh % अधिकार युक्त पद पर आसीन व्यक्ति
ftKklq % जानने की इच्छा रखने वाला
fu"izHk % जिसमें चमक न हो
xks/kwyh % संध्या का समय
nqdwy % रेश्मी वस्त्र
vatu % काजल
vfHkHkkfodk % किसी अवयस्क (बालक) का संरक्षक
lyqdkjfgr % बिना कुरती के
>qViqV % सवेरे या शाम का वह समय जब साफ-साफ दिखाई न दे
Mfy;k % बाँस आदि का बना एक छोटा पात्र
vlfg".kqrk % सहनशीलता का अभाव, झगड़ालुपन
iR;qr % बल्कि, इसके विपरीत

rhr	%	तीखा
egjk:	%	औरत, पत्नी
{kkHk	%	व्याकुलता
{kidke;	%	बाद में मिलाया हुआ
viokn	%	बदनामी
ekfuuh	%	अभिमान करने वाला
vkofÙk	%	दुहराना
'khryikVh	%	एक प्रकार की पतली और चिकनी चटाई
dkVj	%	पेड़ के तने का खोखला भाग
vfLFkitj	%	हड्डियों का ढाँचा
nk.kkpk;l	%	पांडवों और कौरवों के गुरु जिन्होंने उन्हें धनुष विद्या सिखाई
Hkhy f'k";	%	एकलव्य
oeuL;	%	मनमुटाव, वैर
lfUuikrxLr	%	वात, पित्त और कफ़ का एक साथ प्रकोष से बीमार पड़ा
okr-xLr	%	वायु से होने वाले रोग
vkth	%	दादी
grkgr	%	मारे गये और घायल हुए
ddky'k"kh	%	जो हड्डियों का ढांचा भर रह गया हो
rikorh	%	तपस्या संबंधी व्रत करने वाला
vukxfjd	%	जो नागरिक न हो, बेघरबार
cgepkjh	%	ब्रह्मचर्य (अविवाहित रहना) का पालन करने वाला
fVifd;k	%	बहुत छोटे-छोटे टुकड़े
mPNokl	%	साँस भरना
dNkj	%	नदी के किनारे की गीली ज़मीन
i.kdVh	%	पत्तों की बनी झोंपड़ी
vkfne	%	आदि (आरंभ) में उत्पन्न; अत्यंत पुराना
bl'kr-y{;	%	कुछ-कुछ दिखाई देने वाली
ixYHk	%	प्रतिभावान
Hkkokfrjd	%	भावों की अधिकता
nf{k.kk	%	दान
nk'kfud	%	दर्शनशास्त्र का जानकार

37-13 ck/k i'uk@vH;kl dk mÙkj

Ckk/k i'u

1. घ) 2. क)
3. क्योंकि गाँव वालों की नज़र में घीसा की माँ सद्चरित्र नहीं थी और वह घमंडी भी थी।
4. घीसा ने महादेवी वर्मा को तरबूज भेंट में दिया था।
5. ग)
6. दृढ़ता और गुरु जी के प्रति श्रद्धाभाव
7. गरीब और असहाय बच्चों को शिक्षित करने की सामाजिक दायित्व की भावना से प्रेरित होकर
8. घ)
9. महादेवी वर्मा घीसा की माँ के बारे में फैले अपवाद से सहमत नहीं थीं और उनकी दृष्टि में पाठशाला में पढ़ने का अधिकार सबको था।
10. क)
11. कहानी काल्पनिक पात्रों और प्रसंगों पर आधारित होती है जबकि रेखाचित्र वास्तविक पात्रों और प्रसंगों के आधार पर लिखा जाता है।
12. घ)

vH;kl के उत्तर इकाई को ध्यानपूर्वक पढ़कर स्वयं अपने शब्दों में लिखिए।

bdkbZ 38 ixMafM;ksa dk tekuk ¼gfj'kadj ijlkbZ½ okpu vkSj fo'ys"k.k

bdkbZ dh :ijs[kk

38.0 उद्देश्य
38.1 प्रस्तावना
38.2 निबंध का वाचन : पगडंडियों का ज़माना
38.3 निबंध का सार
38.4 संदर्भ सहित व्याख्या
38.5 निबंध की अंतर्वस्तु
38.6 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति
38.7 संरचना-शिल्प
38.8 प्रतिपाद्य
38.9 सारांश
38.10 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

38-0 mÌs';

स्नातक उपाधि कार्यक्रम के ऐच्छिक पाठ्यक्रम 'हिंदी गद्य' के छठे खंड की छठी इकाई और पाठ्यक्रम की 38वीं इकाई है। इस इकाई में आप हरिशंकर परसाई द्वारा रचित व्यंग्य निबंध 'पगडंडियों का ज़माना' का वाचन और विश्लेषण का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- 'पगडंडियों का ज़माना' के वाचन से उसकी अंतर्वस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- 'पगडंडियों का ज़माना' के प्रमुख अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या कर सकेंगे;
- 'पगडंडियों का ज़माना' की अंतर्वस्तु की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- 'पगडंडियों का ज़माना' में लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- 'पगडंडियों का ज़माना' का व्यंग्य निबंध की विशेषताओं के संदर्भ में उसकी भाषा और शैली की विशेषताएँ बता सकेंगे; और
- 'पगडंडियों का ज़माना' के प्रतिपाद्य का विवेचन कर सकेंगे।

38-1 iLrkouk

हिंदी गद्य के इस पाठ्यक्रम के छठे खंड में आपने अब तक आपने हिंदी कथेतर गद्य के स्वरूप और विकास तथा भारतेंदु हरिश्चंद्र के निबंध 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन', हजारी प्रसाद द्विवेदी के ललित निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' और महादेवी वर्मा के रेखाचित्र 'घीसा' का अध्ययन किया है। इस इकाई में आप हिंदी के प्रख्यात व्यंग्य निबंधकार और कथाकार हरिशंकर परसाई की रचना 'पंगडंडियों का ज़माना' का अध्ययन करेंगे।

हरिशंकर परसाई स्वतंत्रता प्राप्ति के दौर के प्रमुख कथाकार और निबंधकार हैं। परसाई जी हिंदी के पहले ऐसे लेखक हैं जिन्होंने व्यंग्य को अपने लेखन का मुख्य माध्यम बनाया। कहानी, उपन्यास और निबंध तीनों विधाओं में जो भी लिखा वह व्यंग्य शैली में ही लिखा। इस तरह उन्होंने व्यंग्य को एक स्वतंत्र विधा का रूप दे दिया। परसाई जी का जन्म 22 अगस्त 1924 को मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जिले के जमानी गाँव में हुआ था। उन्होंने मुख्य रूप से व्यंग्य निबंध लिखे लेकिन कहानीकार के रूप में भी उनकी प्रतिष्ठा कम नहीं थी। उनकी व्यंग्य रचनाओं में 'भोलाराम का जीव', 'वैष्णव की फिसलन', 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र', 'पहला सफेद बाल' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने 'तट की खोज', 'रानी नागफनी की कहानी' और 'ज्वाला और जल' नामक उपन्यास भी लिखे। 'रानी नागफनी की कहानी' उपन्यास इंशाअल्ला खां की प्रख्यात रचना 'रानी केतकी की कहानी' शैली में लिखी गयी है। उनकी रचनाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं और उनका लेखन काफी लोकप्रिय था। उन्होंने अपने

समय की कई महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं में व्यंग्य से संबंधित स्तंभ भी लिखे। वे प्रगतिशील विचार के लेखक थे। उन्हें अपने लेखन के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। उनका निधन 10 अगस्त 1995 को हुआ।

इस इकाई में आप परसाई जी का व्यंग्य निबंध 'पंगडंडियों का ज़माना' का अध्ययन करेंगे। इस निबंध में परसाई जी ने शिक्षा के क्षेत्र में सिफारिशों से प्रवेश लेने, पेपर आउट कराने और परीक्षा में नंबर बढ़वाने की बढ़ती प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया है। हरिशंकर परसाई ने मेहनत, नैतिकता और ईमानदारी के आम रास्ते पर चलने की प्रवृत्ति के कमजोर पड़ने और सिफारिश, नकल और बेईमानी के शॉर्टकट के प्रति बढ़ते रुझान पर चिंता व्यक्त की है। परसाईजी ने इस व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक पतन की ओर अपने पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। यह एक छोटा व्यंग्य निबंध है, जिसमें लेखक ने विभिन्न प्रसंगों द्वारा अपनी बात कहने का प्रयत्न किया है। अब आप निबंध का वाचन कीजिए और उसे स्वयं समझने का प्रयत्न कीजिए। उसके बाद इकाई के अन्य भागों को पढ़कर इस व्यंग्य निबंध की विभिन्न विशेषताओं को जानने का प्रयास कीजिए।

38-2 fuca/k dk okpu % ixMafM;ksa dk t+ekuk

मैंने फिर ईमानदार बनने की कोशिश की और फिर नाकामयाब रहा।

एक सज्जन ने मुझसे कहा कि एक परिचित अध्यापक से कहकर मैं उनके लड़के के नम्बर बढ़वा दूँ। यों मैं उनका काम कर देता, पर बहुत अरसे बाद उसी दिन मुझे ईमान की याद आयी थी और मैंने पूरी तरह ईमानदार बन जाने की प्रतिज्ञा कर ली थी। सज्जन की बात सुनकर मुझे पुरानी कथाएँ याद आ गयीं और मैंने सोचा कि प्रतिज्ञा करते मुझे देर नहीं हुई कि ये इन्द्र या विष्णु मेरी परीक्षा लेने आ पहुँचे। उन्हें विश्वास नहीं है कि कोई इस ज़माने में लम्बी तपस्या करेगा। चार कहानियाँ लिखकर लोग युग-प्रवर्तक की लिस्ट में नाम खोजने लगते हैं। इसलिए ये देवता अब तपस्या शुरू होते ही परीक्षा लेने आ पहुँचते हैं।

मैंने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया और प्रकट कहा, ''मैं इसे अनुचित और अनैतिक मानता हूँ। मैं यह काम नहीं करूँगा।''

मुझे आशा थी कि अब ये अपने मौलिक देव-रूप में प्रकट होंगे और कहेंगे- 'वत्स, तू परीक्षा में खरा उतरा। बोल, तुझे क्या चाहिए? हम वर देने के 'मूड' में हैं। बोल, हिन्दी साहित्य के इतिहास में तेरे ऊपर एक अध्याय लिखवा दूँ? या कहे तो, किसी समीक्षक की तेरे घर में पानी भरने की ड्यूटी लगा दूँ?'

वे मौलिक रूप में तो आये, पर वह प्रसन्नता का न होकर रोष का था। वे भुनभुनाकर चले गये। मैंने सुना, वे लोगों से मेरे बारे में कह रहे थे– 'आजकल वह साला बड़ा ईमानदार बन गया है।'

मैं जिसे देवता समझ बैठा था, वह तो आदमी निकला। मैंने अपनी आत्मा से पूछा, 'हे मेरी आत्मा, तू ही बता। क्या गाली खाकर बदनामी करवाकर मैं ईमानदार बना रहूँ?'

आत्मा ने जवाब दिया, 'नहीं, ऐसी कोई जरूरत नहीं है। इतनी जल्दी क्या पड़ी है? आगे ज़माना बदलेगा, तब बन जाना।'

मेरी आत्मा बड़ी सुलझी हुई बात कह देती है कभी-कभी। अच्छी आत्मा 'फोल्डिंग' कुर्सी की तरह होनी चाहिए। जरूरत पड़ी तब फैलाकर उस पर बैठ गये; नहीं तो मोड़कर कोने में टिका दिया। जब कभी आत्मा अड़ंगा लगाती है, तब मुझे समझ में आता है कि पुरानी कथाओं के दानव अपनी आत्मा को दूर किसी पहाड़ी पर तोते में क्यों रख देते थे। वे उससे मुक्त होकर बेखटके दानवी कर्म कर सकते थे। देव और दानव में अब भी तो यही फर्क है– एक की आत्मा अपने पास ही रहती है और दूसरे की उससे दूर।

मैंने ऐसे आदमी देखे हैं, जिनमें किसी ने अपनी आत्मा कुत्ते में रख दी है, किसी ने सूअर में। अब तो जानवरों ने भी यह विद्या सीख ली है और कुछ कुत्ते और सूअर अपनी आत्मा किसी-किसी आदमी में रख देते हैं।

आत्मा ने कह दिया, तो मैंने ईमानदार बनने का इरादा फिर त्याग दिया।

राधेश्याम ने भी कोशिश की थी और वह भी असफल हो गया। उसकी एक छोटी-सी दुकान है। उसने पैसे-पैसे की बिक्री का सही हिसाब रखा और उससे बिक्री करके दफ्तर ले गया।

वहां उससे कहा गया कि हिसाब झूठा हैं तब उसे सच्चे हिसाब को सच्चा मनवाने के लिए घूस देनी पड़ी। कह रहा था– मैं भी अब झूठा हिसाब रखूँगा। उसे घूस देकर सच्चा बनवा लिया करूँगा। सच्चाई के लिए घूस देने की अपेक्षा यह ज्यादा अच्छा है कि झूठ के लिए घूस दूँ। इतना महँगा ईमान अपनी हैसियत के बाहर है। इससे तो बेईमानी सस्ती पड़ेगी।

एक स्त्री नौकरी के सिलसिले में एक बड़े आदमी के पास सच्चरित्रता का प्रमाणपत्र लेने गयी थी। बड़े आदमी ने उसे पहले अपने शयन-कक्ष में ले जाना चाहा और बाद में सच्चरित्रता का प्रमाणपत्र देना चाहा। पहले देवता आदमी बनकर ठगते थे, अब आदमी देवता बनकर ठगते हैं।

देखता हूँ कि हर सत्य के हाथ में झूठ का प्रमाणपत्र है। ईमान के पास बेईमानी की सिफारिशी चिट्ठी न हो, तो कोई उसे दो कौड़ी को न पूछे। यही सब सोचकर मैं ढीला हो गया। अब मैं बड़े खुले मन से नम्बर बढ़वाता हूँ।

इन दिनों मुझे बहुत स्नेही मिलते हैं। जो कभी-कभी ही मिलते हैं, साल में एक-दो बार, उन्हें आते देखते ही समझ जाता हूँ कि वे किस काम से आये हैं। मैं मौसम देखकर ऐसे आनेवाले का काम बता सकता हूँ। जुलाई के पहले हफ्ते में, जब घटा छाई हो, धरा ने हरी चूनर ओढ़ रखी हो, आसपास मोर-पपीहा बोल रहे हों, बिजली नीग्रो सुन्दरी के दाँतों की तरह चमक रही हो, ऐसे सुहावने समय में कोई कई महीनों बाद आता दिखे, तो समझ जाता हूँ कि यह गीत गाने नहीं आया, बच्चों को स्कूल-कॉलेज में भर्ती कराने में मदद लेने आया है।

इधर मार्च में जो आता है, नम्बर बढ़वाने या 'पेपर आउट' करवाने आता हैं बात यह है कि सारे 'सिलेबस' और प्रास्पेक्ट्स' गलत हैं। उनमें उन दो पर्चों का उल्लेख नहीं होता, जो जरूरी होते हैं। एक पर्चा शुरू का और दूसरा आखिरी। पहला पर्चा 'पेपर आउट' करने का होता है। और आखिरी नम्बर बढ़वाने का। जो इन्हें अच्छी तरह कर ले, वह पास हो जाता है, पहला दर्जा भी पा सकता है। इन पर्चों को कुछ विद्यार्थी खुद कर लेते हैं। वे प्रतिभावान हैं और उनका भविष्य उज्ज्वल है। कुछ के अभिभावक यह पर्चे करते हैं। ऐसे परमुखापेक्षी विद्यार्थियों का भविष्य सन्दिग्ध है। उनकी अपेक्षा उनके अभिभावक का फिर भी कुछ भविष्य है।

अध्यापकों से संबंध होने के कारण मेरे पास दोनों पक्षों वाले काफी आते हैं। कल जो आये थे, वे मुझे बारात में दो साल पहले पहली और अन्तिम बार मिले थे। मुझे यह पता नहीं था कि उस छोटी मुलाकात में ही उन्होंने इतनी आत्मीयता पैदा कर ली थी कि भाई परीक्षा में बैठने लगा, तो उन्हें मेरी याद सताने लगी। सुना है, विरहिन को बरसात में प्रिय की बड़ी याद सताती है। परीक्षा के मौसम में भी कुछ लोगों का विरह जाग उठता है और उन्हें किन्हीं विशेष परिचितों की याद सताने लगती है वे कहने लगे– 'अमुक प्रोफेसर आपके मित्र हैं। उन्होंने एक पर्चा निकाला है। कुछ 'हिण्ट' दिला दीजिए न!' मैंने सोचा, किसी से मित्रता है, तो इसका कुल इतना उपयोग है कि जब जरूरत पड़े, उससे गलत काम करा लिया जाए। कोई यह तो कहता नहीं है कि अमुक से आपकी मित्रता है, तो उन्हें समझाइए न कि ऐसा गलत काम न करें। न कोई यह कहता है कि अमुक आपका दुश्मन है तो उससे पेपर आउट करवाकर उस साले का ईमान बिगाड़ दीजिए। नहीं, दुश्मन सब सुरक्षित हैं। ईमान तो हमेशा मित्र का बिगाड़ा जायेगा। किसी दिन कोई आकर मुझसे कहेगा– 'अमुक पुलिस अफसर से आपके अच्छे सम्बन्ध हैं। उनसे कहिए न कि घर में हमें सेंध लगा देने दें।'

इन सब पर्चा आउट करवानेवालों और नम्बर बढ़वानेवालों पर हँसा भी नहीं जा सकता। इनमें अधिकांश दया के पात्र हैं। ये बेहद परेशान और घबड़ाये हुए लोग हैं। कोई चाहता है कि लड़का पास हो जाये, तो उससे नौकरी करा दें, जिससे परिवार की दुर्दशा कुछ कम हो। किसी को चिन्ता है कि लड़का फेल हो गया, तो और एक साल उसकी पढ़ाई का खर्च कैसे चलाऊँगा। कोई चाहता है कि लड़की पास हो जाये, तो उसकी शादी करके बोझ हल्का करूँ। बहुत दुखी और परेशान लोग होते हैं, इनमें कुछ इतने दीन होते हैं कि जी होता है, पहले इनके गले लगकर रो लिया जाये!

मेरी परेशानी का कारण दूसरा है। ये अब बेझिझक, निस्संकोच और निर्लज्जता से काम करने लगे हैं। दस साल पहले भी मैं यह काम करा देता था। तब देखता था, नम्बर बढ़वानेवाला, बड़ी झिझक, लज्जा और संकोच से कहता था। लोग खुलकर नहीं कहते थे। तब ऐसी दबी-छिपी चिट्ठी आती थी–'अपने दोस्त, रमेशचन्द्र के भाई सुरेश की मोटर साइकिल, जिस पर

अंग्रेजी में नम्बर 2431 लिखा है, बिगड़ गयी है। वह आपके मित्र सिन्हा के पास सुधरने गयी है। आप उसे सुधरवा दें कि कम-से-कम 40 प्रतिशत तो काम देने लगे।' इसका मतलब है कि सुरेश का रोल नम्बर 2431 है। उसका अंग्रेजी का पर्चा बिगड़ा है। सिन्हा उसे जाँच रहे हैं और उनसे 40 प्रतिशत नम्बर दिलवाना है। अब सीधी चिट्ठी आ जाती है। खुला कार्ड तक आ जाता है। तब नम्बर बढ़वानेवाला बड़ी देर संकोच से बैठा रहता था, दुविधा में पड़ा रहता था, यहाँ-वहाँ की बातें करता था और तब कहीं शरमाकर बगलें झाँकता हुआ नम्बर बढ़वाने की बात कहता था। अब नम्बर बढ़वाने वाला इस तरह आता है, जैसे बाजार में सब्जी खरीदने जाता है। सीधा मेरी आँखों में देखता है और अधिकारपूर्वक कहता है कि नम्बर बढ़वाने हैं।

दस सालों में यह जो प्रगति हो गयी है, यह मुझे परेशान करती है। भयंकर संकोचहीनता है यह। यह साहस मुझे डराता है। मैं इन्तज़ार करता हूँ कि कोई तो थोड़ा संकोच लेकर आये, कि मैं कुछ आश्वस्त हो जाऊँ।

कोई नहीं आता। मुझे लगता है, हम सबने मान लिया है कि आम सड़कें सब बन्द हो गयी है। उन पर तख्ती टँग गयी है—'सड़क मरम्मत के लिए बन्द है।' सालों से ये सड़कें बन्द हैं और सब पगडण्डियों से जा रहे हैं। चलते-चलते पगडण्डियों के काँटे और झाड़ियाँ साफ हो गयी हैं और वे सड़कों जैसी चिकनी और चौड़ी हो गयी हैं। बेझिझक, नंगे पाँव इन पर लोग चल रहे हैं। आम सड़क पर चलनेवाला अब बेवकूफ या पागल समझा जायेगा। अब आम सड़कें खुल भी जायें, तो लोग उन पर चलने में झिझकेंगे। मरम्मतवाले भी इसीलिए ढीले पड़ गये हैं। मगर उपयोग न होने से आम सड़कों पर झाड़ियाँ और जंगली पौधे उगेंगे और वे ढक जायेंगी। तब किसी को आभास भी न होगा कि इस देश में कहीं आम सड़कें भी हैं।

लगता है, आम सड़कें अब भविष्य के पुरातत्ववेत्ता को ही मिलेंगी। वही इन्हें खोजेगा। वह निष्कर्ष निकालकर बतायेगा कि उस जमाने में इस देश में आम सड़कें तो थीं, पर कोई उन पर चलता नहीं था। सब पगडण्डी पकड़ते थे। अनुपयोग के कारण सड़कें दब गयी थीं।

सफलता के महल का सामने का आम दरवाजा बन्द हो गया है। कई लोग भीतर घुस गये हैं और उन्होंने कुण्डी लगा दी है। जिसे उसमें घुसना है, वह रूमाल नाक पर रखकर नाबदान में से घुस जाता है। आसपास सुगन्धित रूमालों की दुकानें लगी हैं। लोग रूमाल खरीदकर उसे नाक पर रखकर नाबदान में से घुस रहे हैं।

जिन्हें बदबू ज्यादा आती है और जो सिर्फ मुख्य द्वार से घुसना चाहते हैं, वे खड़े दरवाज़े पर सिर मार रहे हैं और उनके कपालों से खून बह रहा है।

38-3 fuca/k dk lkj

हरिशंकर परसाई के व्यंग्य निबंध 'पगडंडियों का ज़माना' का अध्ययन आपने कर लिया है। अब आप इस निबंध का सार अपने शब्दों में लिखने का प्रयत्न कीजिए। परसाई जी का यह निबंध आकार में बहुत छोटा है। निबंध में लेखक ने जो कहना चाहा है उसे छोटे-छोटे प्रसंगों के माध्यम से कहा है। निबंध की शुरुआत ही एक प्रसंग से होती है। इस प्रसंग के अनुसार एक व्यक्ति लेखक के पास पहुंचता है और चाहता है कि लेखक अपने परिचित अध्यापक से कहकर उसके बेटे के नंबर बढ़वा दे। लेकिन लेखक इन्कार कर देता है। लेखक उम्मीद करता है कि पौराणिक कथाओं की तरह उसकी ईमानदारी पर देवता प्रसन्न होंगे और उससे वरदान मांगने को कहेंगे लेकिन ऐसा नहीं होता। इसके उलट वह व्यक्ति लेखक से नाराज हो जाता है और शहर में उन्हें बदनाम करने लगता है। इससे लेखक अपनी आत्मा से पूछता है कि क्या इस बदनामी के बाद भी उसे ईमानदारी के मार्ग पर चलते रहना चाहिए या इस मार्ग को छोड़ देना चाहिए। लेखक राधेश्याम नाम के एक छोटे दुकानदार का उदाहरण देता है जो ईमानदारी से अपनी दुकान चलाता है और उसका सही-सही हिसाब रखता है लेकिन जब बिक्री कर के दफ्तर कर जमाने के लिए पहुंचता है तो वहां के अधिकारी यह कहते हुए उससे रिश्वत की मांग करते हैं कि उसका हिसाब-किताब सही नहीं है। दुकानदार इस अनुभव से इसी नतीजे पर पहुंचता है कि ईमानदारी के लिए घूस देने की बजाए बेईमानी के लिए घूस देना ज्यादा अच्छा है। लेखक ऐसे कई उदाहरण देता है जिससे साबित होता है कि वर्तमान समय में ईमानदारी की कोई कीमत नहीं है।

लेखक का कहना है कि परीक्षा से संबंधित लोग दो तरह के भ्रष्ट आचरण की ओर उन्मुख होते हैं। एक परीक्षा के शुरू में पेपर आउट कराने के लिए दूसरे परीक्षा के बाद नंबर बढ़वाने के लिए। इन कामों में विद्यार्थियों के अभिभावक सक्रिय होते हैं लेकिन कुछ विद्यार्थी भी इन अनैतिक कार्यों को करने में नहीं हिचकिचाते। लेखक ऐसे विद्यार्थियों के बारे में व्यंग्य में कहते हैं कि ये विद्यार्थी प्रतिभावान हैं और इनका भविष्य उज्ज्वल हैं।

परसाई जी ने शिक्षा में फैले भ्रष्ट आचरण के पीछे समाज के उस यथार्थ को भी उजागर किया है जो लोगों को अनैतिक आचरण की ओर धकेलती है। कोई चाहता है कि बच्चे को नौकरी लग जाए, कोई इस भय से कि अगर बच्चा फेल हो गया तो, पढ़ाई का खर्च एक साल और उठाना पड़ेगा और कोई अपनी लड़की के हाथ पीले करना चाहता है। लेकिन लेखक यह भी देख रहा है कि पहले अनैतिक कार्य करते हुए लोग लज्जा महसूस करते थे। वे हिचकिचाते और माफी सी मांगते हुए नंबर बढ़वाने के लिए कहते थे। लेकिन अब यह काम बेझिझक, निस्संकोच और निर्लज्जता से करते हैं। सफलता का जो मुख्य द्वार है बंद हो गया है और अंदर घुसने के लिए नाबदान का इस्तेमाल किया जा रहा है।

38-4 lanHkZ lfgr O;k[;k

'पगडंडियों का ज़माना' एक छोटा सा व्यंग्य निबंध है लेकिन इसमें ऐसे बहुत से अंश है जिसकी विस्तृत व्याख्या की जा सकती है। लेखन ने जिस व्यंग्यात्मक शैली का इस्तेमाल किया है उसमें लेखक अपनी बात कहने के लिए कई तरह की प्रविधियों का इस्तेमाल कर सकता है। ऐसे अंश कथ्य, भाषिक प्रयोग और शैली की विशिष्टता की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। यहां कुछ ऐसे अंश व्याख्या के लिए प्रस्तुत हैः

1) *वत्स, तू परीक्षा में खरा उतरा। बोल, तुझे क्या चाहिए? हम वर देने के 'मूड' में हैं। बोल, हिंदी साहित्य के इतिहास में तेरे ऊपर एक अध्याय लिखवा दूँ? या कहे तो, किसी समीक्षक को तेरे घर में पानी भरने की ड्यूटी लगा दूँ?*

lanHkZ% इस व्यंग्य निबंध के लेखक प्रख्यात व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई है जिन्होंने व्यंग्य विधा को रचनात्मक उत्कर्षता प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उक्त निबंध में उन्होंने समाज में व्याप्त एक कुप्रवृत्ति को अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है। परीक्षा में नबंर बढ़वाने और पेपर आउट कराने की प्रवृत्ति शिक्षा और समाज के लिए बहुत घातक है। इसी को उन्होंने इस निबंध में व्यंग्य के माध्यम से कहा है।

O;k[;k% इस निबंध के आरंभ में लेखक अपने को ऐसे भक्त के रूप में प्रस्तुत करता है जो भगवान द्वारा ली जाने वाली परीक्षा में खरा उतरा है और भगवान उससे प्रसन्न होकर वरदान प्रदान कर रहे हैं। आजकल के जमाने में नंबर बढ़वाने और पेपर आउट करवाने के लिए पड़ने वाले दबाव का सामना करना कठोर तपस्या के समान है। पौराणिक कथाओं में ईश्वर और देवताओं द्वारा भक्त की कठोर परीक्षा लेने के लिए भक्त की तपस्या को भंग करने का प्रयास किया जाता है। लेखक का विश्वास है कि जो ऐसे दबाव में नहीं आता भगवान उससे प्रसन्न होकर जरूर वरदान देंगे। परसाई जी एक लेखक हैं और एक लेखक की सबसे बड़ी इच्छा यही होती है कि उसका नाम साहित्य के इतिहास में अमर हो जाए और समीक्षक उसके लिखे की प्रशंसा करे। इसलिए वह ईश्वर से वरदान के रूप में भी इसी इच्छाओं की कल्पना करता है। साहित्य के इतिहास में लेखक के ऊपर एक अध्याय लिखा जाना और समीक्षक का लेखक के घर में पानी भरना इन्हीं इच्छाओं की अभिव्यक्ति है। पौराणिक कथा का पूरा प्रसंग व्यंग्यात्मकता पैदा करने के लिए है।

fo'ks"k%

1) लेखक ने शिक्षा और साहित्य दोनों क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्ट आचरण पर व्यंग्य किया है।
2) इसके लिए लेखक ने पौराणिक प्रसंग का आधुनिक संदर्भ में प्रयोग किया है। इससे लेखक के कथ्य में व्यंग्यात्मकता आ गयी है। ऐसे प्रसंगों से पाठक परिचित होता है इसलिए वह आसानी से व्यंग्यात्मकता को समझ पाता है।

   हम यहां ऐसे दो अंश और प्रस्तुत कर रहे हैं जिनका व्याख्या आप स्वयं करने का प्रयास करें।

vH;kl

2) *अच्छी आत्मा 'फोल्डिंग' कुर्सी की तरह होनी चाहिए। जरूरत पड़ी तब फैलाकर उस पर बैठ गये; नही ंतो मोड़कर कोने में टिका दिया। जब कभी आत्मा अड़ंगा लगाती है, तब मुझे समझ में आता है कि पुरानी कथाओं के दानव अपनी आत्मा को दूर किसी पहाड़ी पर तोते में क्यों रख देते थे। वे उससे मुक्त होकर बेखटके दानवी कर्म कर सकते थे।*

3) *मुझे लगता है, हम सबने मान लिया है कि आम सड़कें सब बन्द हो गयी है। उन पर तख्ती टँग गयी है'—सड़क मरम्मत के लिए बन्द है।' सालों से ये सड़कें बन्द हैं और सब पगडण्डियों से जा रहे हैं। चलते-चलते पगडण्डियों के काँटे और झाड़ियाँ साफ हो गयी हैं और वे सड़कों जैसी चिकनी और चौड़ी हो गयी हैं। बेझिझक, नंगे पाँव इन पर लोग चल रहे हैं। आम सड़क पर चलनेवाला अब बेवकूफ या पागल समझा जायेगा।*

38-5 fucU/k dh vUroZLrq

हरिशंकर परसाई द्वारा लिखित इस व्यंग्य निबंध का विषय है शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार। इसी विषय को व्यंग्य का निशाना बनाया है। शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान और कौशल प्राप्त करना। ज्ञान और कौशल के बहुत से क्षेत्र हो सकते हैं। बालक जब बोलने और समझने लगता है तो उसे पाठशाला में भर्ती कराकर माता-पिता उसे शिक्षा दिलवाते हैं। जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है उसकी सीखने की क्षमता का विकास होता जाता है। उसने पूरे साल कितना सीखा है, इसे जांचने के लिए समय-समय पर परीक्षा ली जाती है और परीक्षा में आये अंकों के आधार पर उसे आगे की कक्षा में प्रवेश दिया जाता है। दसवीं और उसके बाद की परीक्षाओं का महत्त्व ज्यादा है क्योंकि उसमें प्राप्त अंकों के आधार पर ही विद्यार्थी को आगे की कक्षा में प्रवेश मिलता है। जिस क्षेत्र में वह पढ़ना चाहता है उस क्षेत्र में आवश्यक अंक हासिल करने पर ही उसे प्रवेश दिया जाता है। अंकों के आधार पर ही उसे नौकरी मिलती है। इसलिए अंकों का शिक्षा के क्षेत्र में विशेष महत्त्व है। विद्यार्थी को कितने अंक प्राप्त होंगे यह उसकी साल भर की मेहनत और सीखने की क्षमता पर निर्भर करता है। लेकिन बहुत से विद्यार्थी और विशेष रूप से उनके माता-पिता अधिक अंक हासिल करने के लिए जोड़-तोड़ का सहारा लेते हैं। उनकी कोशिश होती है कि परीक्षा का प्रश्नपत्र उन्हें पहले से मालूम हो ताकि उसीके अनुरूप और उतनी ही तैयारी करे। कुछ इस बात का प्रयत्न करते हैं कि परीक्षक तक पहुंच लगाकर परीक्षार्थी की वास्तविक योग्यता से ज्यादा अंक उन्हें मिल जाए। इसके लिए परीक्षक तक सिफारिश लगाने की कोशिश करते हैं। पेपर आउट कराने और नंबर बढ़वाने की इस प्रवृत्ति को ही हरिशंकर परसाई ने अपने इस व्यंग्य निबंध का विषय बनाया है।

'पगडंडियों का ज़माना' शीर्षक ही इस प्रवृत्ति का सूचक है। परीक्षा में पास होने और अच्छे नंबर लाने का कोई शॉर्टकट नहीं अपनाया जाना चाहिए। अध्ययन से ही विद्यार्थी को अच्छे नंबर प्राप्त करने चाहिए। अन्य कोई तरीका नहीं अपनाया जाना चाहिए। ऐसा कोई भी तरीका अनैतिक और अन्यायपूर्ण है। वह उन विद्यार्थियों के साथ अन्याय है जो अच्छे नंबरों के लिए सिर्फ अध्ययन पर निर्भर रहते हैं। इसके बावजूद हम देखते हैं कि बहुत से विद्यार्थी और अभिभावक परीक्षा में कामयाबी के लिए गलत रास्ते चुनते हैं। इन्हें ही लेखक ने पगडंडियां कहा है। लेखक ने सड़क और पगडंडी का रूपक अपनी बात कहने के लिए चुना है। परीक्षा में अध्ययन करके अच्छे नंबर लाना आम रास्ते की तरह है और पेपर आउट कराके या सिफारिश द्वारा नंबर बढ़वाना लेखक के अनुसार पगडंडियों का रास्ता है। लेखक का कहना है कि आजकल लोग आम रास्ते को छोड़कर पगडंडियों को अपना रहे हैं और इसीलिए वह आजकल के ज़माने को पगडंडियों का ज़माना कह रहा है।

इस व्यंग्य निबंध की शुरुआत लेखक एक पौराणिक प्रसंग से करते हैं। हिंदू पुराणों में ऐसे कई प्रसंग आते हैं जहां कोई व्यक्ति तपस्या करता है और उसकी कठोर तपस्या को भंग करने के लिए भगवान उसकी तरह तरह से तपस्या लेते हैं और जब वह तपस्या में उत्तीर्ण हो जाता है तो भगवान उसे वरदान देते हैं। यहां परसाई जी ऐसे ही पौराणिक मान्यता का उपयोग करते हैं। लेखक के पास बहुत से लोग नंबर बढ़वाने के लिए आते हैं। वे एक ऐसे ही प्रसंग का उल्लेख करते हुए बताते हैं कि एक दिन वह ईमानदार रहने का संकल्प करते हैं और उसी दिन एक व्यक्ति उनके पास अपने बेटे के नंबर बढ़वाने के लिए लेखक के किसी अध्यापक मित्र से सिफारिश करने के लिए कहता है। लेखक सोचता है कि उसकी परीक्षा लेने के लिए स्वयं

इंद्र या विष्णु वेश बदलकर आये हैं। इसलिए वह उस व्यक्ति को यह कहते हुए कि *"मैं इसे अनुचित और अनैतिक मानता हूँ"* नंबर बढ़वाने से मना कर देता है। लेखक को उम्मीद होती है कि अब भगवान अपने असली रूप में प्रकट होंगे और प्रसन्न होकर उसे वरदान देंगे। लेकिन लेखक की उम्मीदों के विपरीत ऐसा कुछ नहीं होता। लड़के का पिता नाराज होकर चला जाता है और बाद में लेखक को यह कहते हुए बदनाम करता है कि *"आजकल वह साला बड़ा ईमानदार बन गया है"*। लेखक का नंबर बढ़ाने से इन्कार करना पूरी तरह सही था लेकिन बदले में उसे गालियां मिलती है। लेखक इस प्रसंग के माध्यम से कहना चाहता है कि आजकल ईमानदार व्यक्ति की लोग प्रशंसा नहीं करते वरन गालियां देते हैं। इन गालियों से विचलित होकर ज्यादातर लोग ईमानदारी का रास्ता त्याग देते हैं। एक अन्य प्रसंग का उदाहरण देते हुए बताता है कि एक ईमानदार दुकानदार अगर सही-सही हिसाब-किताब रखे तो भी उसकी ईमानदारी स्वीकार नहीं की जाती और ऐसे व्यक्ति से भी रिश्वत मांगी जाती है। तब व्यक्ति यही सोचता है कि जब ईमानदार रहकर भी रिश्वत देनी पड़ती है तो बेईमानी के रास्ते पर चलना ही क्या बेहतर नहीं है?

लेखक ने माना है कि नंबर बढ़वाने का प्रयास करने वाले सभी लोग आपराधिक मनोवृत्ति के नहीं होते। उनकी पारिवारिक और सामाजिक मजबूरियां भी काम कर रही होती है। मसलन, कोई चाहता है कि लड़का पास हो जाए तो उसकी नौकरी लग जाए। किसी को अपनी बेटी की शादी की फिक्र है तो किसी को फिक्र है कि लड़का फेल हो गया तो परिवार पर आर्थिक बोझ बढ़ जाएगा। ऐसे लोग नफ़रत के नहीं बल्कि दया के पात्र हैं। ये परेशान और डरे हुए लोग हैं।

लेखक सिफारिश के लिए आने वाले लोगों के बीच अंतर भी करता है। पहले लोग सिफारिश के लिए कहते हुए संकोच करते थे, बड़ी झिझक के साथ कहते थे। लुक-छिपकर। कहीं इस बात की भनक किसी अन्य को न लग जाए कि शर्मिंदा होना पड़े। लेकिन आजकल लोग *"बेझिझक, निस्संकोच और निर्लज्जता"* के साथ सिफारिश करने के लिए कहते हैं। यह अधोपतन की पराकाष्ठा है। लेखक का कहना है कि लोगों ने मान लिया है कि आम रास्ते पर चलने में बुद्धिमानी नहीं है। पगडंडियों पर चलने में ही समझदारी है। पगडंडी यानी नंबर बढ़वाने और पेपर आउट करवाने का शार्टकट ताकि परीक्षा में अच्छे नंबर बिना मेहनत किये हासिल हो सके। मेहनत का रास्ता लोगों को कठिन लगता है। आजकल पगडंडियों पर चलने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है और इसीलिए लेखक आजकल के ज़माने को पगडंडियों का ज़माना कहता है। शीर्षक इसी अर्थ में सार्थक है।

ck/k iz'u

1. इस व्यंग्य निबंध में लेखक ने किस तरह के भ्रष्टाचार को व्यंग्य का विषय बनाया है?
   क) आर्थिक भ्रष्टाचार को
   ख) रिश्वतखोरी को
   ग) शिक्षा में व्याप्त भ्रष्टाचार को
   घ) निबंध का विषय भ्रष्टाचार नहीं है ( )
2. निबंध में पगडंडी का क्या निहितार्थ है?
   क) छोटा रास्ता
   ख) मुख्य रास्ता
   ग) कच्चा रास्ता
   घ) सफलता का शार्टकट ( )
3. लोग सफलता के लिए मुख्य द्वार का इस्तेमाल क्यों नहीं करते?

   ....

   ....

   ....

38-6 y[kdh; O;fDrRo dh vfHkO;fDr

हरिशंकर परसाई प्रख्यात व्यंग्यकार हैं। इन्होंने इस विधा में ही कहानी, निबंध, उपन्यास आदि की रचना की है। 'पगडंडियों का ज़माना' एक व्यंग्य निबंध है और इसमें उनके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। परसाई जी की पहचान उनकी व्यंग्य शैली है। वह

THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

जिस किसी भी विषय को उठाते हैं, उसमें व्यंग्य के लिए अवसर निकाल लेते हैं। इस निबंध में भी उन्होंने आरंभ से अंत तक व्यंग्य के माध्यम से अपनी बात कही है। व्यंग्यात्मकता के साथ विनोदप्रियता उनका दूसरा गुण है जिसे भी आप निबंध में कदम-कदम पर देख सकते हैं। मसलन, निबंध के आरंभ में ही पौराणिक प्रसंग का उपयोग करते हुए जब वे वरदान मांगने का उल्लेख करते हैं, तो वहां एक लेखक की आकांक्षा को व्यक्त करने में विनोदप्रियता का सहारा लिया है। उन्होंने देवता के मुख से जो बातें कहलाई हैं वहां लेखकों की मनोगत इच्छाओं को विनोद भाव से पेश किया है। वे देवता के मुख से कहलाते हैं, *"वत्स, तू परीक्षा में खरा उतरा। बोल, तुझे क्या चाहिए? हम वर देने के 'मूड' में हैं। बोल, हिन्दी साहित्य के इतिहास में तेरे ऊपर एक अध्याय लिखवा दूँ? या कहे तो, किसी समीक्षक की तेरे घर में पानी भरने की ड्यूटी लगा दूँ?"* देवता द्वारा वरदान देने की इस भाषा में पौराणिक शैली की पैरोडी बनाई गई है और यहां लेखक ने व्यंग्य के साथ विनोदप्रियता को भी अभिव्यक्त किया है। "हम वर देने के 'मूड' में हैं" इसका उदाहरण है। इसी तरह हिंदी साहित्य के इतिहास में एक अध्याय लिखवाना या समीक्षक को पानी भरने की ड्यूटी पर लगाने की बात करने के पीछे भी विनोद-प्रियता को देखा जा सकता है। व्यंग्य के साथ विनोद का संयोग होने से रचना पठनीय बन गयी है।

हरिशंकर परसाई का व्यंग्य निरुद्देश्य नहीं होता। उसके पीछे उनकी जीवन दृष्टि काम कर रही होती है। लेखक शिक्षा में व्याप्त भ्रष्टाचार के बहाने उस प्रवृत्ति को अपने व्यंग्य का निशाना बनाता है जो अनैतिक और अन्यायपूर्ण आचरण को सामाजिक स्वीकृति दिलाती है। शिक्षा में कामयाबी प्राप्त करने का एक ही तरीका है कि विद्यार्थी अधिक से अधिक मेहनत करे और मेहनत से प्राप्त अंकों से संतुष्ट हो। अगर विद्यार्थी पूरे साल मेहनत करेगा तो उसे या उसके अभिभावकों को कोई अनुचित तरीका अपनाने की जरूरत नहीं होगी। लेकिन व्यवहार में ऐसा नहीं देखते। विद्यार्थियों से ज्यादा उनके माता-पिता अपने बच्चों को कामयाब बनाने के लिए गलत तरीके अपनाते हैं। इसके पीछे उनकी मजबूरी भी हो सकती है लेकिन यह है अनुचित ही। परसाई जी प्रगतिशील विचारों में यकीन रखते थे और प्रत्येक सामाजिक समस्या को समाज के व्यापक हितों की दृष्टि से परखते थे। इस व्यंग्य निबंध में उन्होंने शिक्षा के माध्यम से अपनी बात कही है लेकिन यह सिर्फ शिक्षा तक सीमित नहीं है। सामाजिक जीवन के प्रत्येक हिस्से में इस प्रवृत्ति को देखा जा सकता है। लोग अपने छोटे-छोटे स्वार्थों की पूर्ति के लिए गलत तरीकों से समझौता करते हैं। आम रास्ते को छोड़कर पगडंडियों पर चलने की बढ़ती प्रवृत्ति परसाई जी के लिए चिंता का विषय है।

लेखक इस बात से भी चिंतित है कि लोगों में अनैतिक आचरण को लेकर जो शर्मींदगी का भाव दिखाई देता था, अब वह शर्मींदगी का भाव लोगों में कम हो गया है और अब लोग निस्संकोच और निर्लज्ज होकर सिफारिश के लिए कहते हैं। यदि कोई ऐसा काम करने से इन्कार कर देता है तो उसे अपमानित करने से भी लोग नहीं झिझकते।

cks/k iz'u

4. हरिशंकर परसाई की जीवन दृष्टि की विशेषता हैः
   क) प्रगतिशीलता
   ख) सामाजिक दायित्वबोध
   ग) ईमानदारी
   घ) उपर्युक्त सभी ( )
5. परसाई जी के लेखकीय व्यक्तित्व की केंद्रीय विशेषता हैः
   क) व्यंग्यात्मकता
   ख) काव्यात्मकता
   ग) हास्य
   घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं ( )
6. परसाई जी को व्यंग्यकार क्यों माना जाता है?

   ....

   ....

   ....

   ....

38.7 संरचना-शिल्प

परसाई जी की यह रचना व्यंग्य निबंध है। इसमें निबंध की विशेषताएं भी हैं और व्यंग्य की भी। व्यंग्य केवल शैली तक सीमित नहीं है बल्कि निबंध के प्रत्येक पक्ष में इसे देखा जा सकता है। निबंध के कथ्य, भाषा और शैली तीनों में व्यंग्य है। शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार पर परसाई जी वैचारिक निबंध भी लिख सकते थे लेकिन इस पर उन्होंने व्यंग्य निबंध लिखा।

कथ्य में व्यंग्य

व्यंग्य निबंध होने के कारण परसाई जी ने इससे जुड़े सभी पक्षों को अभिधात्मक रूप में न प्रस्तुत कर उसे व्यंग्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया। मसलन, निबंध की शुरुआत में ही उनका यह कहना कि मैंने आज ही ईमानदार बन जाने की प्रतिज्ञा की है और उसके बाद किसी व्यक्ति का उनके पास सिफारिश के लिए पहुंचना एक ऐसी स्थिति को पैदा करता है जैसे देवताओं ने ईमानदार बने रहने वाले व्यक्ति की परीक्षा लेने के लिए उसकी तपस्या को भंग करने की कोशिश कर रहे हों। लेखक का सिफारिश से मना करना और उस व्यक्ति का भुनभुनाते हुए जाना और बाद में लेखक को बदनाम करना स्थितियों में निहित विडंबना को ध्वनित करता है। इस पूरे प्रसंग को पौराणिक प्रसंग का रूप देना रचना को रोचक भी बना देता है और अर्थवान भी। इस घटना के बाद लेखक का अपनी आत्मा से संक्षिप्त संवाद भी मानीखेज है। ईमानदारी की राह पर चलकर अपमानित होने के बाद लेखक अपनी आत्मा से पूछता है कि *"क्या गाली खाकर बदनामी करवाकर मैं ईमानदार बना रहूँ?"* आत्मा उत्तर देती है कि ऐसी कोई जरूरत नहीं है। स्पष्ट ही यहां लेखक ने पुराण कथाओं और आत्मा की अवधारणा पर भी व्यंग्य किया है। अगर आत्मा मनुष्य को अच्छे रास्ते पर ले जाती है तो फिर लोग बुराई का रास्ता क्यों पकड़ते हैं। इसीलिए आगे वह फोल्डिंग कुर्सी का रूपक प्रस्तुत करते हुए लोगों के अवसरवाद पर व्यंग्य किया है। वे लिखते हैं, *"अच्छी आत्मा 'फोल्डिंग' कुर्सी की तरह होनी चाहिए। जरूरत पड़ी तब फैलाकर उस पर बैठ गये; नही तो मोड़कर कोने में टिका दिया।"* लोग ऐसा ही करते हैं। जब जरूरत होती है आत्मा की दुहाई देने लगते हैं और जब स्वार्थ का प्रश्न आता है तो लोग आत्मा को भूल जाते हैं। परसाई जी अपनी बात को सशक्त रूप में कहने के लिए अलग-अलग क्षेत्रों से उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। ईमानदार दुकानदार, नौकरी की इच्छा रखने वाली युवा स्त्री भी समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का शिकार होती हैं। परसाई जी निबंध में व्यंग्य का कोई भी अवसर नहीं छोड़ते। नंबर बढ़वाने और पेपर आउट कराने के लिए विद्यार्थियों के अभिभावक ही अध्यापकों से संपर्क करते हैं लेकिन कुछ विद्यार्थी भी इसके लिए इधर-उधर भटकते हैं। यहां व्यंग्य करते हुए परसाई जी लिखते हैं कि जो विद्यार्थी इस तरह के कामों के लिए स्वयं प्रयत्न करते हैं वे प्रतिभावान हैं और उनका भविष्य उज्ज्वल हैं, उन विद्यार्थियों की तुलना में जिनके अभिभावक इसके लिए प्रयत्न करते हैं। अपने अभिभावकों पर निर्भर रहने वाले विद्यार्थियों का भविष्य लेखक के अनुसार संदिग्ध है। हां उनके अभिभावकों का भविष्य अवश्य उज्ज्वल है। इस व्यंग्य का निहितार्थ यह है कि आजकल चारों ओर भ्रष्टाचार का बोलबाला है। गलत तरीके अपनाकर ही लोग आगे बढ़ते हैं। वे विद्यार्थी जो ऐसे कामों के लिए भी अपने माता-पिता पर निर्भर हैं वे आगे कुछ कर पाएंगे इसकी संभावना बहुत कम है। इस तरह पूरे निबंध में कथ्य को वे व्यंग्य के माध्यम से ही आगे बढ़ाते जाते हैं।

शैली में व्यंग्य

यह निबंध व्यंग्यात्मक शैली में है। व्यंग्य के लिए परसाई जी ने निबंध को शुद्ध निबंध की तरह प्रस्तुत करने की बजाए उसे विभिन्न प्रसंगों और घटनाओं का सहारा लेते हुए प्रस्तुत किया है। इससे उनके निबंध में किस्सागोई की विशेषता का भी समावेश हो गया है। इससे उनके व्यंग्य को ठोस आधार मिल गया है। इसके अलावा वे रूपकों और प्रतीकों का भी सहारा लेते हैं। पुराण कथा के माध्यम से अपनी बात कहना भी उनके व्यंग्य लेखन की एक शैलीगत विशेषता है। पगडंडी और मुख्य मार्ग रूपक भी हैं और प्रतीक भी। इसी तरह फोल्डिंग कुर्सी के प्रतीक को भी वे रूपक की तरह इस्तेमाल करते हैं। परसाई जी की व्यंग्य शैली की विशेषता यह भी है कि वे विरोधी स्थितियों का कंट्रास पैदा करते हैं और कई बार ऐसा करते हुए वे व्यंग्य में निहित विडंबना को भी उजागर करते हैं। लेखक की व्यंग्य शैली संवाद की तरह है। वे पाठकों से बातचीत करते प्रतीत होते हैं। इससे पाठक और लेखक के बीच की दूरी कम

हो जाती है और पाठक लेखक के बीच आत्मीय रिश्ता बन जाता है। पाठ को लेखक की बात चुभती नहीं और वह व्यंग्य के माध्यम से पाठक से जुड़ भी जाता है।

Hkk"kk esa O;aX;

परसाई जी की भाषा में व्यंग्य शब्दों के चयन, पद रचना और वाक्य रचना तीनों में प्रकट होता है। आरंभ में ही जब वे देवता की ओर से वरदान की कल्पना करते हैं तो वहां प्रयुक्त वाक्य रचना ही व्यंग्यपूर्ण है। *"वत्स! तू परीक्षा में खरा उतरा। बोल, तुझे क्या चाहिए? हम वर देने के 'मूड' में है।"* यहां संबोधन के लिए वत्स शब्द व्यंग्यात्मक है। इसी तरह वर देने के मूड में है, में अंग्रेजी शब्द मूड का प्रयोग भी व्यंग्यात्मक है और वत्स से कंट्रास भी पैदा करता है। इसी तरह बोल हिंदी साहित्य के इतिहास में तेरे ऊपर एक अध्याय लिखवा दूँ या समीक्षक को घर में पानी भरने की ड्यूटी पर लगवाने में भी व्यंग्यात्मकता है। यहां पुराण कथाओं पर भी व्यंग्य है और साहित्य समीक्षा और इतिहास लेखन की वर्तमान दशा पर भी व्यंग्य है। आत्मा को 'फोल्डिंग कुर्सी' कहना या मनुष्य की आत्मा का कुत्ते या सूअर में होने में भी व्यंग्य है। लेकिन जब परसाई जी यह कहते हैं कि कुछ कुत्ते और सूअर ने अपनी आत्मा आदमी में रख दी है तो यहां व्यंग्य में तीखा प्रहार भी दिखाई देता है।

निबंध में ईमानदार दुकानदार को जब अपनी ईमानदारी के लिए भी घूस देनी पड़ती है तो उसके द्वारा यह कहलाने में भी तीखा व्यंग्य है कि *"सच्चाई के लिए घूस देने की अपेक्षा यह ज्यादा अच्छा है कि झूठ के लिए घूस दूँ"।*

हरिशंकर परसाई के व्यंग्य में गहरी अर्थवत्ता भी छिपी होती है। ऊपर जिस वाक्य को उद्धृत किया गया है वहां स्थितियों की विडंबना साफ झलकती है। जब वे स्थितियों का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं कि *"कृहर सत्य के हाथ में झूठ का प्रमाणपत्र है"* या *"ईमान के पास बेईमानी की सिफारिशी चिट्ठी न हो, तो कोई उसे दो कौड़ी का न पूछे"* तो स्थितियों में निहित विडंबना तो व्यक्त होती ही है, साथ ही सूत्र रूप में बात को गहन अर्थवता प्रदान करने की उनकी भाषिक क्षमता का ज्ञान भी होता है। यह अर्थवत्ता अपने चरम रूप में निबंध के अंतिम परिच्छेद में दिखायी देती है जब वे मौजूदा हालात में ईमानदारी पर चलने वाले लोगों की त्रासद स्थिति को उजागर करते हैं। जिन लोगों को बेईमानी के रास्ते पर चलना अब भी गवारा नहीं है उनकी स्थिति उस व्यक्ति की तरह है जो मुख्य द्वार से जाने के अपने प्रयत्न में अपना सिर तो फुड़वा लेता है लेकिन अंदर प्रवेश नहीं कर पाता। वे लिखते हैं, *"जिन्हें बदबू ज्यादा आती है और जो सिर्फ मुख्य द्वार से घुसना चाहते हैं वे खड़े दरवाजे पर सिर मार रहे हैं और उनके कपालों से खून बह रहा है"*।

38-8 izfrik|

'पगडंडियों का ज़माना' एक व्यंग्य निबंध है और इस निबंध के माध्यम से हरिशंकर परसाई ने शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है। यह निबंध मुख्यतः स्कूली शिक्षा से संबंधित है और दो तरह के भ्रष्टाचार का उल्लेख इसमें किया गया है। नंबर बढ़वाना और पेपर आउट करवाना। इन दोनों का संबंध परीक्षा प्रणाली से है। इसके लिए किस तरह विद्यार्थियों के अभिभावक अध्यापकों से संपर्क करते हैं या ऐसे किसी परिचित व्यक्ति से संपर्क करते हैं जिनके माध्यम से उस शिक्षक तक सिफारिश पहुंचायी जा सकती है जिसने पेपर बनाया है या जिसे कापियां जांचनी है। नंबर बढ़वाने की कोशिश करना या परीक्षा से पहले पेपर के बारे में जानकारी हासिल करना अपराध भी है और अनैतिक भी है। लेकिन हम जानते हैं कि लोग इस काम को निस्संकोच होकर बेशर्मी से करते हैं। यह प्रवृत्ति सिर्फ स्कूली शिक्षा तक सीमित नहीं है बल्कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी इसे देखा जा सकता है। इससे उन विद्यार्थियों का मनोबल गिरता है जो साल भर मेहनत करते हैं और अपनी मेहनत के बल पर परीक्षा में अच्छे अंक हासिल करने की उम्मीद लगाते हैं। लेकिन जब उनके बराबर या उनसे ज्यादा अंक वे विद्यार्थी हासिल कर लेते हैं जिन्होंने न तो उतनी मेहनत की है और न ही जिनमें उतनी प्रतिभा है, तो उनको आघात लगता है। यही नहीं उन्हें नुकसान भी उठाना पड़ सकता है और इस बात की संभावना भी रहती है कि ये विद्यार्थी भी भविष्य में अच्छे अंक प्राप्त करने के लिए ऐसे ही अनैतिक तरीके अपनाएं।

शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्ट आचरण जीवन के दूसरे क्षेत्रों में भी देखा जा सकता है। एक ईमानदार दूकानदार को यदि रिश्वत देनी पड़े या एक स्त्री को नौकरी हासिल करने के लिए अपने चरित्र का सौदा करना पड़े तो यह बहुत ही शर्मनाक बात है। परसाई जी ने अपने इस निबंध में समाज में इसी पतनशीलता को व्यंग्य का निशाना बनाया है। मुख्य रूप से शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार पर उन्होंने व्यंग्य किया है लेकिन इसके साथ जीवन के अन्य क्षेत्रों का भी उल्लेख उन्होंने किया है। परसाई जी ने इस निबंध के माध्यम से कहा है कि लोग कामयाब होने के लिए मेहनत का सहारा लेने की बजाए ऐसे शॉर्टकट ढूंढते हैं जो भले ही अनैतिक और अपराधपूर्ण हो लेकिन जिनमें कामयाबी सुनिश्चित होती है। लेकिन ऐसा करते हुए वह अपने देश और समाज को कितना नुकसान पहुंचाते हैं इस बार में नहीं सोचते। वे सिर्फ अपने बारे में और अपने बच्चों के बारे में सोचते हैं। यह ठीक है कि प्रत्येक व्यक्ति की कुछ न कुछ मजबूरियां होती हैं लेकिन मजबूरियों का अर्थ यह नहीं है कि ऐसे मार्ग अपनाए जाएं जो अपराध भी है और अनैतिक भी है।

हरिशंकर परसाई जी इस व्यंग्य निबंध में यह भी बताना चाहते हैं कि नंबर बढ़वाने और पेपर आउट कराने जैसी प्रवृत्तियां बहुत आम हो गयी है। कह सकते हैं कि इन्हें समाज की स्वीकृति मिल चुकी है। लोग इसे ही स्वाभाविक मानने लगे हैं। यही कारण है कि ऐसे काम करते हुए लोगों को न तो संकोच होता है और न ही शर्मींदगी महसूस होती है। इसके विपरीत जो इन कामों में शामिल नहीं है और इनका विरोध करते हैं लोग उनका मजाक उड़ाते हैं, उनका अपमान करते हैं। निबंध के अंत में ऐसे लोगों के कपाल से खून बहते हुए दिखाने का तात्पर्य यही है।

ck/k iz'u

7. आत्मा को फोल्डिंग कुर्सी क्यों कहा गया है?

8. *'अपने दोस्त रमेशचंद के भाई सुरेश की मोटर साइकिल, जिस पर अंग्रेजी में 2431 लिखा है, बिगड़ गयी है। वह आपके मित्र सिन्हा के पास सुधरने गयी है। आप उसे सुधरवा दें कि कम से कम 40 प्रतिशत तो काम देने लगे'।*
   इन पंक्तियों में क्या संदेश संप्रेषित किया गया है?

9. इस निबंध में मुख्य मार्ग किसे कहा गया है?

10. 'इन दिनों मुझे बहुत स्नेही मिलते हैं' इस कथन में 'स्नेही' में क्या व्यंग्यार्थ छिपा है, इसे स्पष्ट कीजिए।

vH;kl

3. 'पगडंडियों का ज़माना' निबंध में शिक्षा की किस समस्या का उल्लेख किया गया है? इस समस्या का महत्त्व क्या है?

4. इस निबंध की भाषा और शैली की विशेषताओं का सोदाहरण विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

....

....

....

5. निबंध के शीर्षक 'पगडंडियों का ज़माना' का निहितार्थ स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

38-9 lkjka'k

स्नातक उपाधि कार्यक्रम के पाठ्यक्रम 'हिंदी गद्य' (बीएचडीई-101) की 38 वीं इकाई और छठे खंड की यह छठी इकाई है। इस इकाई में आपने प्रख्यात व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई के व्यंग्य निबंध 'पगडंडियों का ज़माना' का अध्ययन किया है। साथ ही, आपने इस निबंध की अंतर्वस्तु, लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव, भाषा और शैली की विशेषताएं और प्रतिपाद्य का भी अध्ययन किया है। निबंध के कुछ महत्त्वपूर्ण अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या के बारे में भी आपने इस इकाई में अध्ययन किया है। आपसे उम्मीद की जाती है कि आप परसाई जी के इस निबंध और इस इकाई का ध्यानपूर्वक अध्ययन करेंगे।

- परसाई जी का यह निबंध शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार के बारे में है। परसाई जी ने वास्तविक जीवन के कुछ उदाहरणों के द्वारा इस भ्रष्टाचार के बारे में लिखा है। परसाई जी ने भ्रष्ट आचारण की इस व्यापक प्रवृत्ति पर गहरी चिंता जताई है। उनका मानना है कि नंबर बढ़वाने और पेपर आउट करवाने जैसी प्रवृत्तियां इसलिए बढ़ती है क्योंकि लोग मेहनत का श्रमसाध्य रास्ता छोड़कर ऐसा शॉर्टकट ढूंढना चाहते हैं जिससे जल्दी कामयाबी मिल सके भले ही वह रास्ता गलत हो। परसाई जी ने इसे ही व्यंग्य का निशाना बनाया है।

- परसाई जी की लेखनी पर उनके व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव दिखायी देता है। वे प्रगतिशील दृष्टिकोण के लेखक हैं और उनकी लेखनी में भी उनका दृष्टिकाण अभिव्यक्त होता है। परसाई जी ने व्यंग्य को एक शैली की तरह नहीं वरन विधा की तरह अपनाया है। उन्होंने चाहे जिस विधा में लिखा हो, लेकिन व्यंग्य उनके लेखन के केंद्र में रहता है। इसके लिए जीवन के रोजमर्रा के प्रसंग लेते हैं और उन्हीं से व्यंग्य की सृष्टि करते हैं।

- परसाई जी के इस व्यंग्य निबंध में अंतर्वस्तु, भाषा और शैली तीनों में व्यंग्य को देखा जा सकता है। परसाई जी निबंध की अंतर्वस्तु को इस तरह प्रस्तुत करते हैं जिससे व्यंग्य की अभिव्यक्ति हो, इसी तरह उनके निबंध की शैली में भी व्यंग्यात्मकता निहित होती है और भाषा के स्तर पर वह वाक्य, पद और शब्द में भी व्यंग्य पैदा करने की कोशिश करते हैं।

- परसाई जी के इस निबंध का उद्देश्य शिक्षा और सामाजिक जीवन के दूसरे क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्ट आचरण की प्रवृत्तियों को उजागर कर उनके प्रति लोगों को जागरूक करना है। वह इसके लिए व्यंग्य का सहारा लेते हैं और इस तरह अपने उद्देश्य को बोझिल नहीं होने देते। उनके निबंध आज भी प्रासंगिक हैं।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप परसाई जी के निबंध को अच्छी तरह से समझ सकेंगे और उनकी विशेषताओं से भी परिचित हो सकेंगे।

38.10 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1. ग) 2. घ)
3. लोग सफलता के लिए मुख्य द्वार का प्रयोग इसलिए नहीं करते क्योंकि उसके लिए निरंतर श्रम करना पड़ता है और ईमानदारी के रास्ते पर चलता पड़ता है जबकि लोग बिना श्रम के कामयाब होना चाहते हैं भले ही इसके लिए ईमानदारी का त्याग ही क्यों न करना पड़े।
4. घ) 5. क)
6. परसाई जी को व्यंग्यकार इसलिए माना जाता है कि उन्होंने सभी गद्य विधाओं में व्यंग्य लेखन ही किया है और व्यंग्य को स्वतंत्र विधा की तरह स्थापित किया है।
7. आत्मा को फोल्डिंग कुर्सी इसलिए कहा गया है क्योंकि लोग आत्मा को फोल्डिंग कुर्सी की तरह इस्तेमाल करते हैं। जब जरूरत होती है आत्मा को कुर्सी की तरह खोलकर उस पर बैठ जाते हैं और जब जरूरत नहीं होती तो कुर्सी की तरह आत्मा को भी समेटकर एक तरफ रख देते हैं।
8. सुरेश नामक परीक्षार्थी का अंग्रेजी का पेपर बिग़ड़ गया है। उसका रोल नंबर 2431 है। उसकी उत्तरपुस्तिका सिन्हा जी के पास जांच के लिए गई है और उसे 40 प्रतिशत अंक दिलवाने हैं ताकि वह पास हो जाए।
9. मुख्य मार्ग का अर्थ है, मेहनत और ईमानदारी का रास्ता।
10. स्नेही का अर्थ होता है, जिसे स्नेह किया जाए यानी प्यार किया जाए। लेकिन यहां परसाई जी ने स्नेही का व्यंग्य में प्रयोग किया है क्योंकि ऐसे लोग स्वार्थवश ही अपने स्नेही होने का दिखावा करते हैं।

अभ्यास

1. दिए गए अंश की संदर्भ सहित व्याख्या पाठ और इकाई को ध्यानपूर्वक पढ़कर स्वयं कीजिए।
2. दिए गए अंश की संदर्भ सहित व्याख्या पाठ और इकाई को ध्यानपूर्वक पढ़कर स्वयं कीजिए।
3. इकाई के भाग 38.5 और 38.8 को ध्यानपूर्वक पढ़कर उत्तर दीजिए।
4. भाग 38.7 को पढ़कर अपने शब्दों में उत्तर लिखिए।
5. इकाई को ध्यानपूर्वक पढ़कर उत्तर लिखें।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

bdkbZ 39 f=ykspu ¼Q.kh'ojukFk js.kq½ % okpu vkSj fo'ys"k.k

bdkbZ dh :ijs[kk

39.0 उद्देश्य
39.1 प्रस्तावना
39.2 संस्मरण का वाचन
39.3 संस्मरण का सार
39.4 संदर्भ सहित व्याख्या
39.5 संस्मरण की अंतर्वस्तु
39.6 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति
39.7 संरचना-शिल्प
39.8 प्रतिपाद्य
39.9 सारांश
39.10 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

39-0 mís';

स्नातक उपाधि कार्यक्रम के अंतर्गत हिंदी के ऐच्छिक पाठ्यक्रम 'हिंदी गद्य' (बी.एच.डी.एफ-101) के अंतिम खंड की यह सातवीं इकाई और पाठ्यक्रम की 39वीं इकाई है। इस इकाई में आप हिंदी के कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा हिंदी के प्रगतिशील कवि त्रिलोचन शास्त्री से संबंधित संस्मरण 'त्रिलोचन' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- 'त्रिलोचन' के वाचन से उसकी अंतर्वस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- 'त्रिलोचन' में आये कठिन शब्दों के अर्थ बता सकेंगे;
- 'त्रिलोचन' के प्रमुख अंशों की संदर्भ सहित व्याख्या कर सकेंगे;
- 'त्रिलोचन' की अंतर्वस्तु की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- 'त्रिलोचन' में चित्रित परिवेश की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- 'त्रिलोचन' में लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- 'त्रिलोचन' का संस्मरण की विशेषताओं के संदर्भ में और उसकी भाषा और शैली की विशेषताएँ बता सकेंगे; और
- 'त्रिलोचन' के प्रतिपाद्य का विवेचन कर सकेंगे।

39-1 iLrkouk

'हिंदी गद्य' के इस पाठ्यक्रम के इस छठे खंड में अब तक आपने निबंध, व्यंग्य निबंध, ललित निबंध, रेखाचित्र विधाओं का अध्ययन किया है। इस इकाई में आप संस्मरण विधा का अध्ययन करेंगे। इस इकाई में आप फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा लिखित 'त्रिलोचन' का अध्ययन करेंगे। यह रेणु जी द्वारा लिखा एक संस्मरण है। त्रिलोचन शास्त्री भी हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ कवि हैं और प्रगतिशील कवि के रूप में उनकी विशिष्ट पहचान है। वे रेणु के समकालीन हैं। त्रिलोचन शास्त्री और फणीश्वरनाथ रेणु दोनों का देहावसान हो चुका है। 4 मार्च, 1921 में जन्मे रेणु जी हिंदी के प्रख्यात कथाकार माने जाते हैं। वे नयी कहानी आंदोलन से संबद्ध कहानीकार हैं और उनकी एक कहानी 'ठेस' का अध्ययन आपने इसी पाठ्यक्रम के दूसरे खंड में किया होगा। रेणु की प्रख्यात रचना 'मैला आंचल' जो हिंदी का पहला आंचलिक उपन्यास है, उसका भी अध्ययन किया होगा। कहानी और उपन्यास के अलावा भी रेणु जी ने संस्मरण, रिपोर्ताज आदि अन्य कई विधाओं में भी उत्कृष्ट रचनाएं की हैं। उनका देहावसान 11 अप्रैल, 1977 को हुआ था। इस खंड में आप उनका लिखा संस्मरण 'त्रिलोचन' का अध्ययन करेंगे। त्रिलोचन शास्त्री हिंदी की प्रगतिशील धारा के प्रमुख कवियों में गिने जाते हैं। 20 अगस्त 1917 को जन्म त्रिलोचन ने काव्य विधा में ही अपना अधिकतर लेखन किया है। उनके द्वारा लिखे सॉनेट अत्यंत प्रसिद्ध हैं। हालांकि उन्होंने कुछ कहानियां भी लिखी हैं। कवि के रूप में ही नहीं बल्कि व्यक्ति के रूप

में भी त्रिलोचन बहुत लोकप्रिय थे। उनकी गहरी अंतर्दृष्टि और सहज स्वभाव लोगों को आकर्षित करता था। यह बात रेणु जी के लिखे संस्मरण से भी जाहिर होती है। उनका देहावसान 9 दिसंबर, 2007 को हुआ था। त्रिलोचन शास्त्री के बारे में रेणु ने यह संस्मरण 1970 में लिखा था। यह बहुत विस्तृत नहीं है और लेखक सिर्फ त्रिलोचन के साथ अपनी संक्षिप्त मुलाकातों तक ही संस्मरण में सीमित रहा है। इसके बावजूद वह त्रिलोचन जी के व्यक्तित्व के कई ऐसे पहलुओं को उभारने में कामयाब रहा है जिनसे उनकी विशिष्टता और साहित्य के प्रति उनकी गहरी सूझ-बूझ का पता लगता है। सबसे पहले आप इस संस्मरण का अध्ययन कीजिए और फिर उसकी विशेषताओं के बारे में जानिए।

39-2 laLej.k dk okpu

त्रिलोचन से जब पहली बार दषाश्वमेध घाट[1] की सीढ़ियों पर उतरने वाली सड़क पर मेरा परिचय करवाया गया तो, उन्होंने 'उलाहना' भरे स्वर में व्यंग्यमयी मुस्कुराहट के साथ कहा था– 'खूब मच्छड़ कटवाया है 'बँसवड़िया' में आपने....[2]।'

'मैला आँचल' की राजपूत-टोली के शिवशक्कर सिंह के 'बेपानी'[3] होने के प्रसंग में, उनकी यह उक्ति सुनकर उस समय मुझे लगा था, त्रिलोचनजी को किसी कारणवश 'मैला आँचल' पसंद नहीं। होटल, लौटकर, बहुत देर तक सोचता रहा था– सारे उपन्यास में बस वही 'स्थल' बँसवड़िया ही क्यों याद रहा त्रिलोचन को? बाँसों का झुरमुट, अंधकार में जुगुनुओं की चमक, साँपों की बाँबियों से आती हुई रीस-भरी[4] फुफकार और सहस्त्रों मशकों[5] का एक ही साथ शत-शत दंशन....?

दूसरे दिन किसी मित्र से जब यह सुना कि, त्रिलोचनजी 'मैला आँचल' के प्रशंसकों में से हैं तो फिर उस रात को बहुत देर तक बस यही सोचता रहा कि सारी किताब में त्रिलोचनजी को वही 'स्थल' और वही 'प्रसंग' क्यों याद रहा?

और, पहली मुलाकात-बात के समय से आज तक जब भी त्रिलोचन को देखता हूँ, क्षण-भर के लिए 'भरम-जाल' में पड़ जाता हूँ : अपने गाँव के समृद्ध कबीर-पंथी मठ पर, बचपन में ही - कबीर चौरा काशीजी से आये हुए एक 'संद्यः यौवन' कबिराहा बाबाजी को देखा था– लँगोट बाँधकर 'आसन' करते और ढाई सेर धारोष्ण[6] दूध (भैंस का) पीते। मठ के अधिकारी भंडारी, साधु वैरागी जिसके बारे में बातें करते–'विदियारथीजी मोती जैसन अक्षर में बीजक लिखलन है.... ई विदियारथी तो बीजक के एक-एक गो 'साखी' और 'शबद' के ऐसन-ऐसन बिलच्छन आ 'अमनियाँ अरथ' अपन--'तहियायेल शखा' में समझावे हैं कि सार 'सुन्ननिहार-सव' के 'अथि' फट जाये.... ।'

याद है, धूनी के पास बैठकर विद्यार्थीजी कई गृहस्थ-सेवकों को कुछ समझा रहे थे। बातचीत की कई पंक्तियाँ, अपनी 'शाब्दिक-रहस्यमयता' तथा विलक्षणता के साथ आज तक याद हैं- कि 'एक अंड ओंकार ते सब जग भया पसार'[7] और 'ओ ररा रमा की भाँति रूरी; सब सन्तउघारिन चूँदरी.... ।'

सो, त्रिलोचन को देखते ही मुझे पहले उसी बाबाजी– विद्यार्थीजी की याद आ जाया करती है और ये ही पंक्तियाँ अंतर्मन में ध्वनित होती हैं– 'एक अंड ओंकार ते सब जग भया पसार.... ।'

कभी त्रिलोचनजी को अपने साथ अपने गाँव ले चलूँ तो, मेरा विश्वास है कि परिचय करवाने की आवश्यकता नहीं होगी। बड़े-बड़े गृहस्थ गृहों की 'भक्तिमय आत्माएँ' उनके पास आकर, अपने चेहरे से 'चुनरी' हटाकर, नैनों से नैना मिलाती 'कबिराहा अंदाज' में दोनों हाथ जोड़कर, विगलित-सी[8] होती हुई पुकार उठेंगी– 'सा-हे-ब! बंदगी !!'.... त्रिलोचनजी निश्चय ही अचरज

[1]बनारस में गंगा के किनारे का एक प्रसिद्ध घाट

[2]यहां त्रिलोचन शास्त्री रेणु के प्रथम उपन्यास 'मैला आँचल' के एक प्रसंग की ओर संकेत कर रहे हैं

[3]बिन पानी;

[4]क्रोध भरी या ईर्ष्या भरी

[5]भेड़ या बकरी की खाल को सीकर बनाया हुआ एक थैला जिसमें भिश्ती पानी भरकर ढोते हैं

[6]तुरंत का दूहा हुआ दूध

[7]एक ओंकार से ही समस्त सृष्टि की रचना हुई है

[8]पिघला हुआ

में पड़ जायेंगे। मजा आ जायेगा!! अथवा, यह भी हो सकता है कि, त्रिलोचन हमारे गाँव के हर 'सतरंगी' जीव को देखते ही नाम ले-लेकर पुकार उठें और हमें ही घोर अचरज में डाल दें। ....अथवा, शाम के झुरपुटे में किसी पगडंडी को पार करते समय, किसी 'बँसवड़िया' के घुप्प अंधकार में डूबती हुई झाड़ी की ओर दिखलाकर पूछें– 'क्यों, रेणुजी, यही वह जगह है न, जहाँ ....?' (सोचता हूँ और अपने से ही पूछता हूँ कि आखिर....यार! तुम ही उस जगह की चर्चा छिड़ते ही इस तरह सर्द क्यों हो जाते हो? तुम्हारा चेहरा रक्तहीन क्यों हो जाता है? त्रिलोचन ने तुम्हें पकड़ा है या शिवशक्कर सिंह को गाँव के लड़कों ने??)

कई बार चाहा कि, त्रिलोचन से पूछूँ–आप कभी पूर्णिया जिला की ओर किसी भी हैसियत से, किसी कबिराहा-मठ पर गये हैं? किन्तु पूछकर इस 'भरम' को दूर करना नहीं चाहता। इसे पाले रहना चाहता हूँ। इसलिए, जब त्रिलोचन से मिलता हूँ, हाथ जोड़कर, मन-ही-मन कहता हूँ– सा-हे-ब ! बं-द-गी !!'

कविता मेरे लिए समझने-बूझने या समझाने का विषय नहीं, जीने का विषय है। कवि नहीं हो सका, यह कसक सदा कलेजे को सालती रहेगी। और, अगर कहीं कवि हो जाता तो, त्रिलोचन नहीं हो पाने का मलाल जीवन-भर रहता। संभव है, तब त्रिलोचन के एक सॉनेट की 'पैरोडी' लिखकर सहस्रलोचन नाम से प्रकाशित करवाने की हिमाकत भी कर बैठता। और, मैं त्रिलोचन ही क्यों होना चाहता– पंत, नरेंद्र, सुमन, बच्चन, महादेवी, दिनकर, नलिनविलोचन अथवा रेणु क्यों नहीं? यह सवाल मैं अपने-आपसे बार-बार पूछता रहता हूँ।

त्रिलोचन ने अपने बारे में मुँह से अपने सॉनेट में जो कुछ भी कहा है, उसके अतिरिक्त 'और कुछ' जानने-सुनने की वासना मन में कभी नहीं जगी। और न कभी मन में लगनेवाली गुदगुदी को त्रिलोचन की ग़ज़लों को गुनगुनाकर सहलाया। ग़ज़ल, काज़ी नज़रुल की भी मुझे कभी नहीं रुची-जँची। त्रिलोचन के सॉनेट के लिए ही मैं उसे 'शबद योगी' कहता हूँ। उसके कुछ सॉनेट हद-अनहद की सीमा को लाँघकर– साखी, शबद, रमैनी की कोटि के हो गये हैं। त्रिलोचन ने बहुत कम लिखा है। अर्थात् बहुत अल्प 'उत्पादन' किया है। किन्तु, मेरे लिए त्रिलोचन का 'होना' मात्र उसकी रचनाओं से 'अधिक' है। अतएव 'सुपर मार्केट डिपार्टमेंट स्टोर-संस्कृति'[9] के बटखरों[10] से त्रिलोचन को तोलने के लिए तुले हुए लघु-गुरु आलोचकों से कभी बहस नहीं करना चाहता। बात बहककर सांप्रदायिक युद्ध और'जाति-संघर्ष' तक पहुँचा जा सकती है। (बिहार को ही जातिवाद के लिए नाहक बदनाम क्यों किया जाता रहा है?) और, भारत धर्म-निरपेक्ष देश है और, इस 'सुरक्षा-चैतन्य-समाज'[11] में स्वयं को सुरक्षित रखना ही जीवन का प्रथम 'प्रिंसिपुल'[12] है।

यह कहना तकियाकलाम[13] हो गया है कि, किसी व्यक्ति का उसके जीवन-काल में, सही जायजा नहीं किया जा सकता। क्या मृत्यु के बाद भी किसी व्यक्ति के जीवन का सही लेखा-जोखा करना सहज और संभव है? किसी व्यक्ति के जीवन को, विभिन्न स्तरों पर, अलग-अलग दृष्टि से देखा-परखा जा सकता है। और इस तरह देखी हुई तस्वीर, दूसरे स्तर से देखी हुई 'छवि' से भिन्न ही नहीं–एक-दूसरे को 'कंट्राडिक्ट'[14] भी करती है। ऐसी अवस्था में अंततः कोई भी तस्वीर सही नहीं मानी जा सकती। हम ऐसी ही 'अधूरी तस्वीरों' को 'मिथक' (कूटार्थ) अथवा लोकोक्ति और किंवदंतियों से रँगकर, महिमामंडित करके चला देते हैं। इसलिए हर पीढ़ी का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि, वह ऐसे 'चालू सत्यों'[15] का फिर से अन्वेषण करें, फिर से इतिहास को लिखे और पुरानी गलतियों को सुधारकर 'ज्ञान' की मशाल अगली पीढ़ी के हाथ में थमा

---

[9] 1970 के दशक में देश के छोटे-बड़े शहरों में सहकारी बाज़ार और डिपार्टमेंट स्टोर खोले गये थे जहां रोज़मर्रा की वस्तुएं मिलती थीं। रेणु का इशारा उन्हीं की तरफ है। यह खरीददारी की पहले से चली आ रही परंपरा से अलग है

[10] बाट, तोलने के लिए इस्तेमाल होने वाला लोहे का टुकड़ा

[11] सुरक्षा के प्रति सावधान समाज

[12] अंग्रेजी शब्द प्रिंसिपल यानी उसूल

[13] बातचीत के दौरान बारबार दोहराया जाने वाला कोई शब्द या पद

[14] अंग्रेजी शब्द, विरोधाभास

[15] रोज़मर्रा की सच्चाई

दे।ÿÿÿÿ इस प्रसंग में, एक उदाहरण दूँ- स्वर्गीय शिशिर भादुड़ी[16] के स्वर में रवीन्द्रनाथ[17] की कविता की आवृत्ति सुनने के बाद, स्वयं कवि के स्वर में (ग्रामोफोन रेकार्ड) उनकी कविता सुनकर कितना दुख हुआ था, यह लिखकर नहीं बता सकता। उस विराट व्यक्तित्व के कंठ से निकलने वाली आवाज—यूथिका राय[18] अथवा कमला झरिया[19] की आवाज जैसी होगी, इसकी कल्पना मैंने स्वप्न में भी नहीं की थी। बाद में, बार-बार रेकार्ड बजाकर कविता के एक-एक शब्द को उच्चरित होते हुए सुनकर—कविता की पंखड़ियों को, धीरे-धीरे खुलते देखा था—सहज ढंग से। तब, शिशिर बाबू की आवृत्ति 'मिथ्या-सी— लगने लगी थी। किन्तु शिशिर बाबू की ध्वनियों से निर्मित रवीन्द्र की तस्वीर संपूर्ण सत्य नहीं तो—एकदम झूठ भी नहीं।

त्रिलोचन के साथ मैंने कभी दो-ढाई घंटे से ज्यादा नहीं बिताये हैं। लेकिन, मन को हमेशा ऐसा लगता है (?) कि, इस व्यक्ति के साथ क्यों दिन-रात रह चुका हूँ। इसकी छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी अच्छी-बुरी आदतों को, अच्छी तरह जानता हूँ।····

उस बार, शंभूनाथ मिश्र के घर पर त्रिलोचन जी का चिमटा गड़ा[20] था। सुबह, जिस समय पहुँचा—करीब दस बजे त्रिलोचन के 'प्रसाद' पाने का समय था। (कबिराहा बाबाजी लोग भात को 'प्रसाद', जलपान को 'बालभोग' और नमक को 'रामरस' कहते हैं और कबिराहा गृहस्थ प्याज को 'राम लड्डू'!) ड्राइंग रूम में ही टेबुल के 'कवर' को हटाकर थाली लगा दी गयी। हमारे परिवार में, बचपन से ही बड़ों के भोजन के समय पास बैठकर 'भोजन' देखने की आदत डलवायी जाती थी। पंखा झलते हुए, पंखे से मक्खी उड़ाते हुए अथवा गिलास का पानी बदलते हुए, हम बड़ों का भोजन देखा करते। परिवार के 'संत-मति' कर्ता का विश्वास था कि, इससे बालक परम 'संतोषी' होता है और भोजन करने का सही सलीका सीखता है।—'संतोषी' हुआ या नहीं, कह नहीं सकता। किंतु लोगों को भोजन करने के इतनी तरह के तरीके ढंग और आदतों को देखकर मानवचरित्र की विचित्रताओं पर मुग्ध अवश्य हुआ हूँ। इसलिए, त्रिलोचन के भोजन के समय पहुँचना अच्छा ही हुआ। सोचा, अगर वे, भोजन काल में शरीर को एक 'आइलैंड' यानी 'द्वीप' समझने वाले जीव हुए तो, मैं तब तक कुछ पढ़ने का बहाना करता हुआ—बैठा रहूँगा और, यदि वे, भोजन का रस लेते हुए प्रेमियों से 'रसभरी बतियाँ' करने वाले हुए तो फिर क्या कहने! पापड़ टूटने की कुड़कुड़ाहट! चटनी अथवा अचार खाकर चटखारे लेते, और हरी मिर्च को दाँत से तनिक खोंटकर 'सित्कार'···· करते बातें करेंगे तो, सब कुछ एक ही साथ देखने-सुनने का मौका मिल जायेगा। (आलू का 'चोखा' सानकर तैयार करना एक 'आर्ट' है और मुझे उसी दिन पता चल गया कि शंभूनाथ के चौके-चूल्हे तक पर 'आर्टिस्टों' का कब्जा है।)

बहरहाल, खाते-खाते बातें होती रहीं और, उनके भोजन करने के ढंग से यह जानना बाकी नहीं रहा कि, त्रिलोचन का पेट 'बुफे'[21] नामक किसी भोज में मेरी तरह, कभी नहीं भर सकेगा।·· ·दूसरे देशों में क्या होता है, नहीं जानता। अपने देश के कई महानगरों के महाभोजों के इस बुफे (का व्युत्पत्ति?) में शरीक होने के समय मुझे बार-बार एहसास हुआ है 'भारत में कितनी भूख है?' झपट्टे मारते हुए चतुर चीलों (नर-मादा) से त्रिलोचन नहीं जीत सकेंगे। उन्हें कभी 'चिकन' का कोई बढ़िया 'पीस' नहीं मिल सकेगा! मुर्गी की मांसल 'रान' कभी हासिल नहीं कर सकेंगे!! इसलिए —'अजी माल था! तुष्ट हूँ यहाँ'— कहने का कोई सवाल ही नहीं उठेगा। 'पहले खाना मिला करे तो कठिन नहीं है बात बनाना।'

भोजन कर चुकने के बाद त्रिलोचन अन्य आगत सज्जनों से साहित्य-विषयक बातें करने लगे। हमारे एक भाषा-शास्त्री मित्र, अपनी पत्नी द्वारा लिखित व्यक्तिगत निबंधों की सद्यःप्रकाशित पुस्तक ले आये थे। एक निबंध में 'कैक्टस' की चर्चा करते हुए-उसकी पुष्पहीनता पर तरस खाकर कुछ कहा गया था। मैंने कहा— 'किंतु, कैक्टस के भी फूल होते हैं। यानी फूलनेवाले कैक्टन भी होते हैं।;···· मैं कहना चाहता था— उदाहरण सामने है। अर्थात् त्रिलोचन,

---

[16]बंगाली रंगमंच के अभिनेता और गायक जिन्होंने रवींद्र के गीतों को भी गाया है

[17]महान बांग्ला कवि और कलाकार रवींद्रनाथ टैगोर जिन्हें उनकी काव्य रचना 'गीतांजली' पर नोबेल पुरस्कार भी मिला है

[18]बांग्ला गायिका

[19]बिहार की बांग्ला गायिका

[20]एक जगह जमकर बैठ जाना

[21]भोज की आधुनिक पद्धति जिसमें लोग भोजन की प्लेट हाथ में लेकर खड़े-खड़े भोजन करते हैं।

फूलनेवाला कैक्टस। कहा नहीं, क्योंकि इसके कुछ क्षण पूर्व ही, मुझे उनके उस सॉनेट की पंक्तियाँ याद आयी थीं– जिसमें दषाश्वमेध घाट के 'चित्र-कल्प' हैं। सो मेरे लिए तो–

दषाश्वमेध घाट पर गंगा की धारा है
तट पर जल के ऊपर ऊँचे (भवन नहीं)
त्रिलोचन खड़े हैं ....

कबीर को पढ़ते समय मेरा मन 'भाई साधो' का हो जाता है। फारसी के कवि जलालुदीन रूमी का मैंने नाम सुना ही है। अर्थात् विद्वानों के लेखों में उद्धृत उनकी कुछ पंक्तियों के भावानुवाद को पढ़कर ही रोम-रोम बजने लगते हैं। बंगाल के प्रसिद्ध बाउल-गायक लालन फकीर के गीतों को सुनते समय 'देहातीत सुख' का परस-सा पाया है और त्रिलोचन के सॉनेट पढ़ते समय यह देह-यंत्र 'रामुरा झिं-झिं' बजने लगता है और तन्मय-मन को लगता है–

वाणी से सावन फूटा ऋतुओं सहित,
भक्ति की गाँठ कस गयी भींग-भींगकर,
आत्म-व्यंजना को जगा....।
(मैंने 'आत्मा-व्यंजना' ही लिखा है न?
'आत्मा-वंचना' तो नहीं?)
....साऽहे-ब! बं-द-गी!

त्रिलोचन (जी) को देखते ही हर बार मेरे मन के ब्लैक बोर्ड पर, एक 'अगणितक', असाहित्यिक तथा अवैज्ञानिक प्रश्न अपने-आप लिख जाता है : 'वह कौन-सी चीज है, जिसे त्रिलोचन में जोड़ देने पर वह शमशेर हो जाता है और घटा देने पर नागार्जुन....?'

बोध प्रश्न

1. त्रिलोचन पहली बार मिलने पर रेणु की किस रचना के बारे में टिप्पणी करते हैं?
   क) परती परिकथा
   ख) मैला आँचल
   ग) जुलूस
   घ) दीर्घतपा ( )
2. त्रिलोचन के कुछ सॉनेट निम्नलिखित में से किस परंपरा में आते हैं?
   क) साखी
   ख) शबद
   ग) रमैनी
   घ) उपर्युक्त सभी ( )
3. इस संस्मरण में जिन कवियों का उल्लेख किया गया है उनमें से कम-से-कम चार कवियों का नामोल्लेख कीजिए।

   ....
   ....
   ....
   ....

39.3 संस्मरण का सार

फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा लिखित यह संस्मरण हिंदी के प्रगतिशील कवि त्रिलोचन शास्त्री के बारे में है। इस संस्मरण का शीर्षक ही 'त्रिलोचन' है। संस्मरण के आरंभ में ही रेणु ने त्रिलोचन के साथ अपनी पहली मुलाकात का उल्लेख किया है। यह पहली मुलाकात बनारस में दषाश्वमेध घाट की सीढ़ियों पर उतरने वाली सड़क पर होती है। त्रिलोचन का बनारस से गहरा नाता रहा है। उन्होंने अपने जीवन के कई साल बनारस में बिताए हैं। जब त्रिलोचन को रेणु जी का परिचय दिया जाता है तो उन्हें 'मैला आँचल' का एक प्रसंग याद आ जाता है। त्रिलोचन मच्छर कटवाने के प्रसंग का उल्लेख करते हैं। इस उल्लेख से रेणु असमंजस में पड़ जाते हैं कि त्रिलोचन जी को उपन्यास पसंद आया या नहीं। उन्हें यह लगता है कि शायद त्रिलोचन को 'मैला आँचल' पसंद नहीं आया है और इसी कारण वे व्यंग्य से मच्छर काटने का उल्लेख कर रहे हैं। लेकिन

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

बाद में किसी अन्य से रेणु को मालूम पड़ता है कि त्रिलोचन 'मैला आँचल' के प्रशंसकों में से है। त्रिलोचन से रेणु की जब भी मुलाकात होती है तो उन्हें अपने गाँव के कबीर पंथी मठ के एक कबिराहा बाबा की याद आ जाती है जो 'लंगोट' बांधकर आसन करते और ताजा दूहा हुआ भैंस का ढाई सेर दूध पीते थे। ये साधु बाबा विद्यार्थी जी के नाम से जाने जाते थे। इन्हीं विद्यार्थी जी को देखकर रेणु को त्रिलोचन की और विशेष रूप से विद्यार्थी जी की ये पंक्तियां *'एक अंड ओंकार ते सब जग भया पसार'* जरूर आती थी। शायद रेणु ये कहना चाहते हैं कि त्रिलोचन को देखकर एक ऐसे व्यक्तित्व की याद आती है जिसमें संपूर्ण जग समाया हुआ है। त्रिलोचन जी के व्यक्तित्व में जो देशीपन है वह भी रेणु को आकृष्ट करता है। इसलिए वह सोचते हैं कि यदि मैं उनको अपने गांव ले जाऊं तो, न तो उन्हें और न ही गाँव के लोगों को परायापन लगेगा। रेणु कथाकार थे लेकिन कविता के प्रति उनका गहरा अनुराग था। कविता को वे जीने का विषय समझते थे और उन्हें इस बात का अफसोस था कि वे कवि न हो सके। वे ऐसी स्थिति की कल्पना करते हैं कि यदि वह कवि हो भी जाते तो उन्हें इस बात का अफसोस रहता कि वह त्रिलोचन न हो सके। वे त्रिलोचन के लिखे सॉनेट से काफी प्रभावित थे और उनके लिखे कुछ सॉनेट 'हद-अनहद की सीमा को लाँघकर-साखी, शबद, रमैनी की कोटि के हो गये हैं'। यानी त्रिलोचन के सॉनेट कबीर के काव्य की कोटि के हैं। त्रिलोचन को वे इतना महान कवि मानते हैं कि आलोचकों द्वारा उनके बारे में कही गयी बातों को ज्यादा महत्त्व नहीं देते। यहां रेणु एक महत्त्वपूर्ण बात कहते हैं। यह आमतौर पर कहा जाता है कि व्यक्ति का वास्तविक मूल्यांकन उसकी मौत के बाद ही हो पाता है। लेकिन रेणु सवाल करते हैं कि क्या मृत्यु के बाद भी सही मूल्यांकन हो पाता है? हरेक अपने-अपने ढंग से व्यक्ति की छवि बनाता है और कई बार एक ही व्यक्ति की ये भिन्न-भिन्न छवियां एक दूसरे की विरोधी नज़र आती है। इस संदर्भ में वे रवींद्रनाथ टैगोर के गीतों का उदाहरण देते हैं। रवींद्र गीतों को शिशिर भादुड़ी की आवाज में सुनने पर उन्हें रवींद्र की खुद की आवाज में सुने हुए गीत काफी कमजोर लगे थे और रेणु को इस बात से बहुत दुख हुआ था। लेकिन बार बार सुनने पर उन्हें रवींद्र के स्वर में सुनी कविताओं का अर्थ जिस तरह से खुलकर सामने आया उसके बाद शिशिर भादुड़ी की आवाज में मिथ्यापन का बोध होने लगा था। एकबार उनकी त्रिलोचन से मुलाकात शंभूनाथ मिश्र के घर पर होती है। त्रिलोचन उनके सामने बैठकर खाना खाते हैं और रेणु से बाते भी करते जाते हैं। खाना खाते हुए बात करने की उनकी पूरी प्रक्रिया को देखते हुए रेणु के मन में प्रश्न उठता है कि क्या त्रिलोचन का पेट बुफे नामक किसी भोज में भर सकता है? यह महत्त्वपूर्ण है कि त्रिलोचन को देखने और उनसे मिलने पर रेणु को बार-बार कबीर और कबीर से जुड़ी चीजें याद आती है। संस्मरण की अंतिम पंक्ति में वे त्रिलोचन की तुलना उन्हीं के समकालीन दो प्रगतिशील कवियों से करते हैं, लेकिन प्रश्न के रूप में। वे पूछते हैं वह कौन सी चीज है जिसे त्रिलोचन में जोड़ देने पर वह शमशेर हो जाता है और घटा देने पर नागार्जुन···? यह एक पहेली है जिसका कोई संकेत इस संस्मरण में स्पष्ट रूप से नहीं मिलता।

39-4 lnHkZ lfgr O;k[;k

फणीश्वर नाथ रेणु द्वारा लिखा हुआ संस्मरण 'त्रिलोचन' आपने पढ़ लिया है। इस संस्मरण में रेणु ने त्रिलोचन के व्यक्तित्व के कई पहलुओं, एक कवि के रूप में उनकी विशिष्टता और कई ऐसे साहित्यिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रसंगों पर टिप्पणियां की हैं जो इस संस्मरण को सिर्फ संस्मरण नहीं रहने देता बल्कि एक चिंतनशील निबंध भी बना देता है। इस संस्मरण में कई ऐसे प्रसंग और उद्धरण आते हैं जो उनके व्यापक ज्ञान और गहरी कलात्मक अभिरुचि का पता देता है। यहां हम उनके इस संस्मरण का एक अंश व्याख्या के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं। इससे आपको संस्मरण के अंशों की व्याख्या करने में मदद मिलेगी।

m)j.k% *कविता मेरे लिए समझने-बूझने या समझाने का विषय नहीं, जीने का विषय है। कवि नहीं हो सका, यह कसक सदा कलेजे को सालती रहेगी। और, अगर कहीं कवि हो जाता, तो, त्रिलोचन नहीं हो पाने का मलाल जीवन भर रहता।*

lnHkZ% हिंदी के प्रख्यात कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु के संस्मरण 'त्रिलोचन' से उपर्युक्त पंक्तियां उद्धृत की गयी हैं। यह संस्मरण हिंदी के प्रगतिशील कवि त्रिलोचन शास्त्री के बारे में है। एक कवि के रूप में त्रिलोचन की महानता का दिग्दर्शन कराने के लिए रेणु ने उक्त बात कही है।

व्याख्या: इन पंक्तियों में रेणु ने कविता और एक कवि के रूप में त्रिलोचन शास्त्री पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। उनका मानना है कि कविता समझने-बूझने या समझाने का विषय नहीं है बल्कि जीने का विषय है। यानी कविता रेणु की दृष्टि में जीवन है। उसे जीया जाता है। कविता की महानता उसके जीवन के पर्याय होने में है। कहा तो नहीं गया है लेकिन ध्वनि यह भी निकलती है कि कहानी या उपन्यास को जीवन की तरह नहीं लिया जा सकता। चूंकि रेणु कवि नहीं थे, उन्होंने कहानी और उपन्यास ही लिखे इसलिए उन्हें इस बात का अफसोस था कि वे कवि न हो सके। लेकिन सभी कवियों की कविता को जीवन के पर्याय के रूप में नहीं माना जा सकता। इस दृष्टि से रेणु की नज़र में त्रिलोचन की कविता में वे सभी गुण है जो एक महान कविता में होने चाहिए। यही वजह है कि उन्हें इस बात का भी मलाल होता है कि वे त्रिलोचन नहीं हो पाये। और यह ऐसा दुख है जो जीवन भर उन्हें सालता रहेगा। इस तरह वे कविता और त्रिलोचन दोनों की महानता को अपने अंदाज में व्यक्त करते हैं।

विशेष:
1) यह उद्धरण संस्मरण में से लिया गया है जिसमें किसी कवि या किसी विधा की आलोचना या विवेचन करने की गुंजाइश नहीं होती। लेकिन एक कवि के रूप में त्रिलोचन पर की गयी टिप्पणी के माध्यम से रेणु ने कविता और त्रिलोचन दोनों के बारे में अपने विचारों को बहुत ही संयमित और स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है।
2) उद्धरण की भाषा बहुत सहज और सरल है और लेखक जो कहना चाहता है उसे प्रभावशाली ढंग से कह दिया गया है।
3) ऊपर जिस अंश की व्याख्या की गयी है, ऐसे और भी कुछ अंश हैं जिनकी व्याख्या आप संस्मरण को पढ़कर और पूरी इकाई का अध्ययन कर स्वयं कर सकते हैं। यहां अभ्यास के लिए दो ऐसे अंश प्रस्तुत किये जा रहे हैं:

अभ्यास

1) *किसी व्यक्ति के जीवन को, विभिन्न स्तरों पर, अलग-अलग दृष्टि से देखा-परखा जा सकता है। और इस तरह देखी हुई हर तस्वीर, दूसरे स्तर से देखी हुई 'छवि' से भिन्न ही नहीं -एक दूसरे को 'कंट्राडिक्ट' भी करती है। ऐसी अवस्था में अंततः कोई भी तस्वीर सही नहीं मानी जा सकती।*

संदर्भ: ....
....

व्याख्या: ....
....

विशेष: ....
....

2) *वह कौन सी चीज है, जिसे त्रिलोचन में जोड़ देने पर वह शमशेर हो जाता है और घटा देने पर नागार्जुन...?*

संदर्भ: ....
....
....

व्याख्या: ....
....
....

विशेष: ....
....

39.5 संस्मरण की अंतर्वस्तु

संस्मरण साहित्य की एक ऐसी विधा है जिसमें कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के बारे में अपनी स्मृति के आधार पर लिखता है। संस्मरण लिखने के लिए यह जरूरी है कि जिस व्यक्ति के बारे में संस्मरण लिखा जा रहा है और जो संस्मरण लिख रहा है, उनमें परस्पर संबंध हो। यह आवश्यक नहीं कि वह संबंध प्रगाढ़ हो। संस्मरण जिसके बारे में लिखा जाता है उस व्यक्ति

के व्यक्तित्व की कुछ विशेषताएं उसमें अवश्य व्यक्त होती हैं इसलिए संस्मरण में रेखाचित्र की विशेषताएं भी समाहित होती हैं। इसी तरह उसके जीवन के बारे में भी हमें जानकारी मिलती है इसलिए उसमें जीवनी की विशेषताएं भी मिल जाती हैं। लेकिन संस्मरण जिसके बारे में लिखा जाता है के साथ-साथ उस व्यक्ति के बारे में भी हमें बताता है जो संस्मरण का लेखक है। इन विशेषताओं के आधार पर अगर हम इस संस्मरण पर विचार करें तो हम समझ सकते हैं कि इसमें उपर्युक्त सभी विशेषताएं दिखायी देती हैं।

यह संस्मरण हिंदी के प्रख्यात कथाकार और 'मैला आँचल' जैसे बहुचर्चित उपन्यास के लेखक फणीश्वरनाथ रेणु ने लिखा है और जिसके बारे में उन्होंने संस्मरण लिखा है वे भी हिंदी के प्रसिद्ध प्रगतिशील कवि हैं। संस्मरण पढ़ने से यह ज्ञात हो जाता है कि दोनों एक दूसरे को जानते थे और उनकी कई मुलाकातें हुई हैं। संस्मरण हमेशा अतीत के बारे में होता है। इस संस्मरण में भी रेणु ने उन्हीं प्रसंगों का उल्लेख किया है जो अतीत में घटित हुई हैं। जिस समय यह संस्मरण लिखा गया उस समय रेणु और त्रिलोचन दोनों जीवित थे। और दोनों प्रसिद्धी के शिखर पर थे। इस संस्मरण को पढ़ने से त्रिलोचन के जीवन की पूरी तस्वीर हमारे सामने नहीं उभरती लेकिन जिन प्रसंगों का भी उल्लेख हुआ है उससे उनके जीवन के बारे में कुछ जानकारियां अवश्य मिल जाती हैं। त्रिलोचन से जब रेणु पहली बार बनारस में गंगा के दषाश्वमेध घाट पर मिले और उन्होंने 'मैला आंचल' के एक प्रसंग का उल्लेख किया तो उससे रेणु को ये आभास हुआ कि त्रिलोचन को शायद उनका उपन्यास पसंद नहीं आया। स्पष्ट ही एक लेखक को दूसरे लेखक से प्रशंसा की आशा रहती ही है। त्रिलोचन शास्त्री रेणु जी से कुछ वरिष्ठ भी थे। इसलिए उनकी टिप्पणी से निराश होना स्वाभाविक था। हालांकि यह निराशा बहुत दिन नहीं रही जब उन्हें अपने किसी अन्य मित्र से मालूम हुआ कि त्रिलोचन जी 'मैला आँचल' के प्रशंसक है। यह प्रसंग दोनों के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालता है। त्रिलोचन रेणु से पहली बार मुलाकात होने पर सीधे-सीधे उपन्यास की प्रशंसा करने की बजाए उसके एक प्रसंग का वह भी व्यंग्य से उल्लेख करते हैं। इससे यह तो ज्ञात होता है कि त्रिलोचन जी ने उपन्यास न सिर्फ पढ़ा है बल्कि बहुत ध्यान से पढ़ा है और उसके मामूली से मामूली प्रसंग भी उनकी स्मृति में है। लेकिन उनके इस कथन से रेणु के मन में संदेह भी पैदा हो जाता है। त्रिलोचन कवि हैं और अपने स्वभाव के अनुसार वे कोई भी बात सीधे और सरल ढंग से नहीं कहते बल्कि कुछ व्यंजना लेकर कहते हैं। यह व्यंजना सामने वाले के लिए संकट भी पैदा कर देती है जैसाकि रेणु के साथ होता है।

त्रिलोचन के व्यक्तित्व की जिस दूसरी विशेषता की ओर रेणु ने ध्यान दिलाया है वह है उनका फक्कड़पन और ग्राम्यता। त्रिलोचन की कविता में लोकजीवन के इतने रंग-रूप मिलते हैं कि लेखक को कबीर और कबीर से जुड़ी परंपरा की याद आ जाती है। त्रिलोचन के प्रसंग में वे कबीरपंथी मठ के एक बाबा विद्यार्थी जी का उल्लेख करते हैं। इस उल्लेख का मकसद ही यह है कि वे त्रिलोचन को कबीर की परंपरा में रखकर देखते हैं। न सिर्फ कविता के संदर्भ में बल्कि उनके बाह्य व्यक्तित्व और स्वभाव के संदर्भ में भी। किसानी जीवन से त्रिलोचन का संबंध इतना स्वाभाविक लगता है कि उन्हें यह महसूस होता है कि त्रिलोचन भले ही मिथिलांचल न गये हों, जहां के रेणु रहने वाले थे और जिस मिथिलांचल को ही रेणु ने 'मैला आँचल' में पेश किया था, अगर वे वहां जाएं तो उन्हें वहां कुछ भी अजनबी नहीं लगेगा। न केवल उन्हें बल्कि वहां के ठेठ किसानों को भी त्रिलोचन अपने बीच के ही व्यक्ति लगेंगे। रेणु ने त्रिलोचन के व्यक्तित्व की इस विशेषता को सीधे-सीधे पेश नहीं किया है बल्कि उन्होंने यह कल्पना करते हुए पेश किया है कि यदि त्रिलोचन वहां गये तो क्या होगा।

त्रिलोचन के इस सहज और फक्कड़ व्यक्तित्व को कबीर से जोड़ते हुए वे त्रिलोचन की कविता पर आते हैं। त्रिलोचन हिंदी की प्रगतिशील धारा के कवि हैं। लेकिन वह अपने अन्य समकालीन कवियों से कई अर्थों में भिन्न भी हैं। शमशेर ने त्रिलोचन को धरती का कवि कहा है और यही ध्वनि रेणु के इस संस्मरण में भी सुनाई देती है। कवि के रूप में त्रिलोचन की महानता बताने के लिए वह कहते हैं कि कविता समझने-बूझने या समझाने का विषय नहीं है। कविता जीने का विषय है। वे इस बात पर अफसोस जाहिर करते हैं कि वे कवि नहीं हुए लेकिन इस बात पर और ज्यादा अफसोस जाहिर करते हैं कि अगर कवि होते भी तो इस बात का मलाल रहता कि वे त्रिलोचन नहीं हो सके। इस कथन से यह समझा जा सकता है कि रेणु की नज़र में एक कवि के रूप में त्रिलोचन का कितना महत्त्व है। रेणु को त्रिलोचन के सॉनेट विशेष रूप

से पसंद हैं। सॉनेट के लिए वे त्रिलोचन को 'शब्द योगी' की संज्ञा देते हैं। वे त्रिलोचन के सॉनेट को कबीर के साखी, शबद और रमैनी की कोटि में मानते हैं।

इसी संदर्भ में वे व्यक्ति के मूल्यांकन की बात करते हैं और रवींद्रनाथ टैगोर और उनके काव्य का उदाहरण देते हुए बताते हैं कि किसी भी रचनाकार का मूल्यांकन आसान नहीं होता। रेणु का कहना है कि व्यक्ति के जीवन को, विभिन्न स्तरों पर, अलग-अलग दृष्टि से देखा-परखा जा सकता है। इससे एक ही व्यक्ति की कई छवियां निर्मित हो सकती हैं और वे एक दूसरे से भिन्न ही नहीं एक दूसरे की विरोधाभासी भी हो सकती हैं। त्रिलोचन के व्यक्तित्व का एक अन्य पहलू उनको भोजन करते हुए सामने आता है जिसका आत्मीय चित्रण रेणु ने किया है। त्रिलोचन बैठकर आराम से बातें करते हुए भोजन करते हैं और रेणु को लगता है कि आजकल खड़े होकर खाने की जो 'बुफे' पद्धति है उससे त्रिलोचन जैसे व्यक्ति का कभी पेट नहीं भर सकता। रेणु के लिखे इस संस्मरण में त्रिलोचन के व्यक्ति और रचनाकार दोनों रूपों को उन्होंने कबीर और कबीर परंपरा से जोड़कर देखा है। और यह भी महज संयोग नहीं है कि उन्होंने इसमें अन्य जिन कवियों को याद किया है, वे रवींद्र हो या फारसी के सूफ़ी कवि जलालुद्दीन रूमी वे किसी न किसी रूप में कबीर की परंपरा से जुड़ते हैं। त्रिलोचन निश्चय ही रहस्यवादी कवि नहीं हैं, प्रगतिशील कवि हैं। लेकिन उनकी कविता का मिज़ाज़ प्रगतिशील कवियों में भी काफी अलग सा है। प्रगतिशील कवियों में शमशेर और नागार्जुन से कुछ जुड़ते हैं और कुछ उनसे भिन्न हैं।

ck/k iz'u

4. रेणु ने त्रिलोचन शास्त्री को पहली बार देखकर किसको याद किया?
   क) बाबा विद्यार्थी जी को
   ख) शमशेर को
   ग) रवींद्रनाथ को
   घ) कबीर को ( )

5. रेणु के कविता संबंधी विचारों को एक वाक्य में प्रस्तुत कीजिए।

   ....

   ....

6. त्रिलोचन को देखकर रेणु को कबिराहा बाबा की याद क्यों आई?

   ....

   ....

39-6 ys[kdh; O;fDrRo dh vfHkO;fDr

संस्मरण में निबंध की अपेक्षा लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव ज्यादा नज़र आता है। दरअसल संस्मरण में लेखक प्रत्यक्षतः उपस्थित रहता है। इस संस्मरण में भी ऐसा ही है। रेणु पूरे संस्मरण में त्रिलोचन के साथ उपस्थित दिखायी देते हैं। यही कारण है कि फणीश्वरनाथ रेणु के इस संस्मरण में त्रिलोचन शास्त्री का व्यक्तित्व जितना उभरकर आता है उतना ही स्वयं रेणु का व्यक्तित्व भी उभरकर आता है। रेणु इस संस्मरण में हर कहीं उपस्थित हैं। अपने सोच और अपनी अभिरुचि के साथ। रेणु और त्रिलोचन दोनों ही हिंदी के लेखक हैं लेकिन त्रिलोचन मुख्य रूप से कवि हैं जबकि रेणु कथाकार। त्रिलोचन ने कुछ कहानियां भी लिखी हैं लेकिन उनकी पहचान कवि के रूप में ही हैं। रेणु को इस बात का अफसोस है कि वे कवि नहीं हैं जबकि कथाकार होना कवि होने से कमतर नहीं है। लेकिन स्वयं रेणु कवि होने को ज्यादा महत्त्व देते प्रतीत होते हैं। रेणु भले ही कवि न हों लेकिन कविता में उनकी गहरी रुचि भी है और समझ भी। वे न सिर्फ त्रिलोचन के काव्य की विशेष रूप से उनके सॉनेट की विस्तार से चर्चा करते हैं बल्कि इस संस्मरण में उन्होंने जिन अन्य रचनाकारों का उल्लेख किया है, वे सब भी मुख्यतः कवि हैं। चाहे कबीर हों, रूमी हों या नजरुल इस्लाम और रवींद्रनाथ टैगोर। इसी संदर्भ में उनका यह कहना कि उन्हें ज़िंदगी भर इस बात का अफसोस रहेगा कि वे कवि न हो सके, इसे समझा जा सकता है।

रेणु के इस संस्मरण को पढ़ने से मालूम पड़ता है कि उनकी अभिरुचियों का क्षेत्र बहुत विशाल था। हिंदी साहित्य के अलावा बांग्ला काव्य परंपरा की भी उनको पूरी जानकारी थी। रवींद्र और नजरुल इस्लाम का उल्लेख तो आता ही है इनके अलावा रवींद्र संगीत के गायकों और

बाउल परंपरा के गायकों से भी उनका पर्याप्त परिचय है। उन्होंने कुछ जगह कविताओं के उद्धरण भी दिये हैं जो काव्य के प्रति उनके गहरे लगाव को व्यक्त करता है। रेणु के व्यक्तित्व की विशेषता यह भी है कि वह मामूली सी लगने वाली बात को भी किसी बड़े संदर्भ के साथ जोड़ देते हैं और उसे एक दार्शनिक आयाम भी दे देते हैं। त्रिलोचन को भोजन करते देखते हुए वह भोजन करने के विभिन्न तरीकों और उसकी विस्तृत प्रक्रिया का वर्णन यह बताता है कि एक रचनाकार के रूप में उनके लिए छोटी-से-छोटी बात का भी कितना महत्त्व है। शब्दों के साथ खिलवाड़ करना उनकी भाषिक क्षमता को दर्शाता है। मसलन, *'सुपर मार्केट डिपार्टमेंट स्टोर संस्कृति'* या *'सुरक्षा चैतन्य समाज' 'चतुर चीलों'* जैसे पदों का प्रयोग उनकी मौलिक कल्पनाशीलता को दर्शाता है। संस्मरण विस्तृत न होते हुए भी, रेणु जी कुछ प्रसंगों के माध्यम से ही न सिर्फ त्रिलोचन के व्यक्तित्व को उभारने में कामयाब रहे हैं, वरन अपने बारे में भी उन्होंने बहुत कुछ कहा है।

cks/k iz'u

7. फणीश्वरनाथ रेणु के व्यक्तित्व की कोई एक विशेषता बताइए।

   ....

   ....

   ....

8. फणीश्वरनाथ रेणु अपनी किस रचना के कारण जाने जाते हैं?

   ....

   ....

39-7 lajpuk-f'kYi

संस्मरण में भी भाषा और शैली का विशेष महत्त्व है। रेणु का हिंदी भाषा पर पूरा अधिकार था। वे भाषा की शुद्धता के समर्थक नहीं थे। मैला आँचल में उन्होंने मैथिली भाषा का प्रयोग बहुत ही सृजनात्मक किया था। संस्मरण कथात्मक विधा नहीं है फिर भी वे भाषा में अवसर के अनुरूप नये-नये प्रयोग करने से नहीं हिचकिचाते। संस्मरण की कोई निश्चित शैली नहीं होती। इसे निबंध की तरह भी लिखा जा सकता है, जीवनी की तरह और कहानी की तरह भी। रेणु के इस संस्मरण की भाषा और शैली की विशेषताओं का विवेचन हम इस भाग में करेंगे।

Hkk"kk

फणीश्वरनाथ रेणु आंचलिक कथाकार हैं। आंचलिक कथाकार की विशेषता यह होती है कि वह अपने लेखन में क्षेत्र विशेष की भाषा का प्रयोग इस तरह करता है कि उससे रचना में आंचलिकता का प्रभाव साफतौर पर देखा जा सके। कथा साहित्य में आंचलिकता भाषा के माध्यम से ही अपने को व्यक्त करती है। लेकिन इस संस्मरण का संबंध अंचल विशेष से नहीं है। रेणु यदि मिथिलांचल के रहने वाले थे, तो, त्रिलोचन बनारस के पास के रहने वाले थे। जहां की भाषा भोजपुरी है। लेकिन दोनों को जोड़ने वाली भाषा वह खड़ी बोली है जो हिंदी के इन दोनों लेखकों द्वारा अपने-अपने मिज़ाज़ के अनुसार प्रयुक्त हुई है। इस संस्मरण में रेणु ने परिनिष्ठित खड़ी बोली का ही प्रयोग किया है लेकिन विषय और प्रसंग के अनुसार उन्होंने भाषा का स्वरूप बदला भी है। मसलन, कबिराहा बाबा का प्रसंग आने पर वे विद्यार्थी जी के बारे में अन्य लोगों के मुख से मैथिली ही बुलवाते हैं: *"बिदियारथीजी मोती जैसन अक्षर में बीजक लिखलन हैं;yyyy ई बिदियारथीजी तो बीजक के एक-एक गो 'साखी' और 'शबद' के ऐसन ऐसन बिलच्छन आ 'अमनियाँ अरथ'अपन-तहियायेल भाषा' में समझावे हैं कि सार 'सुन्ननिहार-सव' के 'अथि' फट जाये;yyyy "*। भाषा के मामले में रेणु जी का दृष्टिकोण उदार है। इस संस्मरण की भाषा में विषय और भाव के अनुसार शब्दों का इस्तेमाल किया गया है। तत्सम, तद्भव, देशज, अंग्रेजी, उर्दू आदि जो भी शब्द हिंदी में खप सकते हैं और रेणु जी जो कहना चाहते हैं उसको प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने में सहायक होते हैं तो उनका इस्तेमाल करने में वे बिल्कुल नहीं हिचकिचाते। उदाहरण के लिए, इन पंक्तियों को देखें, *"बड़े-बड़े गृहस्थ गृहों की 'भक्तिमय आत्माएँ" उनके पास आकर, अपने चेहरे से 'चुनरी' हटाकर, नैनों से नैना मिलाती 'कबिराहा अंदाज' में दोनों हाथ जोड़कर, विगलित-सी होती हुई पुकार उठेंगी'–सा-हे-ब!*

बंदगी!!' निश्चय ही त्रिलोचन जी अचरज में पड़ जायेंगे। मजा आ जायेगा।" इन चार पंक्तियों में आप देखेंगे कि गृहस्थ गृहों, विगलित-सी, जैसे तत्सम शब्दों का प्रयोग है, तो नैना, हाथ, जोड़कर, अचरज जैसे तद्भव शब्दों का भी प्रयोग है। साथ ही, अंदाज, पुकार, मजा, बंदगी जैसे उर्दू शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। भाषा की यह छटा पूरे संस्मरण में हर कहीं दिखायी देती है। रेणु की भाषा रचनाकार की भाषा है। वे भाषा का उपयोग रचनात्मक ढंग से करते हैं। यही कारण है कि रेणु की गद्य रचना पढ़ते हुए कथा रस का आस्वादन आता है।

'kSyh

रेणु द्वारा लिखे इस संस्मरण में कई अन्य विधाओं की विशेषताओं का समावेश भी हुआ है। संस्मरण का अर्थ है, स्मृतियों के आधार पर किसी व्यक्ति, घटना, प्रसंग आदि के बारे में लिखना। स्मृतियां हमेशा बीते हुए के बारे में होती है। अतीत ही स्मृतियों के रूप में हमारे सामने आता है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि संस्मरण हमेशा अतीत के बारे में होता है। लेकिन संस्मरण किसी न किसी मकसद से प्रेरित होकर लिखा जाता है। यह संस्मरण हिंदी के कथाकार रेणु द्वारा हिंदी के ही एक अन्य प्रख्यात कवि त्रिलोचन शास्त्री के बारे में लिखा गया है। हिंदी के इन दो प्रसिद्ध रचनाकारों के बारे में पाठक ज्यादा से ज्यादा जानने को उत्सुक रहते हैं और अगर संस्मरण एक लेखक द्वारा दूसरे लेखक के बारे में है, तो उसमें दी गयी जानकारी का महत्त्व विशेष रूप से बढ़ जाता है। रेणु जी चूंकि कथाकार हैं इसलिए वे संस्मरण में कहानी की विशेषताओं का सहज ही समावेश कर डालते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि संस्मरण को कहानी की तरह लिखा गया है। दरअसल कुछ प्रसंग उन्होंने कहानी की तरह लिखे हैं। जैसे त्रिलोचन जी के भोजन का प्रसंग या पहली मुलाक़ात का प्रसंग। लेकिन कुछ अन्य प्रसंगों में उन्होंने आलोचक की भूमिका भी निभायी है। त्रिलोचन जी की कविता का विश्लेषण उन्होंने विचारक की तरह किया है। लेकिन विश्लेषण करते हुए भी आलोचना की तरह शुष्क नहीं होने देते जहां भी ऐसा होता नज़र आता है वे कुछ ऐसा प्रसंग ले आते हैं कि पाठक सहज ही समझ लेता है कि वह संस्मरण पढ़ रहा है, आलोचना नहीं। त्रिलोचन की कविता की विशिष्टता बताते हुए वे इस बात का ध्यान रखते हैं कि त्रिलोचन की कविता के प्रति उनकी भावनाएं तो व्यक्त हो जाए लेकिन वे विस्तृत विश्लेषण से बचते भी हैं। मसलन वे लिखते हैं, *"कवि नहीं हो सका, यह कसक सदा कलेजे को सालती रहेगी। और अगर कहीं कवि हो जाता तो, त्रिलोचन नहीं हो पाने का मलाल जीवन-भर रहता"।* इस वाक्य से एक कवि के रूप में त्रिलोचन के प्रति उनकी भावना का पता चलता है और बल भी उसी पर है। इसी तरह जब वे त्रिलोचन के सॉनेट पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि *"त्रिलोचन ने अपने बारे में अपने मुँह से अपने सॉनेट में जो कुछ भी कहा है, उसके अतिरिक्त "और कुछ" जानने-सुनने की वासना मन में कभी नहीं जगी"*। इन पंक्तियों का अर्थ है कि त्रिलोचन के सॉनेट उनके व्यक्तित्व का दर्पण है और सॉनेट के माध्यम से त्रिलोचन को सच्चे अर्थों में जाना जा सकता है। सॉनेट के कारण वे उन्हें शब्द योगी कहते हैं और उनकी तुलना कबीर के काव्य से करते हैं। स्पष्ट ही यहां भावनाओं से ज्यादा कुछ कहा गया है। लेकिन संस्मरण की सीमाओं में रहते हुए ही वे अपनी बात कहते हैं।

त्रिलोचन से संबंधित कई निजी प्रसंगों का उल्लेख करते हुए भी उन्होंने उन तथ्यों का समावेश नहीं किया है जिससे कि संस्मरण जीवनी की तरह बन जाए। उनका मुख्य बल इस संस्मरण में त्रिलोचन के रचनाकार व्यक्तित्व विशेष रूप से कवि व्यक्तित्व को उभारना है। भोजन वाले प्रसंग में भी उन्होंने एक कवि के व्यक्तित्व के ऐसे पहलू को उजागर किया है जो भोजन करते हुए भी विचार-विमर्श की दुनिया से अपने को मुक्त नहीं रखता। इस तरह यह संस्मरण त्रिलोचन के व्यक्तित्व का ऐसा रेखाचित्र प्रस्तुत करता है जिसमें रेणुजी ने बहुत कम रेखाओं के द्वारा ही त्रिलोचन के व्यक्तित्व की केंद्रीय विशेषताओं को पूरी प्रबलता और प्रभाव से उभारा है।

39-8 ifrik|

संस्मरण हमेशा किसी महत्तर उद्देश्य से प्रेरित होकर लिखा जाता है। जब कोई लेखक किसी अन्य लेखक पर संस्मरण लिखता है तो स्वाभाविक है कि वह उस लेखक के व्यक्तित्व के कुछ ऐसे पहलुओं को उजागर करता है जो उनके रचनाकार और व्यक्ति दोनों को समझने में सहायक हो। रेणु के इस संस्मरण में त्रिलोचन शास्त्री के ये दोनों पहलू प्रभावशाली रूप में

उभरकर सामने आते हैं। व्यक्ति और रचनाकार दोनों रूपों में त्रिलोचन के व्यक्तित्व की विशिष्टता को रेणु ने प्रभावशाली ढंग से उभारा है। इसके लिए उन्होंने कुछ ही प्रसंगों का उल्लेख किया है। लेकिन खास बात यह है कि दोनों को एक दूसरे से अलग कर नहीं बल्कि एक दूसरे के माध्यम से उन्होंने दोनों पहलुओं को उभारा है। मसलन, त्रिलोचन के व्यक्तित्व के लोक रूप को 'मैला आँचल' के प्रसंग के माध्यम से उभारा है जिससे वे त्रिलोचन को अपने गाँव और वहां के लोगों के साथ जोड़कर उनके लोक व्यक्तित्व को रेखांकित करते हैं। उनकी इसी विशेषता को बाद में वे कबीर के साथ भी जोड़ते हैं और कबीर के काव्य से त्रिलोचन के सॉनेट को जोड़ते हैं। इसी तरह भोजन के प्रसंग में भी त्रिलोचन के व्यक्तित्व का लोक रूप ही सामने आता है लेकिन यह व्यक्तित्व उनके कवि रूप में भी प्रतिबिंबित होता है। हिंदी के प्रगतिशील कवियों में त्रिलोचन को प्रायः लोक चेतना का कवि कहा गया है और यह संस्मरण इस बात की पुष्टि करता है।

ck/k i:'u

9. इस संस्मरण में किन अन्य विधाओं का प्रभाव दिखायी देता है?

   ....

   ....

10. संस्मरण की भाषा की दो विशेषताएं बताइए।

    ....

    ....

11. इस संस्मरण में त्रिलोचन के कौन से दो पहलू उभरकर आये हैं?

    ....

    ....

vH;kl

3. इस संस्मरण के आधार पर त्रिलोचन के रचना व्यक्तित्व का परिचय दीजिए।
4. कविता के बारे में रेणु के विचारों को प्रस्तुत करते हुए बताइए कि वे त्रिलोचन के काव्य से क्यों प्रभावित थे।
5. त्रिलोचन संस्मरण की भाषा और शैली की विशेषताएं बताइए।

39-9 lkjka'k

हिंदी गद्य के इस पाठ्यक्रम की 39वीं इकाई और खंड छह की इस सातवीं इकाई का अध्ययन आपने कर लिया है।

- इस इकाई में आपने हिंदी कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु द्वारा हिंदी कवि त्रिलोचन शास्त्री पर लिखे संस्मरण 'त्रिलोचन' का वाचन किया है। इस संस्मरण को पढ़ने के बाद इसका सार भी आपने पढ़ा है। इससे आपको ज्ञात हो गया होगा कि त्रिलोचन के रचना व्यक्तित्व की किन विशेषताओं से रेणु प्रभावित रहे हैं। आप स्वयं इस संस्मरण का सार अपने शब्दों में लिख सकते हैं।
- आपने संस्मरण के एक प्रमुख अंश की संदर्भ सहित व्याख्या का भी अध्ययन किया है। आप इसके आधार पर और पूरी इकाई पढ़ने के बाद कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकते हैं।
- संस्मरण की अंतर्वस्तु की विशेषताओं का भी आपने अध्ययन किया है। इस अध्ययन से आप यह जान पाये होंगे कि रेणु की नज़र में त्रिलोचन की कौन-सी विशेषताएं हैं। आपने यह भी जाना है कि त्रिलोचन व्यक्ति के तौर पर भी और कवि के तौर पर भी ग्रामीण अंचल के लोगों से, उनकी सांस्कृतिक विरासत से काफी एकमेक हैं। त्रिलोचन का काव्य कबीर परंपरा का काव्य है। स्वयं रेणु को इस बात का मलाल है कि वे त्रिलोचन की तरह कवि नहीं है। आप इस संस्मरण की अंतर्वस्तु का विश्लेषण करते हुए उसकी विशेषताएं बता सकते हैं।
- अन्य कई गद्य विधाओं की तरह संस्मरण पर भी लेखक के व्यक्तित्व का प्रभाव होता है। यह प्रभाव इस संस्मरण पर भी देखा जा सकता है। रेणु द्वारा लिखे गये इस संस्मरण

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

में रेणु के व्यक्तित्व की कई विशेषताओं से हम परिचित होते हैं। रेणु का लोक जीवन, साहित्य, संगीत आदि कला परंपराओं की विस्तृत जानकारी का परिचय भी हमें इस संस्मरण से मिलता है। इसके अलावा स्वयं रेणु की व्यक्तिगत अभिरुचियों से भी हम परिचित होते हैं। आप इस इकाई को पढ़कर संस्मरण पर रेणु के व्यक्तित्व के प्रभाव का विवेचन कर सकते हैं।

- रेणु के संस्मरण में भाषा के कई रूप देखने को मिलते हैं। भाषा की रचनात्मकता का प्रमाण यह संस्मरण भी है। उनके इस संस्मरण में तत्सम, तद्भव, देशज, उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। यही नहीं उन्होंने कई नये प्रयोग भी विषय की जरूरत के हिसाब से किये हैं। संस्मरण गद्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है लेकिन इस विधा के लेखन पर भी अन्य विधाओं का प्रभाव देखा जा सकता है। इस संस्मरण में भी कहानी, रेखाचित्र और आलोचना विधाओं का यथास्थान प्रयोग किया गया है। इस इकाई को पढ़कर आप इस संस्मरण की भाषा और शैलीगत विशेषताओं का उल्लेख कर सकते हैं।
- एक लेखक द्वारा दूसरे लेखक पर संस्मरण लिखने के पीछे कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। इस संस्मरण को पढ़ने से हम प्रगतिशील परंपरा के विशिष्ट कवि त्रिलोचन शास्त्री के रचना व्यक्तित्व की कई विशेषताओं से परिचित होते हैं। साथ ही, हम रेणु के गद्य लेखन विशेष रूप से संस्मरण लिखने की उनकी रचनात्मक क्षमता से भी परिचित होते हैं। इस संस्मरण और उससे संबंधित इकाई को पढ़कर आप इसके उद्‌देश्य की व्याख्या भी कर सकते हैं।

39-10 ck/k iz'uks@vH;klks ds mÙkj

Ckks/k iz'uks ds mÙkj

1. ख) 2. घ)
3. रवींद्रनाथ टैगोर, त्रिलोचन शास्त्री, कबीर, नज़रुल इस्लाम, नागार्जुन और शमशेर।
4. क)
5. रेणु कविता को समझने-बूझने या समझाने का विषय नहीं मानते थे बल्कि उनके विचार में कविता जीने का विषय है।
6. कबिराहा बाबा में जो सादगी और सहजता तथा लोक से जुड़ाव दिखायी देता था, वह त्रिलोचन के व्यक्तित्व में भी रेणु को दिखायी दी।
7. रेणु के व्यक्तित्व की एक विशेषता यह है कि वह मामूली से मामूली लगने वाली बात को भी किसी बड़े संदर्भ से जोड़कर उसे नया अर्थ दे देते थे।
8. फणीश्वरनाथ रेणु अपने आंचलिक उपन्यास 'मैला आँचल' के लिए जाने जाते हैं। यह उनका पहला उपन्यास था।
9. रेखाचित्र, कहानी और आलोचना विधा का प्रभाव इस संस्मरण पर दिखायी देता है।
10. i) भाषा के प्रति रेणु का दृष्टिकोण उदार था। वे अन्य भाषाओं के शब्दों का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग करते थे।
    ii) भाषा का रचनात्मक उपयोग करते थे।
11. व्यक्ति त्रिलोचन और कवि त्रिलोचन।

vH;kl

1. त्रिलोचन संस्मरण और इकाई का अध्ययन कर व्याख्या स्वयं करने का प्रयास करें।
2. त्रिलोचन संस्मरण और इकाई का अध्ययन कर व्याख्या स्वयं करने का प्रयास करें।
3. भाग 39.5 को ध्यान से पढ़कर उत्तर लिखिए।
4. भाग 39.5 और 39.6 को ध्यान से पढ़कर उत्तर स्वयं लिखिए।
5. भाग 39.7 को ध्यान से पढ़कर उत्तर स्वयं लिखिए।

bdkbl 40 *fl/k e l=g eghu* ¼ukxktqu½ % okpu vkj fo'y"k.k

bdkbl dh :ijs[kk

40.0 उद्देश्य
40.1 प्रस्तावना
40.2 निबंध का वाचन : सिंध में सत्रह महीने
40.3 निबंध का सार
40.4 निबंध की संदर्भ सहित व्याख्या
40.5 अंतर्वस्तु :
    40.5.1 विचार पक्ष
    40.5.2 भाव पक्ष
40.6 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति
40.7 संरचना-शिल्प
    40.7.1 भाषा
    40.7.2 शैली
40.8 प्रतिपाद्य
40.9 सारांश
40.10 शब्दावली
40.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर
खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

40-0 mís';

इस इकाई में हम सुप्रसिद्ध रचनाकार नागार्जुन के निबंध 'सिंध में सत्रह महीने' का अध्ययन करेंगे। निबंध के साथ लेखक-परिचय, निबंध का सार और उसके महत्त्वपूर्ण अंशों की सप्रसंग व्याख्या भी प्रस्तुत कर रहे हैं। निबंध का वाचन करने के बाद निबंध के विभिन्न पक्षों के विश्लेषण द्वारा उसका मूल्यांकन भी किया जाएगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- निबंध की अंतर्वस्तु का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- निबंध में आए कठिन शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों के अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे;
- निबंध के महत्त्वपूर्ण अंशों और उक्तियों की व्याख्या कर सकेंगे;
- निबंध की अंतर्वस्तु का विश्लेषण कर उसकी विशेषताएं बता सकेंगे;
- निबंध पर लेखकीय व्यक्तित्व के प्रभाव का वर्णन कर सकेंगे;
- भाषा और शैली की दृष्टि से निबंध का विश्लेषण कर सकेंगे; और
- निबंध के प्रतिपाद्य का उल्लेख कर सकेंगे।

40-1 iLrkouk

इस इकाई में हम 'सिंध में सत्रह महीने' निबंध का अध्ययन करने जा रहे हैं। यह इस खंड की अंतिम इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने संस्मरण विधा का अध्ययन किया है और इस इकाई में यात्रावृत्तांत का अध्ययन करने जा रहे हैं।

'सिंध में सत्रह महीने' नागार्जुन द्वारा रचित यात्रावृत्तांत है। नागार्जुन कवि और उपन्यासकार के रूप में हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान रखते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार नागार्जुन का अर्थ है ''हिंदी प्रदेश का किसान व्यक्तित्व''। इसलिए आश्चर्य नहीं कि उनके समूचे कृतित्व में मनुष्य, उसके स्वप्न-संघर्ष-जिजीविषा तथा मानव-जीवन के प्रति गहरे संवेदनात्मक लगाव को देखा जा सकता है। वे विचारों से वामपंथी थे किंतु उनकी प्रतिबद्धता किसी एक राजनीतिक दल के लिए न होकर मनुष्य मात्र और समाज के प्रति थी। उनके रचनात्मक व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है विरोधों का सामंजस्य करने की अद्भुत शक्ति। एक ओर जहां बौद्ध धर्म और दर्शन को समझने की गहरी उत्कंठा के कारण वे अपने जीवन के आरंभिक दौर में बौद्ध भिक्षु बने तो वहीं दूसरी ओर जन-आंदोलनों से जुड़ने की सक्रिय व्यग्रता ने उन्हें जन

आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी करने की प्रेरणा दी। यात्रा के लिए समयाभाव के बीच भी समय निकाल लेते हैं तो सृजन के दौरान समय को रच कर सनातन कर देते हैं।

1911 में जन्मे नागार्जुन का पूरा नाम वैद्यनाथ मिश्र 'यात्री' था। जीवन भर अभावों और निर्धनता से दो-दो हाथ करते रहे किंतु आस्था और कर्मनिष्ठा का स्वर कभी क्षीण नहीं हुआ। स्वभाव से आवेगशील, जीवंत और फक्कड़ रहे। अद्भुत मेधा और ललक का परिचय देते हुए आपने स्वाध्याय से पालि-प्राकृत एवं संस्कृत भाषाएं सीखीं और इनके साहित्य का गंभीर अध्ययन किया। लेखन जीविकोपार्जन का जरिया भी था और जीने का मकसद भी। हिंदी के अतिरिक्त मातृभाषा मैथिली और संस्कृत में भी आपने रचनाएं कीं। अनुवाद कार्य भी जम कर किया जिनमें 'मेघदूत' और 'गीतगोविंद' जैसी शास्त्रीय कृतियों का अनुवाद विशेष उल्लेखनीय है। आपकी प्रमुख काव्य-कृतियां हैं– चना जोर गरम, सतरंगे पंखोंवाली, प्यासी पथराई आंखें, तालाब की मछलियां, खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पुरानी जूतियों का कोरस, हजार-हजार बाहों वाली आदि। आपके प्रसिद्ध उपन्यास हैं – रतिनाथ की चाची, बाबा बटेसरनाथ, दुखमोचन, बलचनमा, वरुण के बेटे, नई पौध, कुंभीपाक आदि। 'अन्नहीनम् क्रियाहीनम्' निबंध संग्रह है। 87 वर्ष की आयु में नवंबर 1998 में आपका निधन हो गया।

यह नागार्जुन रचित यात्रा संस्मरण है। आजादी से पहले नागार्जुन को अविभाजित भारत के सिंध प्रांत में रहने और घूमने का अवसर मिला था। उसी पर आधारित है यह यात्रावृत्तांत- सिंध में सत्रह महीने। यह निबंध पहली बार दिसंबर, 1945 में प्रकाशित हुआ था। आप अगले भाग में इसका वाचन करने जा रहे हैं।

40-2 fuca/k dk okpu % fla/k esa l=g eghus

गर्मी बेहद थी। ट्रेन में रेत उड़-उड़कर इतनी आ रही थी कि सभी आँख मुँह ढके हुए थे। स्टेशनों पर पानी का मिलना असम्भव था – कई जगह देखा, देहाती लोग पानी के लिए मिट्टी का बर्तन लेकर इंजन की प्रतीक्षा में खड़े थे। पंजाब-सिन्ध सरहद के इस इलाके में पानी की इतनी कमी है कि लोगों को या तो शहर से पानी लाना होता है या रेलगाडी के ड्राइवरों की कृपा पर वे निर्भर रहते हैं। दो-तीन प्रकार के e:mnfHknksa के क्षितिज चुम्बी जंगलों में सैकेड़ों ऊंट चर रहे थे। बस ऊंट ही ऊंट और जानवरों का नाम तक नहीं। पथ और पगडण्डियाँ जनशून्य थीं। सहयात्री एक मुसलमान फकीर था। पूछने पर जवाब मिला-हूरों के उत्पात से छोटे-छोटे स्टेशन बन्द हो गए हैं।

सुबह हम मुल्तान में गाड़ी पर चढ़े थे। समासहा जंक्शन तक तो पंजाबी वातावरण रहा, उसके बाद हिन्दुओं के ifj/kku में धोती के दर्शन होने लगे। तहमद और पाजामा पंजाब के साथ साथ पीछे छूट गया। ट्रेन ज्यों-ज्यों सिन्धु नद के dNkj में आती गई, त्यों-त्यों जंगल घना होता गया। यह जंगल विराटकाय वनस्पतियों के नहीं थे, तो भी काफी घने थे। रोहड़ी के पास उस महान सिन्धु नदी की झांकी मिली कि जिसकी धारा में डूब लगाकर सिकन्दर ने अपने देश-देवता जुपीटर को अर्घ्य दिए थे।

रोहड़ी सिन्धु के किनारे vofLFkr एक प्राचीन नगर है। आजकल ukFkZ-osLVuZ रेलवे का जंक्शन होने के कारण उसकी प्रसिद्धि है। पर, पहले बड़े-बड़े सूफियों की लीला-भूमि के रूप में ही यह स्थान विख्यात था। अभी भी सूफियों के दो-चार अखाड़े वहाँ मौजूद हैं। सिन्धु के उस पार सक्खर-जैसा प्रसिद्ध नगर है। बीच में साधुबेला-जैसा प्रसिद्ध टापू पड़ता है। पास में इंजीनियरिंग का महान चमत्कार वह महासेतु है। पंजाब से आने वाली गाड़ियाँ यहाँ काफी देर ठहरती हैं, फिर क्वेटा या कराची की ओर जाती हैं।

रोहड़ी स्टेशन पर उतरते ही 'पल्ला' मछली के तले हुए बड़े-बड़े टुकड़ों ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया। जन्मजात eRL;-ykyqirk पानी बनकर जीभ पर उतर आई और मैंने अन्दर-ही-अन्दर अपने मैथिल पूर्वजों की स्वादवृत्ति को प्रणाम किया। तो क्या प्रणाम ही करके रह गया? नहीं, स्टेशन से बाहर निकल कर सराय में ठहरा और गुरूनानक होटल में बैठकर इत्मीनान से भगवान के मत्स्यावतार की पूजा की।

मरूउद्भिदों-रेगिस्तान में जमीन फोड़ कर निकले पेड़-पौधे आदि; परिधान-वेशभूषा, पोषाक; कछार-नदी के किनारे की उपजाऊ नीची भूमि; अवस्थित-बसा हुआ; नार्थ-वेस्टर्न-अंग्रेजी शब्द, उत्तर-पश्चिमी; मत्स्य-लोलुपता-मछली खाने का लोभ।

दूसरे दिन पुल पार करके सक्खर देखने गया। बाजारों में हिन्दुओं को धोती ही पहने पाया। नौजवानों और बच्चों की बात छोड़ दीजिए। अभी कल सुबह तक मैं पंजाब में था, जहां धोती का पहनावा fgdkjr की निगाह से देखा जाता था। ik/kk-पुरोहित, पूजा-पाठ, भोजन भण्डारा के समय धोती पहन लें, तो पहन लें; वरना वे भी पंजाब का भद्र परिधान ही पहनते हैं - चुस्त पाजामा, अचकन या कोट और सिर पर साफा, चादर हुई तो हुई। इस प्रकार पंजाब के दैनिक जीवन से धोती को हिन्दुओं ने हटा दिया है। पंजाब ही क्यों, लखनऊ से हम यही हाल देखते आ रहे थे। सिन्धु के किनारे-किनारे मीलों तक चली गई है सक्खर बस्ती। जरा दूर हटकर नया सक्खर भी बस रहा है। उस दिन शायद पूर्णिमा थी। हजारों नागरिक सिन्धुनद के दर्शन करने आये थे। दोने में dqde और v{kr डालकर दीप जलाकर उसे प्रवाह में छोड़ रहे थे। 'kr-lgL= दीपिकाओं का वह समूह अरब सागर की ओर बहा जा रहा था। और, मैं सिन्धी जनता के श्रद्धा-निवेदन का वह मधुर प्रतीक देख-देखकर चित्र-लिखित-सा खड़ा था। एक वृद्ध सज्जन ने भावावेश में पाकर मुझे छेड़ दिया— कहां से आये महाराज?

मैंने संक्षेप में बात दिया और पूछा— नदी के किनारे इस प्रकार श्रद्धापूर्वक दीप बहाते तो मैंने कहीं नहीं देखा है, आपके देश में यह कौन सी रीति है?

वृद्ध सज्जन ने कहा- हम सिन्धी o#.k के उपासक है। जहां जाएंगे आप इस देश में यही रीति पाएँगे।

उसी प्रसंग में उक्त सज्जन ने एक vu"Vi सुनाया—

> केचिदत्र निराकाराः साकाराश्च तथाऽपरे।
> वयं संसार संतप्ता नीराकारमुपास्महे।।

अर्थात्-कुछ आदमी तो इस दुनिया में निराकार की उपासना करते हैं, कुछ साकार की; परन्तु भव-ताप से सन्तप्त हम प्राणी नीराकार यानी जलमय भगवान की उपासना करते हैं।

मैं यह सुनकर दंग रह गया। आगे कई बार, कई जगह सिन्ध में इस प्रकार के दृश्य देखने को मिले। उन पर पृथक् ही एक लेख लिखा जा सकता है। प्रकारान्तर वरुण की उपासना में यहाँ के मुसलमान भी भाग लेते हैं। सिन्धुनद को 'दरियशाह' जैसे महामान्य नाम से वे सम्बोधित करते हैं।

उस दिन घूमघाम कर साधुवेला भी देख आया। उदासी साधुओं का बहुत बड़ा अखाड़ा है। पाँच सौ बीघे का jdck होगा। साधुओं का बगीचा ठहरा, हिन्दुस्तान भर से तरह-तरह के फलों की गुठलियाँ ला-लाकर यहाँ वे लगाते हैं। एक ही जगह आम, अमरूद, जामुन, कटहल, केला, लीची, सन्तरा, अंगूर, नासपाती, सेब, बेर आदि मैंने वहीं देखे।

-2-

सत्रह महीने तक सिन्ध से मेरा सम्पर्क रहा— हैदराबाद की सारस्वत ब्राह्मण पाठशाला में प्रधानाध्यापक पद पर कुछ दिन, और कुछ दिन सिन्ध की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मुख्य समिति के मुख्य पत्र 'कौमी बोली' के सम्पादक रूप में।

1941 की ene'kekjh के अनुसार सिन्ध प्रान्त की जनसंख्या 45 लाख है, जिसमें 11 लाख हिन्दू हैं। जनता की धार्मिक मनोवृत्ति सूफी और नानकपन्थी हैं। आठवीं सदी के शाहनमाह के अरबी लेख से पता चलता है कि उस समय वहाँ बौद्ध और ब्राह्मण दोनों ही संस्कृति के लोग रहते थे। सिन्ध पर अरबी आक्रमण मुहम्मद बिन कासिम द्वारा 692 ई. में हुआ। तब से इस भूमि में इस्लामी भावनाओं का प्राधान्य चला आ रहा है। मीरों, कलहारों और नवाबों की सामन्तशाही से ऊबकर स्थानीय जनता राजपूताना, गुजरात और पंजाब में जा बसी और सिन्धुनद के उपजाऊ इलाकों को आगन्तुकों के लिए खाली कर गई। उन्हें तलवार छोड़कर तराजू का सहारा लेना पड़ा। इसी से सिन्ध का नागरिक जीवन आज हिन्दू-प्रधान हो गया।

हिकारत-घृणा; पाधा-उपाध्याय का तद्भव रूप; कुंकम-केसर, रोली; अक्षत-चावल; शत-सहस्त्र-सैंकड़ों-हजारों; वरुण-जल-देवता; अनुष्टुप-आठ-आठ अक्षरों के चार शब्दों का एक संस्कृत छंद; रकबा-क्षेत्रफल; मर्दुमशुमारी-जनगणना।

गुरू नानक की सन्तवाणी यहाँ के हिन्दुओं और दूसरे लोगों में काफी लोकप्रिय है। सूफी सन्तों की परम्परा यहाँ ऐसी प्रबल रही हैं कि सभी सिन्धी सूफी धारणाओं से ओत-प्रोत हैं। किसी सिन्धी हिन्दू से आप मिलिए और पूछिए कि तुम क्या मानते हो, वह अवश्य गुरू नानक और शाह अब्दुल लतीफ के दो चार पद सुना देगा। शाह अब्दुल बहुत बड़े सूफी कवि थे। सिन्ध में वह इतने लोकप्रिय हैं कि उन्हें वहां का तुलसीदास कहा जाता है। सिन्धी मुसलमानों को बहुधा मैंने हिन्दू मन्दिर, वरुण pR; और गुरूद्वारों के सामने सिर झुकाते देखा है। हिन्दुओं को पीरों की दरगाह के समक्ष नतमस्तक पाया है। अठारहवीं सदी के मस्त फकीर सचल सरमस्त का यह दोहा कितना बढ़िया है –

'आहि रूहु मुंहिजों अरब जो ऐं खाकि हिन्दूजी अहमद मिल्यों हुते त हिति श्याम मिल्यो आहि' (मेरी आत्मा अरब की है, तो शरीर हिन्दू का; वहाँ अगर मुहम्मद मिले तो यहाँ श्याम मिले हैं।)

साम्प्रदायिक दंगे सिन्ध में उतना mxz रूप नहीं धारण करते, जैसा कि अन्य प्रान्तों में। पीरों की दरगाहों पर होने वाले मेलों में मैं कई बार शामिल हुआ हूँ। एकतारा पर पीरों के गुणगान करने वाले हिन्दू भगतों को झूमते देखा है।

मुल्तान कभी सिन्ध के अन्तर्गत था। वर्तमान प्रान्त विभाजन के अनुसार मुल्तान कमिश्नरी पंजाब के अन्दर है, परन्तु औरतों की नाकों में पुखराज वाली नथ देखकर सहसा उनकी तुलना आप सिन्धी महिलाओं से कर बैठेंगे। जल पूजा मुल्तान में भी प्रचलित है। सिन्ध के महात्मा उडेरो (लाल) वरुण के अवतार माने गऐ हैं और वरुण असुर सभ्यता का उतना ही पूज्य देवता है, जितना कि इन्द्र वैदिक सभ्यता का। असुर सभ्यता के अवशेष सिन्ध के मोहन्-जो-दड़ो और पंजाब के हड़प्पा में समान रूप से पाए गए हैं। तत्कालीन सभ्यता का यह चिह्न (जल-पूजन) भी मुल्तान के निकटवर्ती स्थानों तक प्रचलित है– और सिन्ध में तो जलपूजकों का एक सम्प्रदाय ही बन गया है, जिसे दरियापन्थी कहते हैं।

cks/k iz'u

1. लेखक सिंध प्रांत की यात्रा पर क्यों गया?

....

....

....

2. सिंधु नदी को देख कर लेखक को सिकंदर की याद क्यों आती है?

....

....

....

3. नीराकार उपासना का क्या अर्थ है?

....

....

4. सिंध प्रांत में जलदेवता वरुण की उपासना क्यों प्रचलित है?

....

....

5. सिंध प्रांत में साम्प्रदायिक दंगे क्यों नहीं होते थे?

....

....

-3-

सिन्ध का जनजीवन दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा सुखी है। कारण यह है कि वहाँ आबादी कम है। सिन्धुनद से नहरें निकाल निकालकर गैर आबाद और Ålj जमीन को उपजाऊ बनाने की योजना vey में बहुत कम लाई गई है। फिर भी प्रान्तीय सरकार की ओर से खेती करने के लिए बराबर लोगों का आह्वान होता रहता है। बाहर के लोग भी वहाँ जाकर खेती करने लगे

चैत्य-देवालय; उग्र-भयंकर; ऊसर-बंजर; अमल-उर्दू शब्द, व्यवहार।

हैं। पक्के कृषिकार तो वहाँ के मुसलमान ही हैं। सिन्ध के हिन्दू व्यापारोन्मुखी जाति है। सिन्धी सौदागर दुनिया के कोने-कोने में फैले हुए हैं। जावा, सुमात्रा, बोर्नियां, न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, जापान, फारमूसा, चीन, मंचूरिया, कोरिया, मंगोलिया, अफ्रीका के निर्जन प्रायः इलाकों में, अरब, ईरान, अफगानिस्तान, साम, सीरिया, मिस्र, यूरोप के छोटे-बड़े देशों में, अमेरिका के उत्तरी और दक्षिणी भागों में और कहाँ नहीं ये सिन्धी lkSnkxj फैले हुए हैं।

इस महासमर के युग में हजारों सिन्धी धुरी राष्ट्रों द्वारा विजित देशों में अटके रहे। सिन्धी व्यापारियों की यह जाति भाई-बन्द (भाईबन्धु) कहलाती है। एक दिन किसी मित्र ने कहा- मेरा भाई मंगोलिया की ljgn पर चार महीने रह आया है। सैकड़ों फोटो साथ लाया है। देखना हो तो साथ चलिए।

मैंने देखा तो सोवियत मंगोलिया के mnc) जीवन के प्रतीक कई चित्र थे। उस युवक से बातें हुईं, राजनीतिक मामलें में काफी जागरूक निकला वह। दूर-दूर तक फैले हुए ये सिन्धी सौदागर अपने देश लौटकर दान-पुण्य के खाते में काफी रकम खर्च करते हैं। ऐसे ही एक सौदागर ने मुझे हँसकर कहा– हम अपने देशवासियों को थोड़े लूटते हैं? बाहर वालों को eWMrs हैं, अपनों को खिलाते-पिलाते हैं।.... और, ठीक ही कहा था उसने। व्यापार-क्षेत्र में सिन्धियों की जो प्रसिद्धि है, वह बाहरी दुनिया को लेकर ही।

भारत के दूसरे प्रान्तों में सिन्धी व्यापारी बहुत कम हैं, परन्तु भारत के बाहर व्यापारी बनकर रहने वाले भारतीयों में सबसे बड़ी संख्या सिन्धियों की ही है। मारवाड़ी तो अभी बर्मा तक ही पहुंचे हैं। आगे बढ़ने में धर्म का बाह्य आडंबर उन्हें रोके हुए है। सिन्धियों की स्थिति इस सम्बन्ध में प्रगतिशील है। छूत-छात का भूत उनसे हार मानता है। नानकपन्थी और सूफी भावना के कारण उनमें हद दर्जे की सर्व-धर्म-lfg".kqrk होती है। बाहरी दुनिया से निरन्तर सम्पर्क के कारण उनका स्वभाव युगधर्मा बन गया है। यही कारण है कि दुनिया के कोने-कोने में ये पहुँच गए हैं। मिलनसार ये इतने कि दुनिया के बर्बर-से-बर्बर जातियों के बीच अपनी दुकानदारी चला ले जाते हैं। आर्थिक उदारता के लिए तो सिन्ध के ये भाईबन्द मशहूर हैं ही, पर धार्मिकता और सामाजिकता भी इनमें पर्याप्त होती है। वे जहाँ कहीं भी रहेंगे, गुरू ग्रन्थ और गीता साथ रहेगी; साधु-ब्राह्मण और अतिथि-अभ्यागत इनके यहाँ बहुत ही सम्मान पाता है– चाहे स्वदेश में, चाहे विदेश में। व्यापार ये अधिकतर मोती, जवाहरात, सिल्क-रेशम, सोना-चाँदी का ही करते हैं। कीमती कपड़ों की बड़ी-बड़ी फर्मे देश देशान्तर में सिन्धी व्यापारियों के नाम से जुड़ी हुई हैं। इन भाईबन्दों का शायद ही कोई परिवार होगा, जिसका कोई-न-कोई सदस्य समुद्र-लंघन न कर आया हो। अपने साथ वे ब्राह्मणों को भी खींच ले जाते हैं। मेरे सिन्धी विद्यार्थियों में से एक आजकल कोलम्बो में है, दूसरा गाइना में, तीसरा है अरब में और चौथा चीन में। यह सब मैं अपनी प्रतिष्ठा-वृद्धि के लिए नहीं लिख रहा हूँ, क्योंकि आषाढ़ी-पूर्णिमा में उन लोगों ने कभी गुरू-दक्षिणा नहीं भेजी। सोचा होगा, दो-चार महीने ही पढ़ा है– गुरू-शिष्य का गठबन्धन जिन्दगी-भर का तो होता नहीं! पर मैं तो नहीं छोडूँगा, एक आस्थावान आचार्य के शब्दों में कहूँगा–

> एकाक्षर प्रदातारं
> यो गुरूं नाभिमन्यते।...

इस श्लोक का उतरार्द्ध नही लिखूँगा, क्योंकि उसमें शाप दिया गया है। बेचारे कहीं रहें, मस्त रहें!

एक दिन अपने यजमान की ओर से एक मित्र निमंत्रण दे गए। आपत्ति का कोई कारण नहीं था, आत्माराम वहाँ पहुँच गए। जीमते वक्त पूछा– तो पता लगा, मित्र के यजमान का भतीजा शंघाई में मर गया था। तीसरे साल की बात है– उन दिनों उक्त नगर जापान के अधिकार में आ गया था। मरने की खबर तीन मास पर करांची पहुंची थी। उसी तरुण का श्राद्ध था। गुरुग्रन्थ और गीता के अखण्ड सप्ताह के बाद पांच ब्राह्मणों और पाँच संन्यासियों को भोजन कराया गया। यह सब बात भाई चेलाराम ढोलनमल ने मुझे स्वयं बतायी। वही परिवार के मुखिया थे। जापान का आक्रमण होने से पहले तक खुद भी शंघाई और तोकियो में रह आए थे। रेशमी कपड़ों का व्यापार था। अमेरिकन ढंग की अंग्रेजी बोल रहे थे। अभी भी परिवार के चार सदस्य प्रशान्त महासागर के विभिन्न टापुओं मे vo:) थे।

सौदागर-व्यापारी; सरहद-सीमा; उद्बुद्ध-जागरूक; मूंड़ते-ठगना; सहिष्णुता-सहनशीलता; अवरूद्ध-फंसे हुए।

कहाँ तक गिनाऊँ, सिन्धियों के साथ बात करने पर जब दुनिया के छोटे-बड़े शहरों के नाम निकल आते हैं और ऐसा बहुधा होता है, तो मेरा घुमक्कड़ मन उछलने लगता और अन्त में उसी लोमड़ी की भाँति बैठ जाता, जिसने निराश होकर कहा था– अंगूर खट्टे हैं।

सिन्ध के सबसे अधिक प्रतिष्ठित, सुसंस्कृत और सुशिक्षित लोग आमिल हैं। हिन्दुओं में प्रमुख ये ही दो जातियाँ हैं, आमिल और भाईबन्द। एक बुद्धिजीवी है तो दूसरा वाणिज्यजीवी। ब्राह्मण थोड़े ही हैं, दाल में नमक के बराबर– 'तोयस्थं लवणं यथा।' अमल से आमिल शब्द की व्युत्पत्ति है। ये लोग दीवान कहलाते हैं, मुस्लिम शासन-काल में बड़े-बड़े ओहदे पर रहने के कारण इस जाति का नाम ही आमिल पड़ गया। यह अपने नाम के साथ द्विवेदी, त्रिपाठी, चतुर्वेदी, उपाध्याय, मिश्र आदि की भाँति कृपालाणी, गिदवाणी, वासवाणी, गुलराजणी, मीर चन्दाणी आदि की वंशगत उपाधियाँ जोड़ते हैं। भेद इतना ही है कि द्विवेदी, त्रिपाठी आदि उपनाम बहुत प्राचीन हैं और ज्वलन्त ब्राह्मणत्व की याद दिलाते हैं; परन्तु कृपालाणी और गिदवाणी आदि उपाधियाँ दस-पाँच iLr पहले के अपने-अपने प्रख्यात वंशधरों की अभिधा को सूचित करते हैं- कृपाल का कृपालाणी, गिदू का गिदवाणी, वासू का वासवाणी आदि। बहुत दिमाग लड़ाया कि यह आणी क्या है। एकाएक ख्याल आया गार्ग्यायाणि, दाडायानि आदि। viR; अर्थ को बतलाने वाला गोत्र-सूचक यह 'आयनि' और आमिल लोगों के उपनाम की यह 'आणि' यदि दोनों मिलाए जाएँ, तो भाषा-विज्ञान के प्रेमियों को इस सम्बन्ध में निराश नहीं होना पड़ेगा। हमारे आचार्य कृपलानी (कृपालाणी कहिए) इसी आमिल जाति के कुल-दीपक हैं। आचार्य गिडवाणी (सिन्धी उच्चारण गिदवाणी) भी इसी जाति के रत्न थे और साधु टी. एल. वासवाणी का नाम कौन नहीं जानता है? इस प्रकार हम देख सकते हैं कि शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में भी सिन्धियों का नाम जिन्होंने उज्ज्वल किया है, वह सबके सब आमिल हैं।

बुद्धिजीवी होने के कारण आमिलों को भी उसी तरह बेकारी से लड़ना पड़ता है जैसे बंगालियों को। शादी-ब्याह में कन्या-पक्ष वालों को भी बंगाल की तरह ही यहाँ भी दिक्कतें उठानी पड़ती हैं। हर एक सपूत का बाप कन्या वालों को निचोड़कर lhBh बना डालता है। नतीजा यह हो रहा है कि हजारों आमिल लडकियाँ o;% प्राप्त होने पर भी बाध्यतामूलक अविवाहित जीवन बिता रही हैं, लड़कियों के विवाह की यह समस्या भाईबन्दों में नहीं है। उनके यहाँ न तो अति उच्चशिक्षा प्राप्त लड़कियाँ हैं कि जिनके लिए अति उच्च शिक्षित लड़कों की अनिवार्य आवश्यकता हो, न वैसे लड़के हैं जिनकी कीमत पचीस-पचीस हजार drh जाए। मिडिल या मैट्रिक तक की प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षाएँ दिलवाकर वे अपने बच्चों को धन्धे में लगा देते हैं; लड़कियाँ उनके यहाँ अविवाहित कदाचित् ही रहती हैं।

जनता का तीसरा वर्ग है, कृषकों का। उनमें पचानवे प्रतिशत मुसलमान हैं। बड़े-बड़े जागीरदारों और गद्दीनशीन पीरों की हुकूमत के अन्दर सिन्ध के देहाती मुसलमान बहुत ही पिछड़ी हालत में पड़े हैं। उनमें पंजाबी मुसलमानों को मैंने अधिक जागरूक पाया। अपने पीरों के प्रति उनके हृदय में गम्भीर श्रद्धा है। ऐसे बीसों पीर होंगे, जिनके ejhnk की संख्या लाखों तक पहुँचती होगी। ये धर्माचार्य भला कब चाहने लगे कि अनुयायियों में शिक्षा-प्रसार हो, उनकी निरक्षरता हटे? कल-कारखाने सिन्ध में उतने नहीं हैं कि लाखों खेतिहर सर्वहारा की लम्बी कतार में खडे होकर 'इंकलाब जिन्दाबाद' का नारा लगाएँ। कांग्रेस का शंखनाद वहाँ देहातों में पहुँचते-पहुँचते इतना धीमा पड़ जाता है कि ग्रामीणों को सुनाई नहीं पड़ता। नव-जागरण का सन्देश वहाँ नागरिकों तक सीमित है। साधारण जनता अभी तक पीरों और गुरूओं के मुँह से जो दो-चार पद सुनती हैं, उन्हीं तक उसकी vfHkKrk की इतिश्री समझिए।

ck/k i'u

6. व्यवसाय के आधार पर लेखक ने सिंधियों को कितनी जातियों में विभाजित किया है?

   ....

   ....

7. भाईबंद जाति की स्वभावगत प्रमुख विशेषताएं बताएं।

   ....

   ....

पुस्त-पीढ़ी; अपत्य-संतान; सीठी-सारहीन पदार्थ; वयः-उम्र; कूती-निर्धारित करना, आंकना; मुरीदों-भक्तों; अभिज्ञता-ज्ञान।

8. आमिल जाति को लेकर लेखक चिंतित क्यों है?

....

....

9. देहाती मुसलमान किसानों की दुर्दशा का क्या कारण है?

....

....

-4-

भौगोलिक व्यतिक्रम के कारण सिन्ध प्रान्त शेष भारत से कट सा गया है। तिस पर अरबी लिपि ने तो और भी हद कर दी है। वह एक दीवार-जैसी खड़ी है सिन्ध और भारत के njE;ku ।

सिन्ध के पश्चिमोत्तर भाग में बिलोचिस्तान की नग्न पहाड़ियाँ पड़ती हैं, उत्तर-पूर्व में बहावलपुर रियासत के विरल बस्तियों वाले पंजाबी इलाके पड़ते हैं, पूर्व में राजपूताने का विशाल रेगिस्तान पड़ता हैं। पूर्व-दक्षिण कोन कच्छ की छोटी-छोटी झाड़ी वाले भुरभुरी-मरूभूमि और कच्छ की खाड़ी पड़ती है, दक्षिण पश्चिम में पड़ता है अरब महासागर। खानपुर से लेकर कराँची तक सवा चार सौ मील से ऊपर सिन्धनद के दोनों किनारे लंगोटी की तरह फैला पड़ा है सिन्धियों का छोटा-सा यह प्रान्त। आबादी घनी नहीं है। सारा प्रान्त आठ जिलों में विभक्त है- सक्खर, शिकारपुर, जैकोवाबाद, लारकाना, दादू नवाबशाह, मीरपुर खास, हैदराबाद, कराँची। इनमें मीरपुर पड़ता है जोधपुर लाइन में और जैकोवाबाद क्वेटा लाइन में। अवशिष्ट जिले (कराँची को छोड़कर) दरिया सिन्ध के कछारों में बसे हैं। जलवायु शुष्क है, वर्षा कम होती है। गर्मी भी खूब पड़ती है और जाड़ा भी खूब। परन्तु ग्रीष्म ऋतु में भी वहाँ की रात्रि असह्य नहीं प्रतीत होती है। अरब सागर की पश्चिमी हवा सारे सिन्ध को प्राणवन्त बनाए रहती है। गेहूँ और धान उपजते दोनों हैं, इतना उपजते हैं कि सिन्धवासी उन्हें बाहर भी भेजते हैं। सिन्ध की शुमार हिन्दुस्तान के उन चन्द सूबों में की जाती है, जहाँ अन्न आवश्यकता से अधिक पैदा होता है। चरागाहों की बहुतायत है, इसलिए दूध-घी की भी कमी नहीं है। अभी तक सिन्ध की बहुत कम जमीन आबाद हो पाई है। सोवियत रूस की पंचवार्षिक योजनाओं की तरह जब कभी कोई विराट औद्योगिक योजना हमारे इस महादेश में लागू होगी, तो अकेला सिन्ध अनेक प्रान्तों का भरण-पोषण कर लेगा। भारतीय शासन विधान (1935) के मुताबिक जो मन्त्रिमण्डल वहाँ कायम है, उसने इन बातों की ओर बहुत ही कम ध्यान दिया है। पिछले दो-तीन वर्षों के अन्दर मुनाफाखोरी और अन्नचोरी का जो चक्र अन्य प्रान्तों में चला है, सिन्ध की स्वदेशी सरकार उन्हीं धूर्तों को प्रोत्साहित करती रही है जिन्होंने जनहित का गला घोंटकर करोड़ों का लाभ-शुभ प्राप्त किया है।

सिन्ध का शासन अँग्रेजों ने सिक्खों से छीना था। 1847 ई. में सर नेपियर ने इसे बम्बई प्रान्त में मिला दिया। अभी नौ साल पहले फिर इस प्रान्त को बम्बई से अलग कर दिया गया है। शिक्षा और व्यापार में सिन्ध अभी भी बम्बई से जुड़ा हुआ है। धार्मिक और सामाजिक सम्बन्ध उसका पंजाब से है।

सिन्धी भाषा आजकल अरबी लिपि में लिखी जाती है। पुराने पण्डित, दो-तीन मुझे वहाँ मिले, जो अरबी से अपरिचित और नागरी मात्रा से परिचित हैं। अभी चालीस साल पहले तक सिन्धी नागरी में लिखी जाती थी, बनियों ने तो अभी तक नागरी के अन्यतम रूप (मुंडा लिपि से मिलता-जुलता हुआ) पकड़ रखा है। वास्तव में सिन्धी भाषा के सूक्ष्म उच्चारण भेदों को प्रकट करने के लिए अरबी लिपि असमर्थ है। इस भाषा में पाली-प्राकृत-संस्कृत-अपभ्रंश से आने वाले शब्दों की rknkn इतनी अधिक है कि देखकर दंग रह जाना पड़ता है। क्या मुसलमान, क्या हिन्दू सभी उसी भाषा का इस्तेमाल करते हैं। किसी बहुत बड़े मौलवी या पण्डित की बात छोड़िए, साधारण सिन्धी जनता जिस ठेठ सिन्धी को व्यवहार में लाती है, उसमें 80 प्रतिशत तद्भव शब्द ही रहते हैं। अठारहवीं सदी के एक मुसलमान सन्त की वाणी देखिए, कैसी है–

'पूरब पन्धि न वाणियां, गिरिनारी गुमनाम
विभिचारी थी बाटते, करनि कीन बिसराम
सीने में संग्राम, सचा सना सुनिजे।'

दरम्यान-मध्य, बीच; तादाद (उर्दू शब्द)-संख्या

अपने में ही लीन-मग्न गिरिनारी योगी कर्म-काण्डों में नहीं फँसते, और न अपना मार्ग त्यागकर आराम ही करते हैं- इनके हृदय में हमेशा युद्ध छिड़ा रहता है।

पाठक देखें कि इसमें कितने तद्भव शब्द हैं। अब आधुनिक सिन्धी का एक नमूना देखें-

'जदहिं मात भारत जे चरिनन में तो
दिनो दानु भेटा में जेकी बि हो
छघुइ जानि ते भी न हिकिड़ो वगो
लँगोटी टुकरू, व्यो उघाड़ो सजो
तदहिं तोते आसीस माता कई
बधाई वदी तुहिं जी पदिवी वई।'

कवि वेकस ने गाँधी को लक्ष्य करके कहा···· तुम्हारे पास जो कुछ भी था, सभी जब भारत माता के चरणों में तुम भेंट चढ़ा बैठे, एक छदाम भी नहीं बचा, सिवाय लँगोटी के और क्या रहा? सारा अंग उघाड़ था, तब तुम पर माता की आशीष हुई; उसने तुम्हारी पदवी बढ़ा दी!

दुर्भाग्य की बात है कि साहित्य सम्मेलन और नागरी-प्रचारिणी सभा-जैसी प्रतिनिधि संस्थाएँ सिन्ध ी के प्रति उदासीन क्या, विमुख हैं। सिन्धी के उन हजारों शब्दों की व्युत्पत्ति के आलोक में हम हिन्दी के तद्भव शब्दों की जड़ तक जा सकते हैं।

-5-

कराँची के एक मित्र ने अपने प्रान्त की विशेषता बताते हुए बड़े अभिमान से कहा- सिन्धी भिखमंगे नहीं होते, मजूर, मोची, तेली-तमोली, सुनार-दर्जी सिन्धी नहीं होते; वेश्याएँ भी सिन्धी नहीं होतीं।

'तो आखिर ये आए कहाँ से ?'

मैंने उलटकर पूछा तो जवाब मिला- कच्छ, राजपूताना, पंजाब से; और घरेलू नौकर हमें आपके युक्त प्रान्त से बहुत सस्ते मिलते हैं।

सिन्धी मित्र की उस मुस्कान ने मुझे चिढ़ाया नहीं, गम्भीर बना दिया। गोरखपुर, बस्ती, फैजाबाद, गोंडा आदि के हजारों ग्रामीण सिन्ध में भरे पड़े हैं। इन्हें यहाँ वाले 'भैया' कहकर पुकारते हैं। भर, बोन, अहीर, राजपूत, कुर्मी, ब्राह्मण सभी जाति के हैं, और सब काम करते हैं। निरक्षरता और सफाई का अभाव इन्हें स्थानीय लोगों से छाँटकर अलग कर देता है। फिर शिक्षित से शिक्षित बिहारी और युक्त प्रान्तीय बर्मा में जैसे 'दरबान' कहकर पुकारा जाता है, उसी तरह वह सिन्ध में 'भैया' कहकर बुलाया जाता है। इससे मैं स्वयं कई बार तिलमिला उठा हूँ, और बाद में ठण्डे दिमाग से कई बार सोचा है। दोष उनका नहीं, हमारा ही है। हजारों और लाखों की तादाद में होते हुए भी गुजरात, महाराष्ट्र और सिन्ध में 'भैया' अपमान और बुद्धू का प्रतीक बना हुआ है। जाहिल, चपाट और उजड्ड! कम-से-कम पैसा लेकर अधिक-से-अधिक काम कर देना, निरक्षर भट्टाचार्य होने के नाते जीवन-भर अँगूठा निशान करते रहना, परिवार को साथ नहीं रखना फिर भी आजन्म प्रवास में हमें औरों की निगाह में हल्के बनाए रखता है। धोती पहनकर, कन्धे पर चादर डालकर आचार्य कृपलानी कराँची में एक बार भाषण कर रहे थे। श्रोताओं में सिन्धियों की ही तादाद ज्यादा थी। सभा जब विसर्जित हुई तो कइयों के मुँह से सुना गया– 'असाँ जो कृपलाणी भैया थी व्यो आहे (हमारा कृपलानी भैया बन गया) !

बच्चों की देख-भाल, रसोई-पानी, घर-बाग की रखवाली, पूजा-पाठ आदि कई दृष्टियों से सिन्धी हिन्दू भैया को ही पसन्द करते हैं। परिवारों में बिखरे होने के कारण यों भी इनका संगठन मेढ़कों को तराजू में तोलने की तरह मुश्किल है। तिस पर शिक्षा की कमी, झूठ-मूठ का आत्मसन्तोष इनको पिछड़ी हुई स्थिति में रखे हुए है। अब छोटी-मोटी दुकान भी ये लोग करने लगे हैं। फेरी लगाकर दहीबड़ा और पकौड़ा भी बेचना शुरू किया है। इक्के-दुक्के अपने लड़कों को पढ़ाने भी लग गए हैं।

सिन्ध के अधिवासी शान्तिप्रिय, आतिथ्य परायण, सहिष्णु होते हैं। भिन्न-भिन्न प्रान्तों से गए हुए लोगों की संख्या सिन्ध को सार्वदेशिक बना रही है। पंजाबी, बलोची, मारवाड़ी, गुजराती, कच्छी, काठियाबाड़ी और भैया सब मिलाकर इतना हो गए हैं कि सिन्धी इनकी तुलना में थोड़े लगते हैं।

भोजन में भात और रोटी दोनों ही लोकप्रिय हैं। मांस-मछली न खाते हों, ऐसे सिन्धी बहुत कम मिलेंगे। पापड़ खाने का काफी रिवाज है। खटाई और मिर्चें का इस्तेमाल खूब करते हैं।

कलामूलक वस्तुओं में कपड़ों की छपाई मुझे बहुत पसंद आई। इस्लामी तूलिका से विचित्र बेल-बूटों, मेहराब की तरह छपी हुई किनारी वाले कपड़े आपको बहुत ही आकर्षक लगेंगे। मिट्टी और सीमेंट के योग से तैयार किए हुए खपड़े और ईंटें भी सिन्ध के स्थापत्य कला-प्रेमियों की निगाह में विशेष स्थान दिलाती हैं। लकड़ी की वस्तुओं पर- सिन्धी कारीगर इतना बढ़िया वार्निश करते हैं कि देखते ही बनता है। जवाहरात के लिए तो सिन्धी जौहरी मशहूर हैं ही।

सिन्धुनद सिन्ध पहुँचते-पहुँचते 'सप्त सिन्धु' कहलाने लगता है, क्योंकि वह अपने साथ कपिशा नदी और पंजाब की पाँचों नदियों को साथ लिए इस भूमि में प्रवेश करता है। यहाँ और कई बातों की चर्चा आवश्यक थी, परन्तु लेख बहुत लम्बा हो गया है, अब मैं इसे यहीं समाप्त करता हूँ। सिन्ध के इतिहास और पुरातत्त्व का, प्राकृतिक दृश्यों का अधिक वर्णन करने के लिए हिन्दी में एक पुस्तक की आवश्यकता है।

cks/k iz'u

10. सिंधी भाषा में किस अन्य भाषा के शब्द भारी मात्रा में मिलते हैं?
    (क) अरबी एवं फारसी (ख) पाली-प्राकृत-संस्कृत-अपभ्रंश
    (ग) हिंदी (घ) अंग्रेजी ( )
11. सिंध प्रांत में स्थित मोहन्-जो-दड़ो किस कला का अप्रतिम उदाहरण है?
    (क) स्थापत्य कला (ख) चित्र कला
    (ग) संगीत कला (घ) नृत्य कला ( )

40-3 fuca/k dk lkj

'सिंध में सत्रह महीने' निबंध नागार्जुन द्वारा रचित यात्राा-वृत्तांत है। नागार्जुन को हैदराबाद (पाकिस्तान) की सारस्वत ब्राह्मण पाठशाला में प्रधानाध्यापक के पद पर तथा सिंध की राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति के मुख्य पत्र 'कौमी बोली' के संपादक के रूप में काम करने के लिए अविभाजित भारत के सिंध प्रांत की यात्रा एवं प्रवास का अवसर मिला। सत्रह महीने सिंध में रह कर इन्होंने प्रस्तुत निबंध में वहां की भौगोलिक विशेषताओं, लोगों की प्रकृति और मनोविज्ञान, खान-पान, रहन-सहन, जीवन-शैली तथा संस्कृति का हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत किया है। सिंध प्रांत अब पाकिस्तान में है। यह निबंध सर्वप्रथम 'हुंकार' नामक पत्र के 23 एवं 30 दिसम्बर 1945 के अंकों में प्रकाशित हुआ था।

सिंध प्रांत अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण संपूर्ण भारत से कटा हुआ है। यही इसकी विशेषता और सौन्दर्य भी है। सिंध के पश्चिमोत्तर भाग में बिलोचिस्तान की नग्न पहाड़ियां हैं। उत्तर-पूर्व में बहावलपुर रियासत के विरल बस्तियों वाले पंजाबी इलाके हैं। पूर्व में राजपूताने का विशाल रेगिस्तान है और दक्षिण-पश्चिम में अरब सागर। खानपुर से लेकर कराची तक सवा चार सौ मील के क्षेत्र में सिंधु नदी के किनारे बसा है सिंध प्रांत। जलवायु शुष्क है; कम वर्षा होती है और गर्मी-सर्दी दोनों खूब पड़ती हैं। जमीन उर्वर है और गेहूँ व धान की उपज सिंध के बाहर भी भेजी जाती है। सिंधु नद सिंध प्रांत तक पहुंचते-पहुंचते 'सप्तसिंधु' कहलाने लगता है क्योंकि इसमें पंजाब की पांचों नदियों के अतिरिक्त कपिशा नदी भी आ मिलती है। सिंध प्रांत में पहले सिखों का शासन था किंतु 1847 में अंग्रेजों ने कब्जा कर इसे बम्बई प्रांत में मिला दिया। 1930 के दशक में इसे बम्बई से अलग कर स्वायत्तता प्रदान की गई लेकिन शिक्षा एवं व्यापार के क्षेत्र में यह बम्बई से ही जुड़ा रहा। जहां तक धार्मिक एवं सामाजिक सम्बन्धों की बात है, उन पर पंजाब का प्रभाव स्पष्ट दीखता है।

सिंध प्रांत सिंधु नदी के साथ-साथ बसा है। सिंध नदी चूंकि पूरे प्रांत को सींच कर जीवन देती है, अतः यहां वरुण देव की उपासना का प्रचलन है। धर्मपरायणता एवं धार्मिक सहिष्णुता सिंध प्रांत की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। सूफी संत परम्परा और नानकपंथ के प्रति लोगों में अगाध आस्था है। एक-दूसरे की धार्मिक मान्यताओं और संवेदनाओं का ख्याल रखते हुए हिंदू और मुसलमान क्रमशः मस्जिदों और मंदिरों-गुरुद्वारों-चैत्यों के समक्ष श्रद्धानत होते हैं। वास्तव में प्रत्येक सिंधी मूलतः प्रेममार्गी है और यही उसकी शक्ति है। व्यवसाय की दृष्टि से सिंधी मुसलमान खेती करता है और हिंदू व्यापार। लेकिन वे अपनी पहचान धर्म के आधार पर बनाने

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

के पक्षधर नहीं। धर्म की दृष्टि से वे हिंदू हों या मुसलमान – स्वयं को सिंधी कहलाने में गौरव का अनुभव करते हैं। लेखक की दृष्टि में सिंधी व्यापारियों की सफलता का रहस्य उनकी गतिशीलता में निहित है। भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण कर इन्होंने भारत से बाहर सुदूर देशों यथा अधिकतर यूरोपीय देशों, अमेरिका के उत्तरी-दक्षिणी भागों, अरब, ईरान, अफगानिस्तान, मंगोलिया, चीन, जापान, कोरिया, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड जैसे देशों में अपने व्यापार का प्रसार कर रखा है। सहनशीलता, लचीलापन, व्यवहारकुशलता तथा मिलनसार प्रकृति इन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जीवन के प्रति आस्थावान बनाए रखती है। सिंधी व्यापारियों को प्रायः 'भाईबंद' नाम से जाना जाता है। हिंदुओं का दूसरा प्रमुख वर्ग है – आमिल। आमिल बुद्धिजीवी वर्ग है जिसकी प्रख्यात विभूतियों के रूप में देश ने आचार्य कृपलानी, आचार्य गिडवाणी और साधु टी. एल. वासवाणी को पाया है। किंतु विडम्बना है कि इस वर्ग में रूढ़ियों से लड़ने का साहस नहीं है। शिक्षा के अत्यधिक प्रचार-प्रसार ने नई पीढ़ी को शिक्षित अवश्य किया है, किंतु साथ ही दहेज प्रथा के लोभ को बढ़ाया भी है। वर की उच्च शिक्षा कन्या पक्ष को चूसने का कारण बन गई है। फलतः गरीब परिवारों की लड़कियां आजीवन अविवाहित रह जाती हैं।

सिंध प्रांत का तीसरा वर्ग कृषकों का है जिनमें पचानवे प्रतिशत देहाती मुसलमान हैं। ये बौद्धिक-वैचारिक-आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोग हैं। यहां देश भर में व्याप्त सामाजिक-सांस्कृतिक नव जागरण की अनुगूंजें सुनाई नहीं पड़तीं। इन्हें अज्ञानी बनाए रखने में यहां के धर्माचार्यों की भी अहम भूमिका है क्योंकि उनका अस्तित्व और वर्चस्व जनता के अज्ञान और अंधविश्वास पर ही टिका है।

सिंधी भाषा पाली-प्राकृत-अपभ्रंश-संस्कृत के निकट है। अतः अरबी लिपि में इस भाषा के सूक्ष्म उच्चारण-भेदों को व्यक्त करना संभव नहीं। लेखक का विश्वास है कि सिंधी शब्दों की व्युत्पत्ति के आलोक में हिंदी के तद्भव शब्दों की जड़ तक पहुंचा जा सकता है।

सिंध में पंजाब, मारवाड़, गुजरात, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र आदि प्रांतों से आकर बहुतेरे लोग बस गए हैं। लेकिन सिंधियों की उदारता, गतिशीलता और विकासशीलता का प्रभाव इन पर न के बराबर है। इस कारण 'भैया' यानी बुद्धू के रूप में निम्न कोटि के कार्य करते हुए ये पिछड़ा और जाहिल जीवन जी रहे हैं। दूसरों में जल्दी ही घुलमिल जाने के बावजूद सिंधी अपने सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को बनाए हुए हैं। खान-पान को लेकर इनकी रुचियां वही हैं– भात-रोटी, मांस-मछली, पापड़ और मिर्च। मसालेदार भोजन इन्हें विशेष प्रिय हैं। जीवन के हर क्षेत्र में कला के प्रति इनकी रुचि द्रष्टव्य है। स्थापत्य कला हो या चित्रकला, कपड़ों पर छपाई का हुनर हो या लकड़ी की वस्तुओं और कीमती पत्थरों पर कारीगरी – सिंधियों की कलात्मकता विश्व-प्रसि़द्ध है। लेखक सिंध प्रांत के सौन्दर्य, वैभव और महत्त्व को लेकर इतने अभिभूत हैं कि उन्हें लगता है सिंध के समृद्ध इतिहास, पुरातत्व और संस्कृति को लेकर एक अलग पुस्तक लिखे जाने की आवश्यकता है।

40-4 fucU/k dh lanHkZ lfgr O;k[;k

आपने निबंध ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा। निबंध का सार पढ़ने पर आपको ज्ञात हो गया होगा कि लेखक सिंध के विषय में क्या कहना चाहता है। हो सकता है निबंध के कुछ अंश आपको स्पष्ट न हुए हों। इस दृष्टि से यहां हम कुछ महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्या प्रस्तुत करेंगे।

x|ka'k

''ये धर्माचार्य भला कब चाहने लगे कि अनुयायियों मे शिक्षा प्रसार हो, उनकी निरक्षरता हटे? कल-कारखाने सिंध में उतने नहीं हैं कि लाखों खेतिहर सर्वहारा की लंबी कतार में खड़े होकर 'इंकलाब ज़िदाबाद' का नारा लगाएं। कांग्रेस का शंखनाद वहां देहातों तक पहुंचते-पहुंचते इतना धीमा पड़ जाता है कि ग्रामीणों को सुनाई नहीं पड़ता। नवजागरण का संदेश वहां नागरिकों तक सीमित है। साधारण जनता अभी तक पीरों और गुरुओं के मुंह से जो दो-चार पद सुनती है, उन्हीं तक उसकी अभिज्ञता की इतिश्री समझिए।''

lanHkZ

उपर्युक्त गद्यांश नागार्जुन द्वारा रचित निबंध 'सिंध में सत्रह महीने' से लिया गया है। लेखक ने जब सिंध प्रांत का भ्रमण किया, उस समय देश परतंत्र था तथा सिंध अविभाजित भारत का

ही अंग था। सिंध में लम्बे प्रवास के दौरान लेखक वहां के भौगोलिक-सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक परिवेश से पूरी तरह परिचित हो गया है। तटस्थ दृष्टि से उन्होंने सिंध प्रांत की कुछ विशिष्टताओं की सराहना की है यथा सहिष्णुता, धार्मिक उदारता, स्वाभावगत लोचशीलता, शांतिप्रियता आदि। लेकिन साथ ही वे सुदूर देहात में कृषि कार्य में व्यस्त किसानों के वैचारिक-सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन को लेकर क्षुब्ध भी हैं। ये देहाती किसान अधिकतर मुसलमान हैं और हिंदुओं के दो प्रमुख वर्गों – भाईबंद तथा आमिल – की तुलना में कठिन जीवन जी रहे हैं। लेखक ने प्रस्तुत गद्यांश में उनकी दुर्दशा के कारणों का विश्लेषण करते हुए बड़े-बड़े जागीरदारों और गद्दीनशीन पीरों की हुकूमत को इसके लिए दोषी ठहराया है।

O;k[;k

लेखक ने अनुभव किया है कि निस्संदेह अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति के कारण सिंध प्रांत पूरे देश से लगभग कटा हुआ है। लेकिन फिर भी इस अलगाव का महत्त्वपूर्ण कारण वहां के देहाती लोगों की उदासीनता और वैचारिक संकीर्णता है। जो जातियां एवं वर्ग भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण कर प्रांत से बाहर निकल गए, वे विकसित हो गए। लेकिन जो अपनी जड़ों से बंधे वहीं रह गए, वे जड़ता का शिकार हो गए। रोजी-रोटी, धर्म और कर्त्तव्यपरायणता ने इन्हें कोल्हू के बैल की तरह दैनिक चर्या के इर्द-गिर्द इस प्रकार बांध दिया है कि उनमें अपने से बाहर देखने का अवकाश और चाव ही समाप्त हो गया है। इसलिए उस समय जहां सारा भारत नवजागरण की हिलोर और कांग्रेस के प्रभाव से आंदोलित था, वहीं सिंध प्रांत के देहातों में क्रांति एवं उद्‌बोधन का नामोनिशान तक न था। नगरवासी इन राजनीतिक-सामाजिक हलचलों से अवश्य परिचित थे, लेकिन आम जनता पीरों और धर्मगुरुओं के सम्मोहन में कैद थी। यही इनके ज्ञान के एकमात्र स्रोत थे और यही इनके दिशा-निर्देशक। सामंती मानसिकता से ओत-प्रोत ये धर्म गुरु अपनी सत्ता और निरंकुशता बनाए रखने के लिए ग्रामीणों की अशिक्षा और अंधविश्वास को बनाए रखना चाहते हैं। अतः ऐसे प्रदेश में जड़ता और पिछड़ेपन के प्रसार को रोकना असंभव है। लेखक का विश्वास है कि यदि सिंध प्रांत में कृषि के साथ-साथ कल-कारखानों का संजाल भी फैला होता तो संभवतः वामपंथी आंदोलन के बढ़ते प्रभावस्वरूप सर्वहारा वर्ग अपने अधिकारों एवं दशा के प्रति सचेत हो जाता। तब वैचारिक उद्‌बोधन एवं क्रांति इस क्षेत्र में प्रवेश कर जाती और आम आदमी बेहतर जीवन जीता।

fo'ys"k.k

1) प्रस्तुत गद्यांश में लेखक नागार्जुन ने सिंध प्रांत के ग्रामीण अंचल की दुर्दशा और इस दुर्दशा को बनाए रखने वाले घटकों का विश्लेषण किया है।
2) लेखक के सामाजिक सरोकार और मानवीय दृष्टि साफ उभर कर आई है।
3) भाषा सरल, सहज एवं प्रवाहपूर्ण है।
4) शैली व्यंग्यात्मक है।

vH;kl

आपने निबंध के एक अंश की व्याख्या का अध्ययन किया है। अब आप अभ्यास के लिए स्वयं निम्नलिखित अंशों की व्याख्या करें। आपकी सहायता के लिए संदर्भ-संकेत भी दिए जा रहे हैं।

1) *''कहां तक गिनाऊँ, सिंधियों के साथ बात करने पर जब दुनिया के छोटे-बड़े शहरों के नाम निकल आते हैं और ऐसा बहुधा होता है तो मेरा घुमक्कड़ मन उछलने लगता है और अंत में उसी लोमड़ी की भांति बैठ जाता, जिसने निराश होकर कहा था - अंगूर खट्टे हैं।''*

lanHkZ % ....
....
....

O;k[;k % ....
....
....

fo'ys"k.k % ....
....
....

THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

40-5 vUroLrq

आपने निबंध को मनोयोगपूर्वक पढ़ लिया होगा और आप यह जान चुके होंगे कि यह निबंध मूलतः यात्रा-वृत्तांत है। अतः यहां वर्णनात्मकता की प्रधानता है। किंतु इसका आशय यह नहीं कि विचार एवं संवेदना को यहां स्थान नहीं मिला। वास्तविकता तो यह है कि भ्रमण के दौरान लेखक के मन में जिस तीव्रता से भाव एवं विचारों का उद्वेलन हुआ है, उसी से उनके विश्लेषण में गति एवं गहराई आई है। यही प्रस्तुत निबंध की अंतर्वस्तु को निर्मित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आइए, हम संक्षेप में निबंध के विचार पक्ष एवं भाव पक्ष का विश्लेषण करें।

40-5-1 fopkj i{k

निबंध पढ़ कर आप भलीभांति जान चुके हैं कि स्वतंत्रता से पूर्व नागार्जुन को सिंध प्रांत के हैदराबाद (अब पाकिस्तान) की सारस्वत ब्राह्मण पाठशाला में प्रधानाध्यापक तथा सिंध की राष्ट्रभाषा में प्रचार-समिति के मुख्य पत्र 'कौमी बोली' के संपादक के रूप में सिंध प्रांत में सत्रह महीने रहने का अवसर मिला था। एक सैलानी की दृष्टि से सिंध प्रांत की भौगोलिक संरचना, सांस्कृतिक समृद्धि, बहुआयामी सामाजिक स्थिति तथा धार्मिक सहिष्णुता ने उन्हें अनायास आकृष्ट कर लिया है। इस निबंध के माध्यम से मानो वे एक आम भारतीय को सिंध की इन सब विशिष्टताओं से परिचित करा देना चाहते हैं। इस प्रयास में जब वे अपने अनुभवों को आधार बना कर ब्यौरे प्रस्तुत करने लगते हैं तो वे मात्र विवरण न रह कर उनके सामाजिक-मानवीय सरोकारों से अनुस्यूत हो जाते हैं। इस कारण क्रमशः वर्णनात्मकता वैचारिकता में और वैचारिकता विश्लेषणशीलता में परिणत होती चलती है।

नागार्जुन बेहद आत्मपरक ढंग से रेलगाड़ी द्वारा सिंध प्रांत की यात्रा का वर्णन करते हैं। रेल की गति के साथ-साथ प्रकृति और संस्कृति में आने वाले परिवर्तन उन्हें चकित कर देते हैं। लम्बे मरुस्थल के बाद घने जंगल और फिर अतल सिंधुनद के किनारे फलती-फूलती मिली-जुली संस्कृति! क्षण-क्षण बदलती प्रकृति के ब्यौरे उन्हें मानव-प्रकृति का आकलन करने को प्रोत्साहित करते हैं। तब वे पाते हैं कि समूचे सिंध प्रांत को सींच कर उर्वर एवं समृद्ध बनाने वाले सिंधु नद को 'दरियाशाह' कहना तथा वरुण देव की उपासना गलत नहीं। वे यह भी अनुभव करते हैं कि सांस्कृतिक परंपराओं के प्रभाव व्यापक एवं दूरगामी हुआ करते हैं। इसलिए मुलतान में सिंध की भांति जल पूजा तथा स्त्रियों की नाक में पहनी पुखराज वाली नथ उन्हें अविच्छिन्न सांस्कृतिक परंपरा का अहसास कराती है। इसी प्रकार सिंध के मोहन्-जो-दाड़ो और पंजाब के हड़प्पा में समान रूप से मिलने वाले असुर सभ्यता के अवशेषों को भी लिया जा सकता है।

नागार्जुन सिंध प्रांत के धर्मनिरपेक्ष चरित्र का विश्लेषण करते हुए पाते हैं कि बौद्ध, ब्राह्मण और इस्लाम धर्म के मिश्रित प्रभाव ने लोगों को सह-अस्तित्वपूर्वक जीना सिखाया है। नानकवाणी एवं सूफी संत परंपरा ने उन्हें भौतिकता एवं लौकिकता की संकीर्णता से मुक्त कर एकेश्वरवाद से जोड़ा है। इसलिए सिंधी मुसलमान जिस निष्ठा से मंदिरों, चैत्यों और गुरुद्वारों के सामने सिर झुकाता है, उसी तत्परता से हिंदू मस्जिद एवं दरगाह में श्रद्धासुमन अर्पित करता है।

नागार्जुन मानते हैं कि व्यापार एवं नए अवसरों की तलाश में घुमंतू जातियां ही अंततः विकास कर सकती हैं। इस दृष्टि से सिंध प्रांत को वे समूचे भारत के समक्ष आदर्श रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं। स्थानीय परिचितों के माध्यम से उन्होंने जाना है कि सिंध के व्यापारियों का शायद ही कोई परिवार हो जिसका सदस्य समुद्र लांघ कर सुदूर देशों में व्यापार हेतु न गया हो। मोती-जवाहरात से लेकर रेशम का व्यापार पूरे विश्व में इन्हीं सिंधियों के कब्जे में है। मिलनसार व्यवहार एवं लचीलापन व्यापार को बढ़ाने में सहायक होता है किंतु इनकी सबसे बड़ी विशिष्टता है वर्जनाओं एवं संकीर्णताओं से मुक्ति पाकर जीवन के हर क्षेत्र में उदारवादी दृष्टिकोण अपनाना। सिंधियों के ठीक विपरीत हैं मारवाड़ी जो धर्म के बाह्याचार में फंस कर बर्मा से आगे नहीं जा पाये हैं। लेखक ने सिंध प्रांत की जनसंख्या को व्यवसाय के आधार पर तीन वर्गों में विभक्त किया है। हिंदुओं के दो वर्ग हैं - भाईबंद व आमिल तथा मुसलमानों का एक ही वर्ग है - किसान। व्यापारी भाईबंद कहलाते हैं। आमिल सिंध का बुद्धिजीवी वर्ग है जो भारतीय नवजागरण आंदोलन को राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक नेतृत्व प्रदान कर रहा है। इन शीर्षस्थ नेताओं में प्रमुख हैं- आचार्य कृपलानी, आचार्य गिडवाणी और साधु टी. एल. वासवाणी।

मुस्लिम किसानों की अवस्था देख कर लेखक व्यथित हैं। ये किसान हाड़तोड़ मेहनत के बावजूद पिछड़ी हालत में जी रहे हैं। इसका मुख्य कारण है सुदूर देहातों में पीरों का वर्चस्व और जागीरदारों की हुकूमत जिन्होंने इनके दिल और दिमाग पर कब्जा कर लिया है। इनकी आज्ञा और निर्देश के बिना ये कुछ भी कर नहीं सकते। यही कारण है कि सिंध के शहरों में नवजागरण का प्रभाव देखने को मिल जाता है, देहातों में नहीं। वहां निरक्षरता, अंधविश्वास और जड़ता का साम्राज्य है जिसका पोषण पीर एवं धर्मगुरु अपनी गद्दी बचाने के लिए कर रहे हैं।

लेखक की दृष्टि में सिंध के पूरे देश से अलग-थलग होने का मुख्य कारण प्रत्यक्षतया दीख पड़तीं भौगोलिक परिस्थितियां नहीं, राजनीतिक निर्णय हैं। उन्हें दुख है कि सिंधी भाषा का मूल स्वरूप पाली-प्राकृत-संस्कृत-अपभ्रंश से मिलता है, किंतु उसकी लिपि अरबी घोषित की गई है।

सिंधी लोग कर्त्तव्यपरायणता के साथ-साथ कलाप्रियता का भी उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। लेखक सिंध प्रांत का भावविभोर वर्णन करने के उपरांत भी स्वयं को अतृप्त पाते हैं। उन्हें लगता है कि इस क्षेत्र के इतिहास और पुरातात्विक महत्त्व को लेकर अलग से एक पुस्तक की आवश्यकता है क्योंकि किसी भी प्रदेश की समृद्ध धरोहर को सुरक्षित रखना जितना जरूरी है, उससे भी अधिक अनिवार्य है उसके वैभव और महत्त्व से जनसाधारण को परिचित कराना।

40-5-2 Hkko i{k

आचार्य शुक्ल ने निबंध को गद्य की कसौटी कहा है। तथ्यों एवं विश्लेषण पर आधारित होने के कारण प्रायः निबंध के शुष्क एवं ऊबाऊ हो जाने का खतरा बना रहता है। तब लेखक की भावाकुलता उसकी संवेदना के साथ जुड़ कर निबंध में रागात्मकता की सृष्टि करती है। 'सिंध में सत्रह महीने' भी इसका अपवाद नहीं। फलतः निबंध में जगह-जगह भावनात्मकता, हार्दिकता एवं चित्रात्मकता के दर्शन होते हैं।

सिंध में भगवान वरुण की उपासना एक सर्वविदित तथ्य है। लेखक ने एक सूचना के रूप में इसे नहीं दिया है, बल्कि एक जीवंत दृश्य बना कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। पूर्णिमा के अवसर पर दोने में कुंकुम और अक्षत डाल कर दीप जला कर सिंधु नद के प्रवाह में छोड़ते नागरिकों की भावभीनी श्रद्धा का उदाहरण द्रष्टव्य है : *''उस दिन शायद पूर्णिमा थी। हजारों नागरिक सिंधु नद के दर्शन करने जाते थे। दोने में कुंकुम और अक्षत डाल कर दीप जला कर उसे प्रवाह में छोड़ रहे थे। शत-सहस्र दीपिकाओं का समूह अरब सागर की ओर बहा जा रहा था। और, मैं सिंधी जनता के श्रद्धा निवेदन का वह मधुर प्रतीक देख-देख कर चित्र-लिखित सा खड़ा था।''*

लेखक ने संदर्भानुसार निबंध में दोहों-अनुष्टुपों-बानी का भरपूर प्रयाग किया है। इससे न केवल लेखक का बहु-पठित व्यक्तित्व तथा अभिप्रेत मंतव्य स्पष्ट हुआ है, बल्कि विचार बहुलता भावनात्मकता का संस्पर्श पाकर पाठक की हृत्तंत्री को झंकृत भी कर रही है। सिंध प्रांत की धार्मिक सहिष्णुता को व्यक्त करने के लिए लेखक ने सूफी कवि का दोहा प्रस्तुत किया है– *''आहि रूहु मुंहिजो अरब जो ऐं खाकि हिंदुजी अहमद मिल्यों हुते त हिति श्याम मिल्यो आहि।''* *(''मेरी आत्मा अरब की है तो शरीर हिंदू की, वहां अगर मुहम्मद मिले तो यहां श्याम मिले हैं।'')* यह दोहा गद्य में काव्यात्मकता की सृष्टि कर पाठक को भक्तिकालीन साहित्य के औदात्य और भक्ति रस से सराबोर कर देता है। इसी प्रकार पाली-प्राकृत-संस्कृत-अपभ्रंश आदि से सिंधी भाषा की निकटता दर्शाने के लिए लेखक द्वारा प्रयुक्त 18वीं सदी के मुसलमान संत की वाणी को उदाहरणस्वरूप लिया जा सकता है।

लेखक विचारों की एकरसता तोड़ने के लिए अनेक स्थलों पर संस्मरणशील भी हो उठा है। इन संस्मरणों का लक्ष्य निबंध में स्वयं को उपस्थित करना नहीं, वरन् सिंध के जनजीवन एवं संस्कृति के विशिष्ट पहलुओं को उजागर करना है। इस संदर्भ में लेखक ने अपने यजमानों, परिचितों, मित्रों के साथ वार्तालाप को उद्धृत किया है जहां सिंधी लोग व्यापारकुशल, घुमक्कड़ एवं जागरूक जाति के रूप में उभर कर आते हैं। विशेष उल्लेखनीय हैं लेखक की आत्मपरक दो टिप्पणियां। पहली टिप्पणी में वे भी सुदूर देशों में घूमने की लालसा व्यक्त करते हैं किंतु साथ ही जानते हैं कि समुचित साधनों एवं अवसरों के अभाव में ऐसा संभव नहीं। इसलिए प्रसिद्ध नीति-कथा 'अंगूर खट्टे हैं' की लोमड़ी के साथ अपनी तुलना कर अपने लोभ की हास्यास्पदता पर स्वयं ही हंस पड़ते हैं। उद्धरण द्रष्टव्य है – *''कहां तक गिनाऊँ, सिंधियों के*

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

साथ बात करने पर जब दुनिया के छोटे-बड़े शहरों के नाम निकल आते हैं और ऐसा बहुधा होता है तो मेरा घुमक्कड़ मन उछलने लगता है और अंत में उसी लोमड़ी की भांति बैठ जाता, जिसने निराश होकर कहा था – अंगूर खट्टे हैं।'' दूसरी टिप्पणी अपने शिष्यों के भौतिक उत्कर्ष के बारे में है जो स्वयं विदेशों में घूम आए हैं किंतु अपने गुरु की इच्छा का उन्हें जरा भी ख्याल नहीं। अपनी इस क्षुब्ध मनोदशा में अनायास लेखक को गुरु-दक्षिणा की भारतीय परंपरा का स्मरण हो आता है। तब खिन्न अवस्था में वे गुरु-महिमा का वर्णन करते हुए संस्कृताचार्य के श्लोक को उद्धृत करने लगते हैं। किंतु तभी उनका उबाल शांत हो जाता है और वे उसे वहीं अधूरा छोड़ देते हैं। वास्तव में उनका लक्ष्य आधुनिक शिष्यों की गुरु-विमुखता को प्रदर्शित करना था। अतः पद के अर्धांश से ही उनका मंतव्य पूरा हो गया है। अब वे निर्णय लेते हैं कि श्लोक के उत्तरार्द्ध को वे नहीं लिखेंगे क्योंकि इसमें शिष्यों को *''शाप दिया गया है''* जबकि उनकी कामना है कि वे *''कहीं रहें, मस्त रहें।''* स्पष्ट है कि व्यंग्य की मीठी चुटकियां लेकर लेखक वैचारिक बोझिलता से पाठक को बचाना चाहता है।

हिंदू सिंधियों की प्रमुख जाति आमिल का व्युत्पत्तिपरक विश्लेषण करते हुए भी नागार्जुन ने सरसता का विशेष ध्यान रखा है। इसी के साथ बिहार, उत्तर प्रदेश, आदि प्रांतों से आए 'भैया' यानी बुद्धू, जाहिल, चपाट समझे जाने वाले लोगों का चित्रण भी दर्शनीय है। निरक्षरता, सफाई का अभाव और झूठमूठ का आत्मसंतोष इन 'भैया' लोगों को पिछड़ी स्थिति में रखे हुए है। विश्लेषण की इस प्रक्रिया में जब वे आचार्य कृपलानी (आमिल जाति के रत्न) से जुड़ा दृष्टांत प्रस्तुत करते हैं तो स्थिति अनायास सरस और व्यंजक हो उठती है। उदाहरण द्रष्टव्य है : *''धोती पहन कर, कंधे पर चादर डाल कर आचार्य कृपलानी कराँची में एक बार भाषण कर रहे थे। श्रोताओं में सिंधियों की ही तादाद ज्यादा थी। सभा जब विसर्जित हुई तो कइयों के मुंह से सुना गया- 'असाँ जो कृपलाणी भैया थी व्यो आहे (हमारा कृपलानी भैया बन गया)!''*

लेखक ने भाषा के चुटीले प्रयोग द्वारा भी निबंध में भावनात्मकता की अभिव्यक्ति की है। जैसे सिंध जाते समय रोहड़ी स्टेशन पर उतरने पर तली मछली देख मुंह में पानी भर आने का प्रकरण – *''जन्मजात मत्स्यलोलुपता पानी बन कर जीभ पर उतर आई और मैंने अंदर ही अंदर अपने मैथिल पूर्वजों की स्वादवृत्ति को प्रणाम किया। तो क्या प्रणाम ही करके रह गया? नहीं, स्टेशन से बाहर निकल कर सराय में ठहरा और गुरुनानक होटल में बैठ कर इत्मीनान से भगवान के मत्स्यावतार की पूजा की।''*

40-6 y[kdh; O;fDrRo dh vfHkO;fDr

निबंध निबंधकार के व्यक्तित्व का दर्पण कहा जाता है। निबंधकार की दृष्टि, अभिरुचि और शिल्पगत वैशिष्ट्य उसके व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नागार्जुन के लेखन में सर्वत्र उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता को देखा जा सकता है। अतः उनके व्यक्तित्व की विशिष्टताओं को उनके सामाजिक सरोकारों के मध्य से गुजर कर ही जाना जा सकता है। प्रस्तुत निबंध में मुख्य रूप से नागार्जुन के व्यक्तित्व की तीन विशिष्टताओं को लक्षित किया जा सकता है:

i) यायावरी प्रकृति
ii) वैचारिक संश्लिष्टता
iii) विनोदवृत्ति

i½ ;k;kojh izÑfr % 'सिंध में सत्रह महीने' शीर्षक ही नागार्जुन के घुमंतू व्यक्तित्व का प्रमाण है। यायावर हृदय निरा रस-आखेटक नहीं होता। भ्रमण के दौरान उपलब्ध तथ्यों को बुद्धि एवं संवेदना के साथ जोड़ कर परिवेश की बारीकियों को पढ़ता भी है। इस श्रृंखला में निरंतर विश्लेषण और निष्कर्ष ग्रहण करने की सूक्ष्म प्रक्रिया चलती रहती है। नागार्जुन में इसी प्रौढ़ यायावरी प्रकृति के दर्शन होते हैं। सिंध प्रांत के कण-कण को उन्होंने दिलचस्पी के साथ देखा है। मुलतान के रास्ते पंजाब-सिंध सरहद के क्षेत्र में प्रवेश करने पर पानी के लिए तरसते लोग और प्रकृति का सूनापन अनायास उनका ध्यान खींचता है। तब वे पाते हैं कि इस संधि क्षेत्र में पंजाब का परिधान और संस्कृति प्रमुख रहे हैं। किंतु जैसे-जैसे सिंधु नद का कछार निकट आता गया, प्रकृति रंग बदल कर घने जंगलों की खिली हरियाली में परिवर्तित हो गई। इसी के साथ जुड़ गई सिंध की मिट्टी

से उपजी उसकी अपनी मिली-जुली संस्कृति। इस संस्कृति में वरुण देव की उपासना है तो सूफी संतों और नानक वाणी का प्रभाव भी। यात्रा के दौरान उपस्थित होने वाली दृश्यावलियां अलग-अलग भौगोलिक टुकड़े नहीं हुआ करतीं, एक-दूसरे की अन्विति में जुड़ कर वहां की समाज-संस्कृति का संपूर्ण चित्र प्रस्तुत करती हैं। नागार्जुन की यायावरी प्रकृति ने प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन करने के साथ-साथ मानव-प्रकृति का भी संधान किया है। परिचितों-मित्रों के अतिरिक्त राह चलते लोगों से बातचीत कर वे अपनी जिज्ञासाओं और सवालों का जवाब पाते रहे हैं। निःसंदेह उन्होंने सतह पर दीखने वाले यथार्थ को देखा है। साथ ही उस यथार्थ का निर्माण करने वाले सूक्ष्म अदृश्य घटकों को भी। इसलिए यह निबंध सिंध प्रांत का परिचयात्मक भौगोलिक वृत्तांत नहीं है, सिंध प्रदेश के सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ को पहचानने का ऐतिहासिक दस्तावेज बन जाता है।

ii½ **opkfjd lf'y"Vrk %** प्रस्तुत निबंध में नागार्जुन के विचारशील व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। वे जीवन का सृजन करने वाले मानवतावादी कलाकार हैं। इसलिए घटना के माध्यम से व्यक्ति और व्यक्ति के माध्यम से समाज का मनोविज्ञान जानने की कोशिश करते हैं। तब उन्हें यह अनुमान लगाने में कोई कठिनाई नहीं होती कि क्यों सिंधी कुशल व्यापारी के रूप में देश-विदेश में फैले हुए हैं। सहिष्णुता, उदारवादी दृष्टिकोण, लचीलापन और मिलनसार व्यक्तित्व किसी भी व्यक्ति को सफलता के शिखर तक ले जा सकते हैं। किंतु सबसे ज्यादा जरूरी है जोखिम उठाने का साहस। भारत की अन्य व्यापारी कौमें जहां इस अनिवार्यता के चलते सीमित क्षेत्र में सिकुड़ कर रह गई हैं, वहीं सिंधियों ने अपने क्षितिजों का विस्तार किया है।

नागार्जुन की वैचारिक प्रखरता उन्हें इस बात का भी बोध कराती है कि क्यों सिंधी धर्मनिरपेक्ष कौम हैं। वहां की विशिष्ट भैगोलिक स्थिति, मुस्लिम और सिख शासन, हिंदुओं और मुसलमानों की मिलीजुली आबादी और हिंदू-बौद्ध-सूफी संतों का प्रभाव – ये सब घटक मिल कर सौहार्दपूर्ण सह-अस्तित्वपरक समाज की रचना करते हैं।

नागार्जुन की बौद्धिकता निबंध में अनेक स्थानों पर द्रष्टव्य है। विशेषकर जब वे शब्दों की व्युत्पत्तिपरक संरचना पर विचार करते हैं। जैसे आमिल जाति के उपनाम 'आणी' को लेकर वे लिखते हैं – *''अपत्य अर्थ को बतलाने वाला गोत्रसूचक यह 'आयनि' और आमिल लोगों के उपनाम की यह 'आणि' यदि दोनों मिलाए जाएं तो भाषाविज्ञान के प्रेमियों को इस सम्बन्ध में निराश नहीं होना पड़ेगा।''*

प्रस्तुत निबंध लेखक के बहुपठित व्यक्तित्व एवं मननशील प्रकृति का ज्वलंत उदाहरण भी है। संस्कृत श्लोकों, अनुष्टुपों एवं दोहों-पदों को उद्धृत करते हुए वे सिंध के सांस्कृतिक वैभव को ही रेखांकित नहीं करते, वरन् अपने बहुआयामी व्यक्तित्व को भी उद्घाटित कर देते हैं।

iii½ **foukfnfi;rk %** नागार्जुन की वैचारिक संश्लिष्टता उन्हें शुष्क बुद्धिजीवी नहीं बनाती। वह उनके व्यक्तित्व में निहित विनोदप्रियता से जुड़ कर उन्हें मानवीय दृष्टि भी प्रदान करती है। लेखक अपने और दूसरों पर मीठी चुटकियां लेने के किसी भी प्रसंग को हाथ से जाने नहीं देता। निबंध में अपने रसना-रस को लेकर वह उन्मुक्त भाव से हंसा है। साथ ही अपनी इस नादानी पर स्वयं को ढाढस भी बंधाता है कि अर्थाभाव के बीच वह क्यों देश-विदेश का भ्रमण करने की इच्छा पाले हुए है। सिंधियों की 'बाहर वालों को मूंडने' की कला पर ठहाका मार कर हंसता है तो स्थानीय सारस्वत ब्राह्मणों की अकर्मण्यता पर तीखा व्यंग्य भी करता है। इस प्रक्रिया में भाषा हमेशा उनकी सहायक बन कर आई है। अंतर्वस्तु के अंतर्गत भावपक्ष का विश्लेषण करते हुए इसका विस्तृत उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं।

ckS/k iz'u

12. लेखक ने मुख्य रूप से सिंध प्रांत के किन पक्षों पर निबंध में विचार किया है?

....

....

....

13. नागार्जुन सिंधियों के किन गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं?

....

....

....

14. निबंध में नागार्जुन के व्यक्तित्व की कौन-सी विशेषताएं परिलक्षित होती हैं?

....

....

40-7 lajpuk-f'kYi

संरचना-शिल्प के अंतर्गत अब हम निबंध की भाषा-शैली पर विचार करेंगे।

40-7-1 Hkk"kk

भाषा निबंध की अंतर्वस्तु तथा लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होती है। प्रस्तुत निबंध यात्रा-वृत्तांत होने के कारण चूंकि वर्णनात्मक है, अतः लेखक ने आद्योपांत बेहद सरल, सुबोध और प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है। लेखक का प्रमुख उद्देश्य रहा है तथ्यों, ब्यौरों और घटनाओं की मार्मिक और प्रामाणिक प्रस्तुति ताकि पाठक के समक्ष सिंध प्रांत को जीवंत किया जा सके। इसलिए भाषा का सर्जनात्मक प्रयोग करते हुए वे इसे दो रूपों में व्यक्त करते हैं। सर्वप्रथम उल्लेखनीय है भाषा का सरल-स्पष्ट-चित्रात्मक प्रयोग जहां तथ्य और घटनाएं दृश्य में परिवर्तित होकर पाठक के सामने साकार हो उठते हैं। सिंध प्रांत के प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन इस कोटि में आता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है – *''कई जगह देखा, देहाती लोग पानी के लिए मिट्टी का बर्तन लेकर इंजन की प्रतीक्षा में खड़े थे। पंजाब-सिंध सरहद के इस इलाके में पानी की इतनी कमी है कि लोगों को या तो शहर से पानी लाना होता है या रेलगाड़ी के ड्राइवरों की कृपा पर वे निर्भर रहते हैं। दो-तीन प्रकार के मरुउद्भिदों के क्षितिजचुम्बी जंगलों में सैंकड़ों ऊँट चर रहे थे। बस, ऊँट ही ऊँट, और जानवरों का नाम तक नहीं। पथ और पगडंडियां जनशून्य थीं।''*

इसके अतिरिक्त सिंधियों की प्रवृत्तिगत विशेषताएं बताने के लिए भी लेखक ने भाषा के इसी संक्षिप्त, सटीक, सरल रूप का आश्रय लिया है। छोटे-छोटे वाक्यों में पिरो कर अपनी बात वे इस तरह कहते चलते हैं कि तर्क और विवरण का अखंड सूत्र बनता चलता है। यहां लेखक ने भाषा के क्लिष्ट रूप को बनाए रखने का आग्रह नहीं किया है बल्कि अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में प्रकरण से जुड़ कर शब्द जिस रूप में सामने आए, उनका प्रयोग कर लिया। इसी कारण तत्सम शब्दावली के साथ तद्भव, देशज और बोलचाल के शब्दों का प्रयोग हुआ है और उर्दू के साथ अंग्रेजी शब्दों का। कहीं-कहीं सिंधी भाषा के उद्धरण भी दिये गये हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

rRle 'kCn % मरुउद्भिद, मत्स्यलोलुपता, परिधान, क्षितिजचुंबी, शत-सहस्र, अभिज्ञता आदि;

rnHko ,oa ns'kt 'kCn : पाधा-पुरोहित, सीठी, कछार, इक्का-दुक्का;

mnwZ 'kCn % मर्दमशुमारी, पुस्त, चंद, हिकारत, मुरीद;

vaxzsth 'kCn % इंजन, ड्राइवर, स्टेशन, नार्थ-वेस्टर्न, जंक्शन आदि।

नागार्जुन के कथ्य की दूसरी विशेषता विनोदप्रियता। इसके अनुरूप भाषा ललित, भावप्रवण एवं चुटीली हो गई है। यहां शब्द-चयन से लेकर वाक्य-विन्यास तक वे नाटकीयता बनाए रखते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है। *''मेरे सिंधी विद्यार्थियों में से एक आजकल कोलंबों में है, दूसरा गाइना में, तीसरा है अरब में और चौथा चीन में। यह सब मैं अपनी प्रतिष्ठा-वृद्धि के लिए नहीं लिख रहा हूं, क्योंकि आषाढ़ी-पूर्णिमा में उन लोगों ने कभी गुरु-दक्षिणा नहीं भेजी। सोचा होगा, दो-चार महीने ही पढ़ा है, गुरु-शिष्य का गठबंधन जिंदगी भर का तो होता नहीं। पर मैं तो नहीं छोड़ूंगा, एक आस्थावान आचार्य के शब्दों में कहूंगा – एकाक्षर प्रदातारं यां गुरुं नाभिमन्यते। इस श्लोक का उत्तरार्द्ध नहीं लिखूंगा क्योंकि उसमें शाप दिया गया है। बेचारे कहीं रहें, मस्त रहें।''*

भाषा का दूसरा रूप नागार्जुन को परिवेश से काट कर अपनी बात कहने का अधिक अवसर देता है। अतः उनके भीतर की सर्जनात्मकता मुहावरों और वचनवक्रता के सहारे अधिक

अभिव्यक्त हुई है। जैसे *'मत्स्यलोलुपता पानी बन कर जीभ पर उतर आई', 'होटल में बैठ कर इत्मीनान से भगवान के मत्स्यावतार की पूजा की', 'अंगूर खट्टे हैं'* आदि। कहीं-कहीं भाषा में काव्यात्मकता का संस्पर्श भी हुआ है जैसे *''शत-सहस्र दीपिकाओं का वह समूह अरब सागर की ओर बहा जा रहा था।''*

40-7-2 'kSyh

प्रस्तुत निबंध के विषय के अनुरूप लेखक ने वर्णनात्मक शैली का सधा प्रयोग किया है। तथ्यों की यथातथ्य प्रस्तुति के सहारे उन्होंने सिंध प्रांत की प्राकृतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक विशिष्टताओं को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। अपनी ओर से कुछ न जोड़ते हुए वे तथ्यों को भावनाओं में अनुस्यूत कर इस प्रकार प्रस्तुत करते गए हैं कि पूरा का पूरा चित्र सामने उपस्थित हो जाता है। इस प्रकार बिंबात्मकता उनकी शैली की दूसरी विशेषता है जिसे सिंध प्रांत में प्रचलित जल-पूजा, परिधान, खान-पान, रहन-सहन, जीवन-शैली के संदर्भ में सरलता से देखा जा सकता है। लेखक की शैली की तीसरी विशेषता है – व्यंग्य-विनोद शैली। अपनी और दूसरों की दुर्बलताओं एवं व्यर्थ की लालसाओं पर ठठा कर हंसने और चुटकियां लेने की निर्भीकता उनकी शैली को रोचकता, प्रवाहमयता एवं गति प्रदान करती है। लेखक की विशेषता है कि व्यंग्यात्मक शैली को प्रश्न और पीड़ा का रूप देकर वे सुधी पाठकों से समकालीन सामाजिक प्रश्नों पर विचार करने का आग्रह करते हैं।

शैली की अंतिम दो विशेषताओं के कारण ही निबंध वैचारिकता की शुष्कता, एकरसता एवं अभिव्यक्ति की सपाटता से बच पाया है। इसी कारण यह यात्रा-वृत्तांत दूसरों के अनुभवों से जुटाई गई पाठ्य-सामग्री न लग कर अपने पैरों से किया गया भ्रमण अधिक प्रतीत होता है।

40-8 ifrik|

'सिंध में सत्रह महीने' निबंध का प्रतिपाद्य देश भर से कटे सिंध प्रांत की निजता एवं विशिष्टता को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना है। नागार्जुन सामाजिक सरोकारों से बंधे रचनाकार हैं। वे व्यक्ति को समाज से असंपृक्त इकाई मान कर उसकी निजता का मनोविश्लेषणवादी अध्ययन करने के पक्षधर नहीं रहे। वे व्यक्ति को समाज का अभिन्न अंग मानते हैं। व्यक्ति और समाज एक-दूसरे के पूरक हैं और एक-दूसरे के व्यक्तित्व का निर्माण भी करते हैं। इसके अतिरिक्त तीसरे घटक के रूप में वे प्रकृति को भी महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। उनकी दृष्टि में प्राकृतिक परिवेश व्यक्ति और समाज को एक निश्चित गढ़त देता है। इसलिए इस निबंध में उन्होंने आद्यंत प्रकृति के माध्यम से सिंधियों की अंतः प्रकृति (मनोवृत्तियों) के बनने, विकसित होने और समझने का प्रयास किया है।

विश्व भर में सिंधी प्रायः व्यवहारकुशल व्यापारियों के रूप में जाने जाते हैं। लेखक ने मुख्यतया उनकी इसी विशेषता को विश्लेषण का विषय बनाया है। लेखक की मान्यता है कि उर्वर होते हुए भी सिंध प्रदेश की भौगोलिक परिस्थितियां स्थानीय लोगों का भविष्य अधिक नहीं संवार सकतीं। अतः अपनी भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण कर विदेशों में जाना उनकी विवशता थी। लेकिन जहां प्राकृतिक परिवेश ने उन्हें बाहर जाने के लिए प्रेरित किया, वहीं यहां की मिट्टी में उपजी कतिपय विशेषताओं – सहनशीलता, धर्मनिरपेक्षता, शांतिप्रियता, अतिथिपरायणता – ने उनके व्यक्तित्व को सकारात्मक तराश दी। इन विशिष्टताओं ने मिल कर आम सिंधी की दृष्टि और वैचारिकता में उदारता का समावेश किया है। इसी कारण ऊंच-नीच, छुआछूत जैसी सामाजिक वर्जनाओं के चंगुल से मुक्त वे विश्व-संस्कृति के साथ सामंजस्य बैठा पाने में समर्थ हुए हैं।

लेखक ने अपने निबंध में सिंध प्रांत के छिपे हुए पहलुओं को भी उजागर किया है। व्यापारी वर्ग के विपरीत वे पाते हैं कि आमिल (बुद्धिजीवी) वर्ग सामाजिक रूढ़ियों में फंसा हुआ है। शिक्षा का प्रसार जिस अनुपात में बढ़ा है, उसी अनुपात में दहेज प्रथा का प्रसार भी हुआ है। परिणामतः कई लड़कियों को अविवाहित जीवन बिताना पड़ रहा है। इसी प्रकार किसानों का वर्ग वैचारिक पिछड़ेपन और संकीर्ण मानसिता के कारण पीरों-धर्मगुरुओं के हाथ की कठपुतली बना हुआ है। नवजागरण आंदोलन से आंदोलित देश जिस उत्साह और गति के साथ नए क्षितिजों का संधान कर रहा है, वह यहां नदारद है। वास्तव में लेखक का लक्ष्य यहां सिंध की

अलग-थलग स्थिति एवं पिछड़ी अवस्था के प्रति भारतीयों का ध्यान आकृष्ट करना है ताकि स्वाधीनता आंदोलन का यह यज्ञ उनके सक्रिय सहयोग के साथ सम्पन्न किया जा सके।

प्रस्तुत निबंध का लक्ष्य यह बताना भी है कि किसी भी देश की सांस्कृतिक-भाषिक-कलात्मक धरोहर को बचाना राष्ट्र का दायित्व है। सिंधी भाषा के लिए अरबी लिपि का प्रयोग उनकी दृष्टि में दुर्भाग्यपूर्ण है क्योंकि प्रकृति में यह पाली-प्राकृत-संस्कृत-अपभ्रंश से मिलती है। ऐसे अवरोध कालांतर में भाषा की गत्यात्मकता एवं समृद्धि दोनों को समाप्त कर डालते हैं। इसी प्रकार यहां की स्थापत्य कला एवं अन्य कलाओं को भी संरक्षण एवं प्रोत्साहन की आवश्यकता है। विशेषकर सूफी संतों की वाणी को महत्व देते सिंधियों को शेष भारत के समक्ष उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। यह इसलिए जरूरी है ताकि हिंदू-मुस्लिम दंगों से आक्रांत देश धर्मनिरपेक्षता एवं सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व का सबक पढ़ सके। दूसरे, प्रकृति के प्रति आभार ज्ञापित करने के लिए वरुण देव की पूजा करने की प्रथा भी अनुकरणीय बनाई जा सकती है। यह विशेषता व्यक्ति को अहम्मन्यता के खोखले प्रदर्शन से मुक्त कर अपनी सीमाओं और क्षमताओं का बोध कराती है। साथ ही इसमें दूसरों के सहयोगी अस्तित्व की स्वीकृति का भाव भी है जो हर देशकाल में मनुष्यता की रक्षा की अचूक विधि है।

ck/k iz'u

15. निबंध की भाषा की किन्हीं दो विशेषताओं का उल्लेख करें।

    ....

    ....

    ....

16. किन्हीं तीन शैलियों का नाम बताइए।

    ....

    ....

    ....

vH;kl

2. इस निबंध की अंतर्वस्तु के विचार पक्ष की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

    ....

    ....

    ....

3. सिंध प्रांत की यात्रा पर आधारित वृत्तांत लिखने के पीछे लेखक का मूल मंतव्य क्या है?

    ....

    ....

    ....

40-9 lkjka'k

- इस इकाई में आपने नागार्जुन के निबंध 'सिंध में सत्रह महीने' का अध्ययन किया है। यह एक यात्रा-वृत्तांत है। इसमें लेखक ने सिंध प्रांत के भौगोलिक-सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की विशिष्टताओं को उद्घाटित किया है। लेखक ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि किसी भी देश की भौगोलिक परिस्थितियां वहां के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को दूर तक प्रभावित करती हैं। साथ ही स्थानीय बाशिंदों को ऐसा चरित्रगत वैशिष्ट्य देती हैं जो जाति या कौम के रूप में अपनी अलग पहचान बनाता है।

- इस निबंध में नागार्जुन के व्यक्तित्व की कई विशेषताएं भी उद्घाटित हुई हैं। वे एक विचारवान विश्लेषणशील लेखक के रूप में उभरे हैं जो तथ्यों को तर्क और संवेदना की दृष्टि से विश्लेषित करने के उपरांत अपनी स्थापनाओं को पुष्ट करते हैं। प्रखर बौद्धिकता के कारण प्रस्तुत निबंध यात्रा-वृत्तांत न रह कर सिंध प्रांत को समग्रता और गहनता में जानने का कारक बन जाता है। विनोदप्रियता का समावेश इसकी तथ्यगत शुष्कता को भावप्रवणता में बदल डालता है।

- लेखक ने निबंध की वस्तु और अपने लक्ष्य के अनुरूप भाषा के सामान्य और ललित रूप का प्रयोग किया है। विश्लेषण के दौरान भाषा सरल-सहज-स्पष्ट एवं तथ्योद्घाटक बन पड़ी है। किंतु जहां-जहां वे संस्मरणशील या आत्मपरक हुए हैं, वहां-वहां भाषा में लालित्य, मार्मिकता और वचनवक्रता आ गई है। आवश्यकतानुसार तत्सम-तद्भव, देशज तथा उर्दू के शब्दों, मुहावरों, उद्धरणों का प्रयोग किया गया है। शैली वर्णनात्मकता के अतिरिक्त बिंबात्मक एवं व्यंग्यात्मक है।
- निबंध का प्रतिपाद्य है देश से अलग-थलग पड़े सिंध प्रांत की विशिष्टताओं एवं दुर्बलताओं को पाठकों के व्यापक समूह के सामने लाना। प्रत्येक प्रदेश स्वायत्त होते हुए भी राष्ट्र का अविच्छिन्न भाग होता है। मुख्यधारा से काट कर न उसकी आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक प्रगति की जा सकती है, न सांस्कृतिक-कलात्मक वैशिष्ट्य को बचाया जा सकता है। प्रत्यक्षतया न कहते हुए भी लेखक तथ्यों एवं घटनाओं के संयोजन के माध्यम से यह बात कह जाता है।

40-10 'kCnkoyh

इस इकाई में प्रयुक्त कुछ कठिन शब्द और उनके अर्थ नीचे दिए जा रहे हैं। आप इकाई पढ़ने के दौरान इनकी सहायता ले सकते हैं।

vuL;r % जुड़ा हुआ, सिला हुआ
vfHkir % इष्ट, चाहा हुआ
vfofPNUu % अटूट, लगातार चलने वाला
mnkÙk % श्रेष्ठ, विषद
mRd"k % श्रेष्ठता, समृद्धि
er0; % मन में स्थिर किया हुआ कोई विचार या मत
ifjyf{kr % जो स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ रहा हो
lf'y"Vrk % मिला, सटा या लगा हुआ
ljkdkj % उद्देश्य, संदर्भ
lkgkn % सज्जनता, मित्रता
{kkHk % उत्तेजना, क्रोध, पीड़ा उबाल

40-11 ck/k i'uk@vH;kl dk mÙkj

1. उन्हें हैदराबाद (पाकिस्तान) की सारस्वत ब्राह्मण पाठशाला में प्रधानाध्यापक के रूप में तथा सिंध की राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति के मुख्य पत्र 'कौमी बोली' के संपादक के रूप में सिंध प्रांत में काम करने का अवसर मिला था।
2. सिंधु नद की धारा में डुबकी लगा कर विश्व-विजेता सिकंदर ने अपने देश-देवता जुपीटर को अर्घ्य समर्पित किया था।
3. जल देवता वरुण की उपासना।
4. सिंधु नद सिंध प्रांत को सींच कर उर्वर बनाता है और यहां के लोगों को जीवन प्रदान करता है।
5. सिंधी लोग मूलतः धर्मनिरपेक्ष हैं। सिंधी मुसलमानों को मंदिरों, चैत्यों और गुरुद्वारों के सामने सिर झुकाते देखा जा सकता है और सिंधी हिंदुओं को पीरों की दरगाह पर नतमस्तक होते।
6. तीन। सिंधी हिंदुओं की दो जातियां हैं – भाईबंद एवं आमिल। भाईबंद व्यापारी वर्ग है और आमिल बुद्धिजीवी। सिंधियों की तीसरी जाति देहाती मुसलमान किसानों की है।
7. भाईबंद जाति स्वभाव से मिलनसार, अतिथिपरायण, सहनशील, लोचशील, शांतिप्रिय एवं उदार है।
8. क्योंकि शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण दहेज प्रथा को प्रोत्साहन मिला है और गरीब लड़कियों को आजीवन अविवाहित रहना पड़ता है।
9. देहाती मुसलमान किसान पीरों के चंगुल में फंसा हुआ है। वह निरक्षर, अज्ञानी और अंधविश्वासी है। पीर उसकी धर्मभीरु मानसिकता से परिचित हैं। इसलिए उसे धर्म का भय दिखा कर अपना उल्लू सीधा करने में लगे हुए हैं।

10. (ख)
11. (क)
12. क) सिंध प्रांत की विशिष्ट भौगोलिक संरचना
    ख) सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण
    ग) समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा की सराहना
    घ) सिंधी भाषा की प्रकृति के अनुरूप उपयुक्त लिपि का प्रश्न
13. क) धार्मिक सहिष्णुता
    ख) अतिथिपरायणता
    ग) कर्त्तव्यपरायणता
    घ) लोचशीलता
14. क) घुमक्कड़ स्वभाव
    ख) विचारशीलता
    ग) विनोदप्रियता
15. क) भाषा का सहज-सरल-प्रवाहमय रूप
    ख) आवश्यकतानुसार तत्सम, तद्भव, देशज, उर्दू और अंग्रेजी का निःसंकोच प्रयोग
17. क) वर्णनात्मक शैली
    ख) विश्लेषणात्मक शैली
    ग) व्यंग्यात्मक शैली

vH;kl

1. lnHkZ % संकेत : निबंध : 'सिंध में सत्रह महीने'

   लेखक : नागार्जुन

   संदर्भ : i) यजमान के घर निमंत्रण

   ii) व्यापार के लिए अधिकांश सिंधियों के विदेश में बसे होने का प्रकरण

   O;k[;k% i) लेखक की अपनी यायावरी प्रकृति का सिर उठाना और विदेश-भ्रमण का स्वप्न

   ii) स्वप्न की निस्सारता का भान

   iii) आत्मसंतोष हेतु नीति-कथा का स्मरण

   fo'ks"k % i) सरल, स्पष्ट, प्रवाहपूर्ण भाषा

   ii) बिंबात्मकता एवं व्यंग्यात्मकता

   iii) अपने पर हंसने की निर्भीकता

2. उपभाग 40.5.1 देखिए।
3. उत्तर प्रतिपाद्य पढ़कर स्वयं लिखिए।

[kaM d% fy, mi;ksxh iqLrdsa

- *साहित्य सहचरः हजारी प्रसाद द्विवेदी,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
- *महादेवी वर्मा संचयिताः संपादकः निर्मला जैन,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
- *पगडंडियों का ज़मानाः हरिशंकर परसाई,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
- *भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपराः रामविलास शर्मा,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
- *हिंदी साहित्य कोषः डॉ. धीरेंद्र वर्मा,* ज्ञानमंडल, वाराणसी।